नमो नमो निम्मलदंसणस्स

बाल ब्रह्मचारी श्री नेमिनाथाय नम:

पूज्य आनन्द-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर-गुरूभ्यो नम:

आगम-३९

महानिशीथ

आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद

अनुवादक एवं सम्पादक

आगम दीवाकर मुनि दीपरत्नसागरजी

[M.Com. M.Ed. Ph.D. श्रुत महर्षि]

'आगम' हिन्दी-अनुवाद-श्रेणी पुष्प-३९

आगमसूत्र-३९- 'महानिशीथ'

छेदसूत्र-६- हिन्दी अनुवाद

कहां क्या देखे ?

क्रम	विषय	पृष्ठ	क्रम	विषय	पृष्ठ
१	शल्यउद्धरण	०५	५	नवनीतसार	६९
२	कर्मविपाक विवरण	१७	६	गीतार्थ विहार	९६
३	कुशील लक्षण	३७	७	प्रायश्चित्त सूत्र	११७
४	कुशील संसर्गी	६१	८	सुसढ अणगार कथा	१३५

४५ आगम वर्गीकरण

क्रम	आगम का नाम	सूत्र	क्रम	आगम का नाम	सूत्र
०१	आचार	अंगसूत्र-१	२५	आतुरप्रत्याख्यान	पयन्नासूत्र-२
०२	सूत्रकृत्	अंगसूत्र-२	२६	महाप्रत्याख्यान	पयन्नासूत्र-३
०३	स्थान	अंगसूत्र-३	२७	भक्तपरिज्ञा	पयन्नासूत्र-४
०४	समवाय	अंगसूत्र-४	२८	तंदुलवैचारिक	पयन्नासूत्र-५
०५	भगवती	अंगसूत्र-५	२९	संस्तारक	पयन्नासूत्र-६
०६	ज्ञाताधर्मकथा	अंगसूत्र-६	३०.१	गच्छाचार	पयन्नासूत्र-७
०७	उपासकदशा	अंगसूत्र-७	३०.२	चन्द्रवेध्यक	पयन्नासूत्र-७
०८	अंतकृत् दशा	अंगसूत्र-८	३१	गणिविद्या	पयन्नासूत्र-८
०९	अनुत्तरोपपातिकदशा	अंगसूत्र-९	३२	देवेन्द्रस्तव	पयन्नासूत्र-९
१०	प्रश्नव्याकरणदशा	अंगसूत्र-१०	३३	वीरस्तव	पयन्नासूत्र-१०
११	विपाकश्रुत	अंगसूत्र-११	३४	निशीथ	छेदसूत्र-१
१२	औपपातिक	उपांगसूत्र-१	३५	बृहत्कल्प	छेदसूत्र-२
१३	राजप्रश्निय	उपांगसूत्र-२	३६	व्यवहार	छेदसूत्र-३
१४	जीवाजीवाभिगम	उपांगसूत्र-३	३७	दशाश्रुतस्कन्ध	छेदसूत्र-४
१५	प्रज्ञापना	उपांगसूत्र-४	३८	जीतकल्प	छेदसूत्र-५
१६	सूर्यप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-५	३९	महानिशीथ	छेदसूत्र-६
१७	चन्द्रप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-६	४०	आवश्यक	मूलसूत्र-१
१८	जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-७	४१.१	ओघनिर्युक्ति	मूलसूत्र-२
१९	निरयावलिका	उपांगसूत्र-८	४१.२	पिंडनिर्युक्ति	मूलसूत्र-२
२०	कल्पवतंसिका	उपांगसूत्र-९	४२	दशवैकालिक	मूलसूत्र-३
२१	पुष्पिका	उपांगसूत्र-१०	४३	उत्तराध्ययन	मूलसूत्र-४
२२	पुष्पचूलिका	उपांगसूत्र-११	४४	नन्दी	चूलिकासूत्र-१
२३	वृष्णिदशा	उपांगसूत्र-१२	४५	अनुयोगद्वार	चूलिकासूत्र-२
२४	चतु:शरण	पयन्नासूत्र-१	---	----------	-----

मुनि दीपरत्नसागरजी प्रकाशित साहित्य

आगम साहित्य			आगम साहित्य		
क्र	साहित्य नाम	बूक्स	क्रम	साहित्य नाम	बूक्स
1	मूल आगम साहित्य:-	147	6	आगम अन्य साहित्य:-	10
	-1- आगमसुत्ताणि-मूलं prin	[49]		-1- આગમ કથાનુયોગ	06
	-2- आगमसुत्ताणि-मूलं Net	[45]		-2- आगम संबंधी साहित्य	02
	-3- आगममञ्जूषा (मूल प्रत)	[53]		-3- ऋषिभाषित सूत्राणि	01
2	आगम अनुवाद साहित्य:-	165		-4- आगमिय सूक्तावली	01
	-1- આગમસૂત્ર ગુજરાતી અનુવાદ	[47]		आगम साहित्य- कुल पुस्तक	516
	-2- आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद Net	[47]			
	-3- AagamSootra English Trans.	[11]			
	-4- આગમસૂત્ર સટીક ગુજરાતી અનુવાદ	[48]			
	-5- आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद prin	[12]		अन्य साहित्य:-	
3	आगम विवेचन साहित्य:-	171	1	તત્ત્વાભ્યાસ સાહિત્ય-	13
	-1- आगमसूत्र सटीकं	[46]	2	સૂત્રાભ્યાસ સાહિત્ય-	06
	-2- आगमसूत्राणि सटीकं प्रताकार-1	[51]	3	વ્યાકરણ સાહિત્ય-	05
	-3- आगमसूत्राणि सटीकं प्रताकार-2	[09]	4	વ્યાખ્યાન સાહિત્ય-	04
	-4- आगम चूर्णि साहित्य	[09]	5	જિનભક્તિ સાહિત્ય-	09
	-5- सवृत्तिक आगमसूत्राणि-1	[40]	6	વિધિ સાહિત્ય-	04
	-6- सवृत्तिक आगमसूत्राणि-2	[08]	7	આરાધના સાહિત્ય	03
	-7- सचूर्णिक आगमसुत्ताणि	[08]	8	પરિચય સાહિત્ય-	04
4	आगम कोष साहित्य:-	14	9	પૂજન સાહિત્ય-	02
	-1- आगम सद्दकोसो	[04]	10	તીર્થંકર સંક્ષિપ્ત દર્શન	25
	-2- आगम कहाकोसो	[01]	11	પ્રકીર્ણ સાહિત્ય-	05
	-3- आगम-सागर-कोष:	[05]	12	દીપરત્નસાગરના લઘુશોધનિબંધ	05
	-4- आगम-शब्दादि-संग्रह (प्रा-सं-गु)	[04]		આગમ સિવાયનું સાહિત્ય કૂલ પુસ્તક	85
5	आगम अनुक्रम साहित्य:-	09			
	-1- આગમ વિષયાનુક્રમ- (મૂળ)	02		1-आगम साहित्य (कुल पुस्तक)	516
	-2- आगम विषयानुक्रम (सटीकं)	04		2-आगमेतर साहित्य (कुल	085
	-3- आगम सूत्र-गाथा अनुक्रम	03		दीपरत्नसागरजी के कुल प्रकाशन	601

મુનિ દીપરત્નસાગરનું સાહિત્ય

1	મુનિ દીપરત્નસાગરનું આગમ સાહિત્ય	[કુલ પુસ્તક 516]	તેના કુલ પાના [98,300]
2	મુનિ દીપરત્નસાગરનું અન્ય સાહિત્ય	[કુલ પુસ્તક 85]	તેના કુલ પાના [09,270]
3	મુનિ દીપરત્નસાગર સંકલિત 'તત્ત્વાર્થસૂત્ર'ની વિશિષ્ટ DVD		તેના કુલ પાના [27,930]

અમારા પ્રકાશનો કુલ ૬૦૧ + વિશિષ્ટ DVD કૂલ પાના 1,35,500

[३९] महानिशीथ
छेदसूत्र-६- हिन्दी अनुवाद

अध्ययन-१-शल्यउद्धरण

सूत्र - १

तीर्थ को नमस्कार हो, अरहंत भगवंत को नमस्कार हो ।

आयुष्मान् भगवंत के पास मैंने इस प्रकार सुना है कि, यहाँ जो किसी छद्मस्थ क्रिया में वर्तते ऐसे साधु या साध्वी हो वो–इस परमतत्त्व और सारभूत चीज को साधनेवाले अति महा अर्थ गर्भित, अतिशय श्रेष्ठ, ऐसे ''महानिसीह'' श्रुतस्कंध श्रुत के मुताबिक त्रिविध (मन, वचन, काया) त्रिविध (करण, करावण, अनुमोदन) सर्व भाव से और अंतर-अभावी शल्यरहित होकर आत्मा के हित के लिए–

अति घोर, वीर, उग्र, कष्टकारी तप और संयम के अनुष्ठान करने के लिए सर्व प्रमाद के आलम्बन सर्वथा छोड़कर सारा वक्त रात को और दिन को प्रमाद रहित सतत खिन्नता के सिवा, अनन्य, महाश्रद्धा, संवेग और वैरागमार्ग पाए हुए, नियाणारहित, बल-वीर्य, पुरुषकार और पराक्रम को छिपाए बिना, ग्लानि पाए बिना, वोसिराए-त्याग किए देहवाले, सुनिश्चित एकाग्र चित्तवाले होकर बारबार तप संयम आदि अनुष्ठान में रमणता करनी चाहिए ।

सूत्र - २

लेकिन राग, द्वेष, मोह, विषय, कषाय, ज्ञान आलम्बन के नाम पर होनेवाले कईं प्रमाद, ऋद्धि, रस, शाता इन तीनों तरह के गारव, रौद्रध्यान, आर्त्तध्यान, विकथा, मिथ्यात्व, अविरति (मन, वचन, काया के) दुष्टयोग, अनायतन सेवन, कुशील आदि का संसर्ग, चुगली करना, झूठा आरोप लगाना, कलह करना, जाति आदि आठ तरह से मद करना, इर्ष्या, अभिमान, क्रोध, ममत्वभाव, अहंकार अनेक भेद में विभक्त तामसभाव युक्त हृदय से–

हिंसा, चोरी, झुठ, मैथुन, परिग्रह का आरम्भ, संकल्प आदि अशुभ परिणामवाले घोर, प्रचंड, महारौद्र, गाढ़, चिकने पापकर्म-मल समान लेप से खंडित आश्रव द्वार को बन्द किए बगैर न होना ।

यह बताए हुए आश्रव में साधु-साध्वी को प्रवृत्त नही होना चाहिए ।

सूत्र - ३

(इस प्रकार जब साधु या साध्वी उनके दोष जाने तब) एक पल, लव, मुहूर्त्त, आँख की पलक, अर्ध पलक, अर्ध पलक के भीतर के हिस्से जितना काल भी शल्य से रहित है–वो इस प्रकार है–

सूत्र – ४-६

जब मैं सर्व भाव से उपशांत बनूँगा और फिर सर्व विषय में विरक्त बनूँगा, राग, द्वेष और मोह का त्याग करूँगा, तब संवेग पानेवाला आत्मा परलोक के पंथ को एकाग्र मन से सम्यक् तरह से सोचे, अरे ! मैं यहाँ मृत्यु पाकर कहाँ जाऊंगा ? मैंने कौन-सा धर्म प्राप्त किया है ? मेरे कौन-से व्रत-नियम हैं ? मैंने कौन-से तप का सेवन किया है ? मैंने कैसा शील धारण किया है ? मैंने क्या दान दिया है ?

सूत्र – ७-९

कि जिसके प्रभाव से मैं हीन, मध्यम या उत्तम कुल में स्वर्ग या मानव लोक में सुख और समृद्धि पा सकूँ ? या विषाद करने से क्या फायदा ? आत्मा को मैं अच्छी तरह से जानता हूँ, मेरा दुश्चरित्र और मेरे दोष एवं गुण है वो सब मैं जानता हूँ । इस तरह घोर अंधकार से भरपूर ऐसे पाताल-नर्क में ही मैं जाऊंगा कि जहाँ लम्बे अरसे तक हजारों दुःख मुझे सहने पड़ेंगे ।

सूत्र – १०-११

इस तरह सर्व जीव धर्म-अधर्म, सुख-दुःख आदि जानते हैं । गौतम ! उसमें कुछ प्राणी ऐसे होते हैं कि जो आत्महित करनेवाले धर्म का सेवन मोह और अज्ञान की कारण से नहीं करते । और फिर परलोक के लिए आत्म हित रूप ऐसा धर्म यदि कोई माया-दंभ से करेगा तो भी उसका फायदा महसूस नहीं करेगा ।

सूत्र – १२-१४

यह आत्मा मेरा ही है । मैं मेरे आत्मा को यथार्थ तरह से जानता हूँ । आत्मा की प्रतीति करना दुष्कर है । धर्म भी आत्मसाक्षी से होता है । जो जिसे हितकारी या प्रिय माने वो उसे सुन्दर पद पर स्थापन करते हैं । (क्योंकि) शेरनी अपने क्रूर बच्चे को भी ज्यादा प्रिय मानती है । जगत के सर्व जीव ''अपनी तरह ही दूसरे की आत्मा हैं'', इस तरह सोचे बिना आत्मा को अनात्मा रूप से कल्पना करते हुए दुष्ट वचन, काया, मन से चेष्टा सहित व्यवहार करता है । जब वो आत्मा निर्दोष कहलाती है । जो कलुषता रहित है । पक्षपात को छोड़ दिया है । पापवाले और कलुषित दिल जिससे काफी दूर हुए हैं । और दोष समान जाल से मुक्त है ।

सूत्र – १५-१६

परम अर्थयुक्त, तत्त्व स्वरूप में सिद्ध हुए, सद्भुत चीज को साबित कर देनेवाले ऐसे, वैसे पुरुषों ने किए अनुष्ठान द्वारा वो (निर्दोष) आत्मा खुद को आनन्दित करता है । वैसे आत्मा में उत्तमधर्म होता है उत्तम तप-संपत्ति शील चारित्र होते हैं इसलिए वो उत्तम गति पाते हैं ।

सूत्र – १७-१८

हे गौतम ! कुछ ऐसे भी प्राणी होते हैं कि जो इतनी उत्तम कक्षा तक पहुँचे हो, लेकिन फिर भी मन में शल्य रखकर धर्माचरण करते हैं, लेकिन आत्महित नहीं समझ सकते । शल्यसहित ऐसा जो कष्टदायक, उग्र, घोर, वीर कक्षा का तप देवताई हजार साल तक करे तो भी उसका वो तप निष्फल होता है ?

सूत्र - १९

जिस शल्य की आलोचना नहीं होती । निंदा या गर्हा नहीं की जाती या शास्त्रोक्त प्रायश्चित्त नहीं किया जाता । वो तो शल्य भी पाप कहलाता है ।

सूत्र - २०

माया, दंभ, छल करने के उचित नहीं है । बड़े-गुप्त पाप करना, अजयणा अनाचार सेवन करना, मन में शल्य रखना, वो आठ कर्म का संग्रह करवाता है ।

सूत्र – २१-२६

असंयम, अधर्म, शील और व्रत रहितता, कषाय सहितता, योग की अशुद्धि यह सभी सुकृत पुण्य को नष्ट करनेवाले और पार न पा सके वैसी दुर्गति में भ्रमण करनेवाले हो और फिर शारीरिक मानसिक दुःख पूर्ण अंत रहित संसार में अति घोर व्याकुलता भुगतनी पड़े, कुछ को रूप की बदसूरती मिले, दारिद्र्य, दुर्भगता, हाहाकार करवानेवाली वेदना, पराभाव पानेवाला जीवित, निर्दयता, करुणाहीन, क्रूर, दयाहीन, निर्लज्जता, गूढ़हृदय, वक्रता, विपरीत चित्तता, राग, द्वेष, मोह, घनघोर मिथ्यात्व, सन्मार्ग का नाश, अपयश प्राप्ति, आज्ञाभंग, अबोधि, शल्य-रहितपन यह सब भवोभव होते हैं । इस प्रकार पाप शल्य के एक अर्थवाले कईं पर्याय बताए ।

सूत्र – २७-३०

एक बार शल्यवाला हृदय करनेवाले को दूसरे कईंभव में सर्व अंग ओर उपांग बार-बार शल्य वेदनावाले होते हैं । वो शल्य दो तरीके का बताया है । सूक्ष्म और बादर । उन दोनों के भी तीन तीन प्रकार हैं । घोर, उग्र और उग्रतर । घोर माया चार तरह की है । जो घोर उग्र मानयुक्त हो और माया, लोभ और क्रोधयुक्त भी हो । उसी तरह उग्र और उग्रतर के भी यह चार भेद समझना । सूक्ष्म और बादर भेद-प्रभेद सहित इन शल्य को मुनि उद्धार करके

जल्द से नीकाल दे । लेकिन पलभर भी मुनि शल्यवाला न रहे ।

सूत्र – ३१-३२

जिस तरह साँप का बच्चा छोटा हो, सरसप प्रमाण केवल अग्नि थोड़ा हो और जो चिपक जाए तो भी विनाश करता है । उसका स्पर्श होने के बाद वियोग नहीं कर सकते । उसी तरह अल्प या अल्पतर पाप-शल्य उद्धरेल न हो तो काफी संताप देनेवाले और क्रोड़ भव की परम्परा बढ़ानेवाले होते हैं ।

सूत्र – ३३-३७

हे भगवन् ! दुःख से करके उद्धर सके ऐसा और फिर दुःख देनेवाला यह पापशल्य किस तरह उद्धरना वो भी कुछ लोग नहीं जानते । हे गौतम ! यह पापशल्य सर्वथा जड़ से ऊखेड़ना कहा है । चाहे कितना भी अति दुर्धर शल्य हो उसे सर्व अंग उपांग सहित भेदना बताया है । प्रथम सम्यग्दर्शन, दूसरा सम्यग्ज्ञान, तीसरा सम्यक्चारित्र यह तीनों जब एकसमान इकट्ठे हों, जीव जब शल्य का क्षेत्रीभूत बने और पापशल्य अति गहन में पहुँचा हो, देख भी न सकते हो, हड्डियाँ तक पहुँचा हो और उसके भीतर रहा हो, सर्व अंग-उपांग में फँसा हो, भीतर और बाहर के हिस्से में दर्द उत्पन्न करता हो वैसे शल्य को जड़ से उखेड़ना चाहिए ।

सूत्र – ३८-४०

क्रिया बिना ज्ञान निरर्थक है और फिर ज्ञान बिना क्रिया भी सफल नहीं होती । जिस तरह देखनेवाला लंगड़ा और दौड़नेवाला अंधा दावानल में जल मरे । इसलिए हे गौतम ! दोनों का संयोग हो तो कार्य की सिद्धि हो । एक चक्र या पहिये से रथ नहीं चलता । जब अंधा और लंगड़ा दोनों एक रूप बने यानि लंगड़े ने रास्ता दिखाया और अंधा उस मुताबिक चला तो दोनों दावानलवाले जंगल को पसार करके इच्छित नगर में निर्विघ्न सही सलामत पहुँचे । ज्ञान प्रकाश देते हैं, तप आत्मा की शुद्धि करते हैं, और संयम इन्द्रिय और मन को आड़े-टेढ़े रास्ते पर जाने से रोकते हैं । इस तीनों का यथार्थ संयोग हो तो हे गौतम ! मोक्ष होता है । अन्यथा मोक्ष नहीं होता ।

सूत्र – ४१-४२

उक्त-उस कारण से निःशल्य होकर, सर्व शल्य का त्याग करके जो कोई निःशल्यपन से धर्म का सेवन करते हैं, उसका संयम सफल गिना है । इतना ही नहीं लेकिन जन्म-जन्मान्तर में विपुल संपत्ति और ऋद्धि पाकर परम्परा से शाश्वत सुख पाते हैं ।

सूत्र – ४३-४७

शल्य यानि अतिचार आदि दोष उद्धरने की ईच्छावाली भव्यात्मा सुप्रशस्त-अच्छे योगवाले शुभ दिन, अच्छी तिथि-करण-मुहूर्त्त और अच्छे नक्षत्र और बलवान चन्द्र का योग हो तब उपवास या आयंबिल तप दश दिन तक करके आठसो पंचमंगल (महाश्रुतस्कंध) का जप करना चाहिए । उस पर अठ्ठम-तीन उपवास करके पारणे आयंबिल करना चाहिए । पारणे के दिन चैत्य-जिनालय और साधुओं को वंदन करना । सर्व तरह से आत्मा को क्रोध रहित और क्षमावाला बनाना । जो कोई भी दुष्ट व्यवहार किया हो उन सबका त्रिविध मन, वचन और काया से निःशल्यभाव से ''मिच्छामिदुक्कडम्'' देना चाहिए ।

सूत्र – ४८-५०

फिर से चैत्यालय में जाकर वीतराग परमात्मा की प्रतिमा की एकाग्र भक्तिपूर्वक हृदय से हरएक की वंदना –स्तवना करे । चैत्य को सम्यग् विधि सहित वंदना कर के छठ्ठ भक्त तप कर के चैत्यालय में यह श्रुतदेवता नामक विद्या का लाख प्रमाण जप करे । सर्वभाव से उपशान्त होनेवाला, एकाग्रचित्तवाला, दृढ़ निश्चयवाला, उपयोगवाला, ड़ामाडोल चित्त रहित, राग-रति-अरति से रहित बनकर चैत्यालय की पवित्र जगह में विधिवत जप करे ।

सूत्र - ५१

(इस सूत्र में मंत्राक्षर हैं । जिसका हिन्दी अनुवाद नहीं हो सकता । जिज्ञासुओं को हमारा आगमसुत्ताणि

भाग-३९ महानिसीह पृष्ठ-५ देखना चाहिए ।)

सूत्र - ५२

सिद्धांतिओने यह विद्या सूत्र-५१ में मूल अर्धमागधी में दी हुई महाविद्या लिपी वर्ण से लिखी है । शास्त्र के मर्म को समझा न हो, कुशीलवाला हो उन्हें गीतार्थ श्रुतधर को यह प्रवचन विद्या न देना या प्ररूपना नहीं चाहिए ।

सूत्र – ५३-५५

यह श्रेष्ठ विद्या से सभी तरीके से खुद को अभिमंत्रित करके उस क्षमावान् इन्द्रिय का दमन करनेवाले और जितेन्द्रिय सो जाए निंद में जो शुभ या अशुभ सपना आए उसे अच्छी तरह से अवधारण करे, याद रखे, वहाँ जिस तरह का सपना देखा हो उसके अनुसार शुभ या अशुभ बने । यदि सुंदर सपना हो तो यह महा परमार्थतत्त्व-सारभूत शल्योद्धार बने ऐसा समझना ।

सूत्र – ५६-५७

इस तरह की आठ मद को और लोक के अग्र हिस्से बिराजमान सिद्ध को स्तवता हो वैसे निःशल्य होने की अभिलाषावाले आत्मा को शुद्ध आलोचना देना । अपने पाप की आलोचना करके, गुरु के पास प्रकट करके शल्य-रहित बने । उसके बाद भी चैत्य और साधु को वंदन करके साधु को विधिवत् खमाए ।

सूत्र – ५८-६२

पापशल्य को खमाकर फिर से विधिवत् देव-असूर सहित जगत को आनन्द देते हुए निर्मूलपन से शल्य का उद्धार करते हैं । उस मुताबिक शल्यरहित होकर सर्व भाव से फिर से विधि सहित चैत्य को वांदे और साधर्मिक को खमाए । खास करके जिसके साथ एक उपाश्रय वसति में वास किया है । जिसके साथ गाँव-गाँव विचरण किया हो, कठिन वचन से जिन्होंने सारणादिक प्रेरणा दी हो, जिन किसी को भी कार्य अवसर या कार्य बिना कठिन, कड़े, निष्ठुर वचन सुनाए हो, उसने भी सामने कुछ प्रत्युत्तर दिया है, वो शायद जिन्दा या मरा हुआ हो तो उसे सर्व भाव से खमाए, यदि जिन्दा हो तो वहाँ जाकर विनय से खमाए, मरे हुए हो तो साधु साक्षी में खमाए ।

सूत्र – ६३-६५

उस प्रकार तीन भुवन को भी भाव से क्षामणा करके मन, वचन, काया के योग से शुद्ध होनेवाला वो निश्चयपूर्वक इस प्रकार घोषित करे, ''मैं सर्व जीव को खमाता हूँ । सर्व जीव मुझे क्षमा दो । सर्व जीव के साथ मुझे मैत्री भाव है । किसी भी जीव के साथ मुझे बैर-भाव नहीं । भवोभव में हरएक जीव के सम्बन्ध में आनेवाला मैं, मन, वचन, काया से सर्वभाव से सर्व तरह से सब को खमाता हूँ ।

सूत्र - ६६

इस प्रकार स्थापना, घोषणा करके चैत्यवंदना करे, साधुसाक्षीपूर्वक गुरु की भी विधिवत् क्षमा याचना करे

सूत्र – ६७-७०

सम्यक् तरह से गुरु भगवंत को खमाकर अपनी शक्ति अनुसार ज्ञान की महिमा करे । फिर से वंदन विधि सहित वंदन करे । परमार्थ, तत्त्वभूत और सार समान यह शल्योद्धारण किस तरह करना वो गुरु मुख से सूने । सूनकर उस मुताबिक आलोचना करे, कि जिसकी आलोचना करने से केवलज्ञान उत्पन्न हो ।

ऐसे सुन्दर भाव में रहे हो और निःशल्य आलोचना की हो कि जिससे आलोचना करते-करते वहीं केवल ज्ञान उत्पन्न हो । हे गौतम ! वैसे कुछ महासत्त्वशाली महापुरुष के नाम बताते हैं कि जिन्होंने भाव से आलोचना करते-करते केवलज्ञान उत्पन्न किया ।

सूत्र – ७१-७५

हाँ, मैंने दुष्ट काम किया, दुष्ट सोचा, हाँ मैंने झूठी अनुमोदना की, उस तरह संवेग से और भाव से

आलोचना करनेवाला केवलज्ञान पाए । इर्यासमिति पूर्वक पाँव स्थापन करते हुए केवली बने, मुहपत्ति प्रतिलेखन से केवली बने, सम्यक् तरह से प्रायश्चित्त ग्रहण करने से केवली बने, ''हा-हा मैं पापी हूँ'' ऐसा विचरते हुए केवली बने । ''हा हा मैंने उन्मत्त बनकर उन्मार्ग की प्ररूपणा करके ऐसे पश्चात्ताप करते हुए केवली बने । अणागाररूप में केवली बने, सावद्य योग से सेवन मत करना'' – उस तरह से अखंड़ितशील पालन से केवली बने, सर्व तरह से शील का रक्षण करते हुए, कोड़ी-करोड़ तरह से प्रायश्चित्त करते हुए भी केवली बने ।

सूत्र – ७६-७८

शरीर की मलिनता साफ करने समान निष्पत्तिकर्म करते हुए, न खुजलानेवाले, आँख की पलक भी न झपकाते केवली बने, दो प्रहर तक एक बगल में रहकर, मौनव्रत धारण करके भी केवली बने, ''साधुपन पालने के लिए मैं समर्थ नहीं हूँ इसलिए अनशन में रहूँ'' ऐसा करते हुए केवली बने, नवकार गिनते हुए केवली बने, ''मैं धन्य हूँ कि मैंने ऐसा शासन पाया, सब सामग्री पाने के बाद भी मैं केवली क्यों न हुआ ?'' ऐसी भावना से केवली बने ।

सूत्र – ७९-८०

(जब तक दृढ़प्रहारी की तरह लोग मुझे) पाप-शल्यवाला बोले तब तक काऊस्सग्ग पारुंग नहीं उस तरह केवली बने, चलायमान काष्ठ-लकड़े पर पाँव पड़ने से सोचे कि अरे रे ! अजयणा होगी, जीव-विराधना होगी ऐसी भावना से केवली बने, शुद्ध पक्ष में प्रायश्चित्त करूँ ऐसा कहने से केवली बने । ''हमारा जीवन चंचल है'' – ''यह मानवता अनित्य और क्षणविनाशी है'' उस भाव से केवली बने ।

सूत्र – ८१-८३

आलोचना, निंदा, वंदना, घोर और दुष्कर प्रायश्चित्त सेवन – लाखो उपसर्ग सहन करने से केवली बने, (चंदनबाला का हाथ दूर करने से जिस तरह केवलज्ञान हुआ वैसे) हाथ दूर करने से, निवासस्थान करते, अर्धकवल यानि कुरगडुमुनि की तरह खाते-खाते, एक दाना खाने समान तप प्रायश्चित्त करने से दस साल के बाद केवली बने। प्रायश्चित्त शुरू करनेवाले, अर्द्धप्रायश्चित्त करनेवाले केवली, प्रायश्चित्त पूरा करनेवाला, उत्कृष्ट १०८ गिनती में ऋषभ आदि की तरह केवल पानेवाले केवली ।

सूत्र – ८४-८७

''शुद्धि और प्रायश्चित्त बिना जल्द केवली बने तो कितना अच्छा'' ऐसी भावना करने से केवली बने । ''अब ऐसा प्रायश्चित्त करूँ कि मुझे तप आचरण न करने पड़े'' ऐसा विचरने से केवली बने । ''प्राण के परित्याग से भी मैं जिनेश्वर परमात्मा की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करूँगा उस तरह से केवली बने । यह मेरा शरीर भिन्न है और आत्मा भिन्न है । मुझे सम्यक्त्व हुआ है । इस प्रकार की भावना से केवल ज्ञान होता है ।

सूत्र – ८८-९०

अनादि काल से आत्मा से जुड़े पापकर्म के मैल को मैं साफ कर दूँ ऐसी भावना से केवलज्ञान होता है । अब प्रमाद से मैं कोई अन्य आचरण नहीं करूँगा इस भावना से केवलज्ञान होता है । देह का क्षय हो तो मेरे शरीर-आत्मा को निर्जरा हो, संयम ही शरीर का निष्कलंक सार है । ऐसी भावना से केवली बने । मन से भी शील का खंड़न हो तो मुझे प्राणधारण नहीं करना और फिर वचन और काया से में शील का रक्षण करूँगा ऐसी भावना से केवली बने । .....(इस तरह से कौन-कौन सी अवस्था में केवलज्ञान हुआ वो बताया)

सूत्र – ९१-९५

उस प्रकार अनादि काल से भ्रमण करते हुए भ्रमण करके मुनिपन पाया । कुछ भव में कुछ आलोचना सफल हुई । हे गौतम ! किसी भव में प्रायश्चित्त चित्त की शुद्धि करनेवाला बना, क्षमा रखनेवाला, इन्द्रिय का दमन करनेवाला, संतोषी, इन्द्रिय को जीतनेवाला, सत्यभाषी, छ काय जीव के समारम्भ से त्रिविध से विरमित, तीन दंड़-मन, वचन काया दंड़ से विरमित स्त्री के साथ भी बात न करनेवाला, स्त्री के अंग-उपांग को न देखनेवाला, शरीर

की ममता न हो, अप्रतिबद्ध विहारी यानि विहार के क्षेत्रकाल या व्यक्ति के लिए राग न हो, महा-सारा आशयवाला स्त्री के गर्भवास में रहने से भयभीत, संसार के कईं दुःख और भय से त्रस्त इस तरह के भाव से (गुरु समक्ष अपने दोष प्रकट करने आनेवाला) आलोचक को आलोचना देना । आलोचक ने (भी) गुरु को दिया प्रायश्चित्त करना – जिस क्रम से दोष सेवन किया हो उस क्रम से प्रायश्चित्त करना चाहिए ।

सूत्र – ९६-९८

आलोचना करनेवाले को माया दंभ-शल्य से कोई आलोचना नहीं करनी चाहिए । उस तरह की आलोचना से संसार की वृद्धि होती है । अनादि अनन्तकाल से अपने कर्म से दुर्मतिवाले आत्मा ने कईं विकल्प समान कल्लोलवाले संसार समुद्र में आलोचना करने के बाद भी अधोगति पानेवाले के नाम बताऊं उसे सून कि जो आलोचना सहित प्रायश्चित्त पाए हुए और भाव दोष से कलुषित चित्तवाले हुए हैं ।

सूत्र – ९९-१०२

शल्य सहित आलोचना-प्रायश्चित्त करके पापकर्म करनेवाले नराधम, घोर अति दुःख से सह सके वैसे अति दुःसह दुःख सहते हुए वहाँ रहते हैं । भारी असंयम सेवन करनेवाला और साधु को नफरत करनेवाला, दृष्ट और वाणी विषय से शील रहित और मन से भी कुशीलवाले, सूक्ष्म विषय की आलोचना करनेवाले, ''दूसरों ने ऐसा किया उसका क्या प्रायश्चित्त ?'' ऐसा पूछकर खुद प्रायश्चित्त करे थोड़ी-थोड़ी आलोचना करे, थोड़ी भी आलोचना न करे, जिसने दोष सेवन नहीं किया उसकी या लोगों के रंजन के लिए दूसरों के सामने आलोचना करे, ''मैं प्रायश्चित्त नहीं करूँगा'' वैसे सोचकर या छलपूर्वक आलोचना करे ।

सूत्र – १०३-१०५

माया, दंभ और प्रपंच से पूर्वे किए गए तप और आचरण की बातें करे, मुझे कोई भी प्रायश्चित्त नहीं लगता ऐसा कहे या किए हुए दोष प्रकट न करे, पास में किए दोष प्रकट करे, छोटे-छोटे प्रायश्चित्त माँगे, हम ऐसी चेष्टा प्रवृत्ति करते हैं कि आलोचना लेने का अवकाश नहीं रहता । ऐसा कहें कि शुभ बंध हो वैसी आलोचना माँगे । मैं बड़ा प्रायश्चित्त करने के लिए अशक्त हूँ । अगर मुझे ग्लान-बीमार की सेवा करनी है ऐसा कहकर उसके आलम्बन से प्रायश्चित्त न करे आलोचना करनेवाला साधु सूना-अनसूना करे ।

सूत्र – १०६-१०८

तुष्टि करनेवाले छूटे-छूटे प्रायश्चित्त मैं नहीं करूँगा, लोगों को खुश करने के लिए जिह्वा से प्रायश्चित्त नहीं करूँगा ऐसा कहकर प्रायश्चित्त न करे । प्रायश्चित्त अपनाने के बाद लम्बे अरसे के बाद उसमें प्रवेश करे – अर्थात् आचरण करे या प्रायश्चित्त कबूल करने के बाद अन्यथा – अलग ही कुछ करे । निर्दयता से बार-बार महापाप का आचरण करे । कंदर्प यानि कामदेव विषयक अभिमान – ''चाहे कितना भी प्रायश्चित्त दे तो भी मैं करने के लिए समर्थ हूँ'' ऐसा गर्व करे । और फिर जयणा रहित सेवन करे तो सूना-अनसूना करके प्रायश्चित्त करे ।

सूत्र – १०९-११३

किताब में देखकर वहाँ बताया हुआ प्रायश्चित्त करे, अपनी मति कल्पना से प्रायश्चित्त करे । पूर्व आलोचना की हो उस मुताबिक प्रायश्चित्त कर ले । जातिमद, कुलमद, जातिकुल उभयमद, श्रुतमद, लाभमद, ऐश्वर्यमद, तप मद, पंड़िताई का मद, सत्कार मद आदि में लुब्ध बने । गारव से उत्तेजित होकर (आलोचना करे) मैं अपूज्य हूँ । एकाकी हूँ ऐसा सोचे । मैं महापापी हूँ ऐसी कलुषितता से आलोचना करे । दूसरों के द्वारा या अविनय से आलोचना करे । अविधि से आलोचना करे । इस प्रकार कहे गए या अन्य वैसे ही दुष्ट भाव से आलोचना करे ।

सूत्र – ११४-११६

हे गौतम ! अनादि अनन्त काल से भाव-दोष सेवन करनेवाले आत्मा को दुःख देनेवाले साधु नीचे भीतर सातवीं नरक भूमि तक गए हैं । हे गौतम ! अनादि अनन्त ऐसे संसार में ही साधु शल्य रहित होते हैं । वो अपने

भाव-दोष समान विरस-कटु फल भुगतते हैं । अभी भी–शल्य से शल्यित होनेवाले वो भावि में भी अनन्तकाल तक विरस कटु फल भुगतते रहेंगे । इसलिए मुनि को जरा भी शल्य धारण नहीं करना चाहिए ।

सूत्र - ११७

हे गौतम ! श्रमणी की कोई गिनती नहीं जो कलुषितता रहित, शल्यरहित, विशुद्ध, शुद्ध, निर्मल, विमल मानसवाली होकर, अभ्यंतर विशोधि से आलोचना करके साफ अतिचार आदि सर्व भावशल्य को यथार्थ तपोकर्म सेवन करके, प्रायश्चित्त पूरी तरह आचरण करके, पाप कर्म के मल के लेप समान कलंक धोकर–साफ करके उत्पन्न किए दिव्य–उत्तम केवलज्ञानवाली, महानुभाग, महायशा, महासत्त्व, संपन्ना, सुग्रहित, नामधारी, अनन्त उत्तम सुखयुक्त मोक्ष पाई हुई हैं ।

सूत्र – ११८-१२०

हे गौतम ! पुण्यभागी ऐसी कुछ साध्वी के नाम कहते हैं कि जो आलोचना करते हुए केवलज्ञान पाए हुए हैं। अरे रे ! मैं पापकर्म करनेवाली पापीणी-पापमती वाली हूँ । सचमुच पापीणी में भी अधिक पाप करनेवाली, अरे रे ! मैंने काफी दुष्ट चिन्तवन किया, क्योंकि इस जन्म में मुझे स्त्रीभाव पैदा हुआ तो भी अब घोर, वीर, उग्र कष्ट दायक तप संयम धारण करूँगी ।

सूत्र – १२१-१२५

अनन्ती पापराशि इकट्ठी हो तब पापकर्म के फल समान शुद्ध स्त्रीपन मिलता है । अब स्त्रीपन के उचित इकट्ठे हुए पापकर्म के समूह को ऐसे पतले करूँ कि जिससे स्त्री न बनूँ और केवलज्ञान पाऊं । नजर से भी अब शीयल खंड़न नहीं करूँगी, अब मैं श्रमण-केवली बनूँगी । अरे रे ! पूर्वे मन से भी मैंने कोई आहट्ट-दोहट्ट अति दुष्ट सोचा होगा । उसकी आलोचना करके मैं जल्द उसकी शुद्धि करूँगी और श्रमणी-केवली बनूँगी । मेरा रूप-लावण्य देखकर और कान्ति, तेज, शोभा देखकर कोई मानव समान तितली अधम होकर क्षय न हो उसके लिए अनशन अपनाकर मैं श्रमणीपन में केवली बनूँगी । अब निश्चय से वायरा के अलावा किसी दूसरे का स्पर्श नहीं करूँगी ।

सूत्र – १२६-१२९

अब छ काय जीव का आरम्भ-समारम्भ नहीं करूँगी । श्रमणी-केवली बनूँगी । मेरे देह, कमर, स्तन, जाँघ, गुप्त स्थान के भीतर का हिस्सा, नाभि, जघनान्तर हिस्सा आदि सर्वांग ऐसे गोपन करूँगी कि वो जगह माँ को भी नहीं बताऊंगी । ऐसी भावना से साध्वी केवली बने । अनेक क्रोड़ भवान्तर मैंने किए, गर्भावास की परम्परा करते वक्त मैंने किसी तरह से पाप-कर्म का क्षय करनेवाला ज्ञान और चारित्रयुक्त सुन्दर मनुष्यता पाई है । अब पल-पल सर्व भावशल्य की आलोचना-निंदा करूँगी । दूसरी बार वैसे पाप न करने की भावना से प्रायश्चित्त अनुष्ठान करूँगी।

सूत्र – १३०-१३२

जिसे करने से प्रायश्चित्त हो वैसे मन, वचन, काया के कार्य, पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पतिकाय और बीजकाय का समारम्भ, दो-तीन, चार-पाँच इन्द्रियवाले जीव का समारम्भ यानि हत्या नहीं करूँगी, झूठ नहीं बोलूंगी, धूल और भस्म भी न दिए हुए ग्रहण नहीं करूँगी, सपने में भी मन से मैथुन की प्रार्थना नहीं करूँगी, परिग्रह नहीं करूँगी जिससे मूल गुण उत्तर-गुण की स्खलना न हो ।

सूत्र – १३३-१३६

मद, भय, कषाय, मन, वचन, काया समान तीन दंड़, उन सबसे रहित होकर गुप्ति और समिति में रमण करूँगी और इन्द्रियजय करूँगी, अठ्ठारह हजार शीलांगोसे युक्त शरीरवाली बनूँगी, स्वाध्याय-ध्यान और योग में रमणता करूँगी । ऐसी श्रमणी केवली बनूँगी । तीन लोक का रक्षण करने में समर्थ स्तंभ समान धर्म तीर्थंकर ने जो लिंगचिह्न धारण किया है उसे धारण करनेवाली मैं शायद यंत्र में पीसकर मेरे शरीर के बीच में से दो खंड़ किए

जाए, मुझे फाड़ या चीर दे । भड़भड़ अग्नि में फेंका जाए, मस्तक छेदन किया जाए तो भी मैंने ग्रहण किए नियम-व्रत का भंग या शील और चारित्र का एक जन्म खातिर भी मन से भी खंड़न नहीं करूँगा ऐसी श्रमणी होकर केवली बनूँगी

सूत्र – १३७-१३९

गधे, ऊंट, कूत्ते आदि जातिवाले भव में रागवाली होकर मैंने काफी भ्रमण किया । अनन्ता भव में और भवान्तर में न करनेलायक कर्म किए । अब प्रव्रज्या में प्रवेश करके भी यदि वैसे दुष्ट कर्म करूँ तो फिर घोर-अंधकारवाली पाताल पृथ्वी में से मुझे नीकलने का अवकाश मिलना ही मुश्किल हो । ऐसा सुन्दर मानवजन्म राग दृष्टि से विषय में पसार किए जाए तो कईं दुःख का भाजन होता है ।

सूत्र – १४०-१४४

मानवभव अनित्य है, पल में विनाश पाने के स्वभाववाला, कईं पाप-दंड़ और दोष के मिश्रणवाला है । उसमें मैं समग्र तीन लोक जिसकी निंदा करे वैसे स्त्री बनकर उत्पन्न हुई, लेकिन फीर भी विघ्न और अंतराय रहित ऐसे धर्म को पाकर अब पाप-दोष से किसी भी तरह उस धर्म का विराधन नहीं करूँगी अब शृंगार, राग, विकार-युक्त, अभिलाषा की चेष्टा नहीं करूँगी, धर्मोपदेशक को छोड़कर किसी भी पुरुष की ओर प्रशान्त नजर से भी नहीं देखूँगी । उसके साथ आलाप संलाप भी नहीं करूँगी, न बता सके उस तरह का महापाप करके उससे उत्पन्न हुए शल्य की जिस प्रकार आलोचना दी होगी उस प्रकार पालन करूँगी । ऐसी भावना रखकर श्रमणी-केवली बनूँगी ।

सूत्र – १४५-१४८

उस प्रकार शुद्ध आलोचना देकर–(पाकर) अनन्त श्रमणी निःशल्य होकर, अनादि काल में हे गौतम ! केवलज्ञान पाकर सिद्धि पाकर, क्षमावती-इन्द्रिय का दमन करनेवाली संतोषकर-इन्द्रिय को जीतनेवाली सत्यभाषी –त्रिविध से छ काय के समारम्भ से विरमित तीन दंड़ के आश्रव को रोकनेवाली – पुरुषकथा और संग की त्यागी-पुरुष के साथ संलाप और अंगोपांग देखने से विरमित-अपने शरीर की ममता रहित महायशवाली-द्रव्यक्षेत्र काल भाव प्रति अप्रतिबद्ध यानि रागरहित, औरतपन, गर्भावस्था और भवभ्रमण से भयभीत इस तरह की भावनावाली (साध्वीओं को) आलोचना देना ।

सूत्र – १४९-१५१

जिस तरह इस श्रमणीओं ने प्रायश्चित्त किया उस तरह से प्रायश्चित्त करना, लेकिन किसी को भी माया या दंभ से आलोयणा नहीं करना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से पापकर्म की वृद्धि होती है, अनादि अनन्त काल से माया-दंभ-कपट दोष से आलोचना करके शल्यवाली बनी हुई साध्वी, हुकूम उठाना पड़े जैसा सेवकपन पाकर परम्परा से छठ्ठी नारकी में गई है ।

सूत्र – १५२-१५३

कुछ साध्वी के नाम कहता हूँ उसे समझ-मान कि जिन्होंने आलोचना की है । लेकिन (माया-कपट समान) भाव-दोष का सेवन करने से विशिष्ट तरह से पापकर्ममल से उसका संयम और शील के अंग खरड़ाये हुए हैं । उस निःशल्यपन की प्रशंसा की है जो पलभर भी परमभाव विशुद्धि रहित न हो ।

सूत्र – १५४-१५५

इसलिए हे गौतम ! कुछ स्त्रीयों को अति निर्मल, चित्त-विशुद्धि भवान्तर में भी नहीं होती कि जिससे वो निःशल्य भाव पा सके, कुछ श्रमणी छठ्ठ-अठ्ठम, चार उपवास, पाँच उपवास इस तरह बारबार उपवास से शरीर सूखा देते हैं तो भी सराग भाव की आलोचना करती नहीं-छोड़ती नहीं ।

सूत्र – १५६-१५७

अनेक प्रकार के विकल्प देकर कल्लोल श्रेणी तरंग में अवगाहन करनेवाले दुःख से करके अवगाह किया

जाए, पारस पा सके वैसे मन समान सागर में विचरनेवाले को जानना नामुमकीन है । जिसके चित्त स्वाधीन नहीं वो आलोचना किस तरह दे (ले) सके ? ऐसे शल्यवाले का शल्य जो उद्धरते हैं वो पल-पल वंदनीय हैं ।

सूत्र – १५८-१६०

स्नेह-राग रहितपन से, वात्सल्यभाव से, धर्मध्यान में उल्लसित करनेवाले, शील के अंग और उत्तम गुण स्थानक को धारण करनेवाला स्त्री और दूसरे कईं बंधन से मुक्त, गृह, स्त्री आदि को कैदखाना माननेवाले, सुविशुद्ध अति निर्मल चित्तयुक्त और जो शल्यरहित करे वो महायशवाला पुरुष दर्शन करने के योग्य, वंदनीय और उत्तम ऐसे वो देवेन्द्र को भी पूजनीय है । कृतार्थी संसारिक सर्व चीज का अनादर करके जो उत्तर ऐसे विरति स्थान को धारण करता है । वो दर्शनीय-पूजनीय है ।

सूत्र – १६१-१६३

(जिस साध्वीओं ने शल्य की आलोचना नहीं की वो किस तरह से संसार के कटु फल पाती है ये बताते हैं।) मैं आलोचना नहीं करूँगी, किस लिए करूँ ? या साध्वी थोड़ी आलोचना करे, कईं दोष न करे, साध्वीओं ने जो दोष देखे हो वो ही दोष कहे, मैं तो निरवद्य-निष्पाप से – कहनेवाली हूँ, ज्ञानादिक आलम्बन के लिए दोष सेवन करना पड़े उसमें क्या आलोचना करना ? प्रमाद की क्षमापना माँग लेनेवाली श्रमणी, पाप करनेवाली श्रमणी, बल-शक्ति नहीं है ऐसी बातें करनेवाली श्रमणी, लोकविरुद्ध कथा करनेवाली श्रमणी, ''दूसरों ने ऐसा पाप किया है उसे कितनी आलोचना है'' ऐसा कहकर खुद की आलोचना लेनेवाली, किसी के पास वैसे दोष का प्रायश्चित्त सूना हो उस मुताबिक करे लेकिन अपने दोष का निवेदन न करे और जाति आदि आठ तरह से शंकित हुई श्रमणी (इस तरह शुद्ध आलोचना न ले)

सूत्र – १६४-१६५

झूठ बोलने के बाद पकड़े जाने के भय से आलोचना न ले, रस ऋद्धि शाता गारव से दूषित हुई हो और फिर इस तरह के कईं भाव दोष के आधीन, पापशल्य से भरी ऐसी श्रमणी अनन्ता संख्या प्रमाण और अनन्ताकाल से हुई हैं । वो अनन्ती श्रमणी कईं दुःखवाले स्थान में गई हुई हैं ।

सूत्र – १६६-१६७

अनन्ती श्रमणी जो अनादि शल्य से शल्यित हुई है । वो भावदोष रूप केवल एक ही शल्य से उपार्जित किए घोर, उग्र-उग्रतर ऐसे फल के कटु फल के विरस रस की वेदना भुगतते हुए आज भी नरक में रही है और अभी भावि में भी अनन्ता काल तक वैसी शल्य से उपार्जन किए कटु फल का अहसास करेगी । इसलिए श्रमणीओं को पलभर के लिए भी सूक्ष्म से सूक्ष्म शल्य भी धारण नहीं करना चाहिए ।

सूत्र – १६८-१६९

धग धग ऐसे शब्द से प्रज्वलित ज्वाला पंक्ति से आकुल महाभयानक भारित महाअग्नि में शरीर सरलता से जलता है । अंगार के ढ़ग में एक डूबकी लगा के फिर जल में, उसमें से स्थल में, उसमें से शरीर फिर से नदी में जाए ऐसे दुःख भूगते कि उससे तो मरना अच्छा लगे ।

सूत्र – १७०-१७१

परमाधामी देव शस्त्र से नारकी जीव के शरीर के छोटे-छोटे टुकड़े कर दे, हंमेशा उसे सलुकाई से अग्नि में होमे, सख्त, तीक्ष्ण करवत से शरीर फाड़कर उसमें लूण-उस-साजीखार भरे इससे अपने शरीर को अति शुष्क कर दे तो भी जीने तक अपने शल्य को उतारने के लिए समर्थ नहीं हो सकता ।

सूत्र – १७२-१७३

जव-खार, हल्दी आदि से अपना शरीर लींपकर मृतःप्राय करना सरल है । अपने हाथों से मस्तक छेदन करके रखना सरल है । लेकिन ऐसा संयम तप करना दुष्कर है, कि जिससे निःशल्य बना जाए ।

सूत्र – १७४-१७७

अपने शल्य से दुःखी, माया और दंभ से किए गए शल्य-पाप छिपानेवाला वो अपने शल्य प्रकट करने के लिए समर्थ नहीं हो सकता । शायद कोई राजा दुश्चरित्र पूछे तो सर्वस्व और देह देने का मंजूर हो । लेकिन अपना दुश्चरित्र कहने के लिए समर्थ नहीं हो सकता । शायद राजा कहे कि तुम्हें समग्र पृथ्वी दे दूँ लेकिन तुम अपना दुश्चरित्र प्रकट करो । तो भी कोई अपना दुश्चरित्र कहने के लिए तैयार न हो । उस वक्त पृथ्वी को भी तृण समान माने-लेकिन अपना दुश्चरित्र न कहे । राजा कहे कि तेरा जीवन काट देता हूँ इसलिए तुम्हारा दुश्चरित्र कहो । तब प्राण का क्षय हो तो भी अपना दुश्चरित्र नहीं कहते । सर्वस्व हरण होता है, राज्य या प्राण जाए तो भी कोई अपना दुश्चरित्र नहीं कहते । मैं भी शायद पाताल-नरक में जाऊंगा लेकिन मेरा दुश्चरित्र नहीं कहूँगा ।

सूत्र – १७८-१७९

जो पापी-अधम बुद्धिवाले एक जन्म का पाप छिपानेवाले पुरुष हो वो स्व दुश्चरित्र गोपते हैं । वो महापुरुष नहीं कहलाते । चरित्र में सत्पुरुष उसे कहा है कि जो शल्य रहित तप करने में लीन हो ।

सूत्र – १८०-१८३

आत्मा खुद पाप-शल्य करने की ईच्छावाला न हो और अर्धनिमिष आँख के पलक से भी आधा वक्त जितने काल में अनन्त गुण पापभार से तूट जाए तो निर्दंभ और मायारहित का ध्यान, स्वाध्याय, घोर तप और संयम से वो अपने पाप का उसी वक्त उद्धार कर सकते हैं । निःशल्यपन से आलोचना करके, निंदा करके, गुरु साक्षी से गर्हा करके उस तरह का दृढ़ प्रायश्चित्त करे जिससे शल्य का अन्त आ जाए । दूसरे जन्म में पूरी तरह उपार्जन किए और आत्मा में दृढ़ होकर क्षेत्रीभूत हुए, लेकिन पलक या अर्ध पलक में क्षण-मुहूर्त्त या जन्म पूरा होने तक जरुर पापशल्य का अन्त करनेवाला होता है ।

सूत्र – १८४-१८५

वो वाकई सुभट है, पुरुष है, तपस्वी है, पंड़ित है, क्षमावाला है, इन्द्रिय को वश में करनेवाला, संतोषी है । उसका जीवन सफल है । वो शूरवीर है, तारीफ करने के लायक है । पल-पल दर्शन के लायक है कि जिसने शुद्ध आलोचना करने के लिए तैयार होकर अपने अपराध गुरु के पास प्रकट करके अपने दुश्चरित्र को साफ बताया है ।

सूत्र – १८६-१८९

हे गौतम ! जगत में कुछ ऐसे प्राणी-जीव होते हैं, जो अर्धशल्य का उद्धार करे और माया, लज्जा, भय, मोह के कारण से मृषावाद करके अर्धशल्य मन में रखे । हीन सत्त्ववाले ऐसे उनको उससे बड़ा दुःख होता है । अज्ञान दोष से उनके चित्त में शल्य न उद्धरने के कारण से भावि में जरुर दुःखी होगा ऐसा नहीं सोचते । जिस तरह किसी के शरीर में एक या दो धारवाला शल्य-काँटा आदि घूसने के बाद उसे बाहर न नीकाले तो वो शल्य एक जन्म में, एक स्थान में रहकर दर्द दे या वो माँस समान बन जाए । लेकिन यदि पापशल्य आत्मा में घूस जाए तो, जिस तरह असंख्य धारवाला वज्र पर्वत को भेदता है उसी तरह यह शल्य असंख्यात भव तक सर्वांग को भेदता है

सूत्र – १९०-१९२

हे गौतम ! ऐसे भी कुछ जीव होते हैं जो लाख भव तक स्वाध्याय-ध्यान-योग से और फिर घोर तप और संयम से, शल्य उद्धार कर के दुःख और क्लेश से मुक्त हुए फिर से दुगुने-तीगुने प्रमाद के कारण से शल्य से पूर्ण होता है । फिर कईं जन्मान्तर बाद तप से जला देनेवाला कर्मवाला शल्योद्धार करने के लिए सामर्थ्य पा सकता है ।

सूत्र – १९३-१९६

उस प्रकार फिर से भी शल्योद्धार करने की सामग्री किसी भी तरह पाकर, जो कोई प्रमाद के वश में होता है वो भवोभव के कल्याण प्राप्ति के सर्व साधन हर तरह से हार जाता है । प्रमादरूपी चोर कल्याण की समृद्धि लूँट लेता है । हे गौतम ! ऐसी भी कुछ जीव होते हैं कि जो प्रमाद के आधीन होकर घोर तप का सेवन करने के

बावजूद भी सर्व तरह से अपना शल्य छिपाते हैं । लेकिन वो यह नहीं जानते कि यह शल्य उसने किससे छिपाया? क्योंकि पाँच लोकपाल, अपनी आत्मा और पाँच इन्द्रिय से कुछ भी गुप्त नहीं है । सुर और असुर सहित इस जगत में पाँच बड़े लोकपाल आत्मा और पाँच इन्द्रिय उन ग्यारह से कुछ भी गुप्त नहीं है ।

सूत्र – १९७

हे गौतम ! चार गति समान संसार में मृगजल समान संसार के सुख से ठगित, भाव दोष समान शल्य से धोखा खाता है और संसार में चारों गति में घूमता है ।

सूत्र – १९८-२००

इतना विस्तार से कहा समझकर दृढ़ निश्चय और दिल से धीरज रखनी चाहिए । और फिर महा उत्तम सत्व समान भाले से माया राक्षसी को भेदना चाहिए । कईं सरल भाव से कईं तरह माया को निर्मथन-विनाश करके विनय आदि अंकुश से फिर मान गजेन्द्र को वश में करे, मार्दव-सरलता समान मुसल-साँबिल से सेंकड़ो विषयों को चूर्ण कर देना और क्रोध-लाभ आदि मगर-मत्स्य को दूर से लड़ते हुए देखकर उसकी निंदा करे ।

सूत्र – २०१-२०५

निग्रह न किया हुआ क्रोध और मान, वृद्धि पानेवाले माया और लोभ ऐसे चार समग्र कषाय अतिशय दुःख से करके उद्धर न सके वैसे शल्य आत्मा में प्रवेश करे तब क्षमा से-उपशम से क्रोध को हर ले, नम्रता से मान को जीत ले, सरलता से माया को और संतोष के लोभ को जीतना इस प्रकार कषाय जीतकर जिसने सात भयस्थान और आठ मदस्थान का त्याग किया है, वो गुरु के पास शुद्ध आलोचना ग्रहण करने के लिए तैयार हो । जिस प्रकार दोष, अतिचार, शल्य लगे हो उस मुताबिक अपना सर्व दुश्चरित्र शंका रहित, क्षोभ रखे बिना, गुरु से निर्भय होकर निवेदन करे । भूत-प्रेत ने घैरा हो या बच्चे की तरह अति सरलता से बोले वैसे गुरु सन्मुख जिस मुताबिक शल्य-पाप हुआ हो उस प्रकार सब यथार्थ निवेदन करे-आलोचना करे ।

सूत्र – २०६-२०७

पाताल में प्रवेश करके, पानी के भीतर जाकर, घर के भीतर गुप्त जगह में, रात को या अंधेरे में या माँ के साथ भी जो किया हो वो सब और उसके अलावा भी अन्य के साथ अपने दुष्कृत्य एक बार या बार-बार जो कुछ किए हो वो सब गुरु समक्ष यथार्थ कहकर बताना जिससे पाप का क्षय हो ।

सूत्र – २०८

गुरु महाराज भी उसे तीर्थंकर परमात्मा की आज्ञा के अनुसार प्रायश्चित्त कहे, जिससे शल्यरहित होकर असंयम का परिहार करे ।

सूत्र – २०९-२१०

असंयम पाप कहलाता है और वो कईं तरह से बताया है । वो इस प्रकार – हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह । शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श ऐसे पाँच इन्द्रिय के विषय, क्रोध, मान, माया, लोभ वो चार कषाय, मन, वचन, काया ऐसे तीन दंड़ । इन पाप का त्याग किए बिना निःशल्य नहीं हो सकता ।

सूत्र – २११

पृथ्वी-अप्-तेऊ, वायु वनस्पति ये पाँच स्थावर, छठ्ठे त्रस जीव या नव-दश अथवा चौदह भेद से जीव । या काया के विविध भेद से बताते कईं तरह के जीव के हिंसा (के पाप की आलोचना करे ।)

सूत्र – २१२

हितोपदेश छोड़कर सर्वोत्तम और पारमार्थिक तत्त्वभूत धर्म का मृषावचन कईं तरह का है उस मृषारूप सर्व शल्य (की आलोचना करे ।)

सूत्र – २१३

उद्गम उत्पादना एषणा भेदरूप आहार पानी आदि के बयालीस और पाँच मांड़ली के दोष से दूषित ऐसे जो भाजन-पात्र उपकरण पानी-आहार और फिर यह सब नौ कोटी– (मन, वचन, काया से करण, करावण, अनुमोदन) से अशुद्ध हो तो उसका भोगवटा करे तो चोरी का दोष लगे । (उसकी आलोचना करे ।)

सूत्र – २१४-२१५

दिव्यकाम, रतिसुख यदि मन, वचन, काया से करे, करवाए, अनुमोदना करे, ऐसे त्रिविध-त्रिविध से रतिसुख पाए या औदारिक रतिसुख पाए या औदारिक रतिसुख मन से भी चिन्तवन करे तो उसे अ-ब्रह्मचारी मानो। ब्रह्मचर्य की नौ तरह की गुप्ति की जो कोई साधु या साध्वी विराधना करे या रागवाली दृष्टि करे तो वो ब्रह्मचर्य का पापशल्य पाती है । (उसकी आलोचना करना ।)

सूत्र – २१६

गण के प्रमाण से ज्यादा धर्म-उपकारण का संग्रह करे, वो परिग्रह है ।

सूत्र – २१७-२१८

कषाय सहित क्रूर भाव से जो कलूषित भाषा बोले, पापवाले दोषयुक्त वचन से जो उत्तर दे, वो भी मृषा-असत्य वचन जानना चाहिए । रज-धूल से युक्त बिना दिया हुआ जो ग्रहण करे वो चोरी । हस्तकर्म, शब्द आदि विषय का सेवन वो मैथुन, जिस चीज में मूर्च्छा, लालच, कांक्षा, ममत्वभाव हो वो परिग्रह, उणोदरी न करना, आकंठ भोजन करना उसे रात्रि भोजन कहा है ।

सूत्र – २१९-२२१

इष्ट शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श में राग और अनिष्ट शब्द आदि में द्वेष, पलभर के लिए भी मुनि न करे, चार कषाय चतुष्क को मन में ही उपशान्त कर दे, दुष्ट मन, वचन, काया के दंड़ का परिहार करे, अप्रासुक-सचित्त पानी का परिभोग न करे-उपभोग न करे, बीज-स्थावरकाय का संघट्ट-स्पर्श न करे ।

सूत्र – २२२-२२४

ऊपर कहे गए इस महापाप का त्याग न करे तब तक शल्यरहित नहीं होता । इस महा-पाप में से शरीर के लिए एक छोटा-सूक्ष्म पाप करे तब तक वो मुनि शल्यरहित न बने । इसलिए गुरु समक्ष आलोचना यानि पाप प्रकट करके, गुरु महाराज ने दिया प्रायश्चित्त करके, कपट-दंभ-शल्य रहित तप करके जो देव या मानव के भव में उत्पन्न हो वहाँ उत्तम जाति, उत्तम समृद्धि, उत्तम सिद्धि, उत्तम रूप, उत्तम सौभाग्य पाए । यदि उस भवे सिद्धि न पाए तो यह सब उत्तम सामग्री जरुर पाए । उस मुताबिक भगवंत के पास जो मैंने सूना वो कहता हूँ ।

सूत्र – २२५

यहाँ श्रुतधर को कुलिखित का दोष न देखा । लेकिन जो इस सूत्र की पूर्व की प्रति लिखी थी । उसमें ही कहीं श्लोकार्ध भाग, कहीं पद-अक्षर, कहीं पंक्ति, कहीं तीन-तीन पन्ने ऐसे काफी ग्रन्थ हिस्सा क्षीण हुआ था ।

अध्ययन-१-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

अध्ययन-२-कर्मविपाक-प्रतिपादन

उद्देशक-१

सूत्र – २२६-२२७

हे गौतम ! सर्व भाव सहित निर्मूल शल्योद्धार कर के सम्यग् तरह से यह प्रत्यक्ष सोचो कि इस जगत में जो संज्ञी हो, असंज्ञी हो, भव्य हो या अभव्य हो लेकिन सुख के अर्थी किसी भी आत्मा तिरछी, उर्ध्व अधो, यहाँ वहाँ ऐसे दश दिशा में अटन करते हैं ।

सूत्र – २२८-२२९

असंज्ञी जीव दो तरह के जानना, विकलेन्द्री यानि एक, दो, तीन, चार इतनी इन्द्रियवाले और एकेन्द्रिय, कृमि, कुंथु, माली उस क्रम से दो, तीन, चार इन्द्रियवाले विकलेन्द्रिय जीव और पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति वो स्थावर एकेन्द्रिय असंज्ञी जीव हैं । पशु, पंछी, नारकी, मानव, देव वो सभी संज्ञी हैं । और वो मर्यादा में-सर्वजीव में भव्यता और अभव्यता होती है । नारकी में विकलेन्द्रि और एकेन्द्रियपन नहीं होता ।

सूत्र – २३०-२३१

हमें भी सुख मिले (ऐसी ईच्छा से) विकलेन्द्रिय जीव को गर्मी लगने से छाँव में जाता है और ठंड़ लगे तो गर्मी में जाता है । तो वहाँ भी उन्हें दुःख होता है । अति कोमल अंगवाले उनका तलवा पलभर गर्मी या दाह को पलभर ठंड़क आदि प्रतिकूलता सहन करने के लिए समर्थ नहीं हो सकते ।

सूत्र – २३२-२३३

मैथुन विषयक संकल्प और उसके राग से–मोह से अज्ञान दोष से पृथ्वीकाय आदि एकेन्द्रिय में उत्पन्न होनेवाले को दुःख का अहसास नहीं होता । उन एकेन्द्रिय जीव का अनन्ताकाल परिवर्तन हो और वो बेइन्द्रियपन पाए, कुछ बेइन्द्रियपन नहीं पाते । कुछ अनादि काल के बाद पाते हैं ।

सूत्र – २३४

शर्दी, गर्मी, वायरा, बारिस आदि से पराभव पानेवाले मृग, जानवर, पंछी, सर्प आदि सपने में भी आँख की पलक के अर्ध हिस्से की भीतर के वक्त जितना भी सुख नहीं पा सकते ।

सूत्र – २३५

कठिन अनचाहा स्पर्शवाली तीक्ष्ण करवत और उसके जैसे दूसरे कठिन हथियार से चीरनेवाले, फटनेवाले, कटनेवाले, पल-पल कई वेदना का अहसास करनेवाले नारकी में रहे बेचारे नारक को सुख कैसे मिले ?

सूत्र – २३६-२३७

देवलोकमें देवत्व सब का समान है तो भी वहाँ एक देव वाहन बने और दूसरा (ज्यादा शक्तिवाले) देव उस पर आरोहण करे ऐसा वहाँ दुःख होता है । हाथ, पाँव, तुल्य और समान होने के बावजूद भी वो दुःखी हैं । उस वक्त माया-दंभ कर के मैं भव हार गया, धिक्कार हो मुझे, इतना तप किया तो भी आत्मा ठगकर । हल्का देवपन पाया ।

सूत्र – २३८-२४१

मानवपन में सुख का अर्थी खेती कर्म सेवा-चाकरी व्यापार शिल्पकला हंमेशा रात-दिन करते हैं । उसमें गर्मी सहते हैं, उसमें उनको भी कौन-सा सुख है ? कुछ मूरख दूसरों के घर समृद्धि आदि देखकर दिल में जलते हैं । कुछ तो बेचारे पेट की भूख भी पूरी नहीं कर सकते । और कुछ लोगों की हो वो लक्ष्मी भी क्षीण होती है । पुण्य की वृद्धि हो-तो यश-कीर्ति और लक्ष्मी की वृद्धि होती है, यदि पुण्य कम होने लगे तो यश, कीर्ति और समृद्धि कम होने लगते हैं । कुछ पुण्यवंत लगातार हजार साल तक एक समान सुख भुगतते रहते हैं, जब कि कुछ जीव एक

दिन भी सुख पाए बिना दुःख में काल निर्गमन करते हैं, क्योंकि मनुष्य ने पुण्यकर्म करना छोड़ दिया होता है ।

सूत्र – २४२

यह तो जगत के सारे जीव का संक्षेप से दुःख बताया । हे गौतम ! मानव जात में जो दुःख रहा है उसे सून

सूत्र – २४३

हर समय अहसास करनेवाले सेंकड़ो तरह के दुःख से उद्वेग पानेवाले और ऊब जानेवाले कुछ मानव वैराग्य नहीं पाते ।

सूत्र – २४४-२४५

संक्षेप से मानव को दो तरह का दुःख होता है, एक शारीरिक दूसरा मानसिक । और फिर दोनों के घोर प्रचंड़ और महारौद्र ऐसे तीन-तीन प्रकार होते हैं । एक मुहूर्त्त में जिसका अंत हो उसे घोर दुःख कहा है । कुछ देर बीच में विश्राम-आराम मिले तो घोर प्रचंड़ दुःख कहलाता है । जिसमें विश्रान्ति बिना हर एक वक्त में एक समान दुःख हंमेशा सहना पड़े । उसे घोर प्रचंड़ महारौद्र कहते हैं ।

सूत्र – २४६

मानव जातिमे घोर दुःख है । तिर्यंचगति में घोर प्रचंड़ दुख है और हे गौतम ! नारक के जीव का दुख घोर प्रचंड़ महारौद्र होता है ।

सूत्र – २४७

मानव को तीन प्रकार का दुःख होता है । जघन्य, मध्यम और उत्तम । तिर्यंच को जघन्य दुःख नहीं होता, नारक को उत्कृष्ट दुःख होता है ।

सूत्र – २४८-२५०

मानव को जो जघन्य दुःख हो वो दो तरह का जानना–सूक्ष्म और बादर । दूसरे बड़े दुःख विभाग रहित जानना । समूर्च्छिम मानव को सूक्ष्म और देव के लिए बादर दुःख होता है । महर्द्धिक देव को च्यवनकाल से बादर मानसिक दुःख हो हुकुम उठानेवाले सेवक-आभियोगिक देव को जन्म से लेकर जीवन के अन्त तक मानसिक बादर दुःख होता है । देव को शारीरिक दुःख नहीं होता । देवता का वज्र समान अति बलवान वैक्रिय हृदय होता है। वरना मानसिक दुःख से १०० टुकड़े होकर उसका हृदय भग्न होता है ।

सूत्र – २५१-२५२

बाकी के दो हिस्से रहित वो मध्यम और उत्तम दुःख । ऐसे दुःख गर्भज मानव के लिए मानो । अनगिनत साल की आयुवाले युगलीया को विमध्यम तरह का दुःख हो । गिनत साल के आयु वाले मानव को उत्कृष्ट दुःख ।

सूत्र – २५३

अब दुःख के अर्थवाले पर्याय शब्द कहा है । असुख, वेदना, व्याधि, दर्द, दुःख, अनिवृत्ति, अणराग (बेचैनी) अरति, क्लेश आदि कईं एकार्थिक पर्याय शब्द दुःख के लिए इस्तमाल किए जाते हैं ।

अध्ययन-२ उद्देशक-२

सूत्र – २५४

शारीरिक और मानसिक ऐसे दो भेदवाले दुःख बताए, उसमें अब हे गौतम ! वो शारीरिक दुःख अति स्पष्टतया कहता हूँ । उसे तुम एकाग्रता से सूनो ।

सूत्र – २५५-२६२

केशाग्र का लाख-क्रौड़वां भाग हो केवल उतने हिस्से को छूए तो भी निर्दोष वृत्तिवाले कुंथुजीव को इतना दर्द होता है कि यदि हमें कोई करवत से काटे या हृदय या मस्तक को शस्त्र से भेदे तो हम थर-थर काँपे, वैसे

कुंथुआ के सर्व अंग केवल छूने से उसे भीतर और बाहर भारी पीड़ा होती है । उस के शरीर में कंपारी होने लगे, वो पराधीन वाचा रहित होने से वेदना नहीं बता सकते । लेकिन भारा हुआ अग्नि सुलगे वैसे उसका मानसिक और शारीरिक दुःख अतिशय होता है । सोचते हैं कि यह क्या है ? मुझे यह भारी दर्द देनेवाला दुःख प्राप्त हुआ है, लम्बे उष्ण निसाँसे लेते हैं । यह दुःख का अन्त कब होगा ? कब छूटकारा मिलेगा ? इस दुःखसंकट से मुक्त होने के लिए क्या करूँ ? कहाँ भाग जाऊं ? क्या करूँ कि जिससे दुःख दूर हो और सुख मिले ? या क्या आच्छादन करूँ ? क्या पथ्य करूँ? ऐसे तीन कक्षाके व्यापारके कारण तीव्र महादुःखके संकटमें आकर फँसा हूँ, संख्याती आवलिका तक मैं क्लेशानुभव भूगतुं, समझता हूँ कि यह मुझे खुजली आई है, किसी तरह यह खुजली शान्त नहीं होगी ।

सूत्र – २६३-२६५

यह अध्यवसायवाला मानव अब क्या करता है वो हे गौतम ! तुम सूनो अब यदि उस कुंथु का जीव कहीं ओर चला गया न होता तो वो खुजली खुजलाते खुजलाते उस कुंथु के जीव को मार डालते हैं । या दीवार के साथ अपने शरीर को घिसे यानि कुंथु का जीव क्लेश पाए यावत् मौत हो, मरते हुए कुंथुआ पर खुजलाते हुए वो मानव निश्चय से अति रौद्र ध्यान में पड़ा है । ऐसा समझो यदि वो मानव आर्त्त और रौद्र के स्वरूप को जाननेवाला हो तो ऐसा खुजलानेवाला शुद्ध आर्तध्यान करनेवाला है ऐसे समझो ।

सूत्र – २६६

उसमें ही रौद्रध्यान में वर्तता हो वो उत्कृष्ट नरकायुष बाँधे और आर्त ध्यानवाला दुर्भगपन, स्त्रीपन, नापुरुषपन और तिर्यंचपन उपार्जन करे ।

सूत्र – २६७-२६९

कुंथुआ के पाँव के स्पर्श से उत्पन्न हुई खुजली से मुक्त होने की अभिलाषावाला बेचैन मानव फिर जो अवस्था पाता है वो कहते हैं । लावण्य चला गया है ऐसा अतिदीन, शोकमग्न, उद्वेगवाला, शून्य मनवाला, त्रस्त, मूढ़, दुःख से परेशान, धीमे, लम्बे निःसासे छोड़नेवाला, चित्त से आकुल, अविश्रांत दुःख के कारण से अशुभ तिर्यंच और नारकी के उचित कर्म बाँधकर भव परम्परा में भ्रमण करेगा ।

सूत्र – २७०

इस प्रकार कर्म को क्षयोपशम से कुंथुआ के निमित्त से उत्पन्न हुए दुःख को किसी तरह से आत्मा को मजबूत बनाकर यदि पलभर समभाव पाए और कुंथु जीव कोन खुजलाए वो महाक्लेश के पार हुआ समझो ।

सूत्र – २७१-२७५

शरण रहित उस जीव को क्लेश न देकर सुखी किया, इसलिए अति हर्ष पाए । और स्वस्थ चित्तवाला होकर सोचे-माने कि यदि एक जीव को अभयदान दिया और फिर सोचने लगे कि अब मैं निवृत्ति-शांति प्राप्त हुआ। खुजलाने से उत्पन्न होनेवाला पापकर्म दुःख को भी मैंने नष्ट किया । खुजलाने से और उस जीव की विराधना होने से मैं अपनेआप नहीं जान सकता कि मैं रौद्र ध्यान में जाता या आर्त ध्यान में जाता ? रौद्र और आर्त ध्यान से उस दुःख का वर्ग गुणांक करने से अनन्तानन्त दुःख तक पहुँच जाए । एक वक्त के भी आंतरा रहित सतत जैसा दिन को ऐसा रात को लगातार दुःख भुगतते हुए मुझे बीच में थोड़ी शान्ति भी न मिल सके, नरक और तिर्यंच गति में ऐसा दुःख सागरोपम के और असंख्यातकाल तक भुगतना पड़े और उस वक्त हृदय रसरूप होकर दुःखरूप अग्नि से जैसे पीगल जाता हो ऐसा अहसास करे ।

सूत्र – २७६

कुंथुआ को छूकर उपार्जन किए दुःख भुगतने के वक्त मन में ऐसा सोचे कि यह दुःख न हो तो सुन्दर, लेकिन उस वक्त चिंतवन करना चाहिए कि इस कुंथु के स्पर्श से उत्पन्न होनेवाली खुजली का दुःख मुझे कौन-से हिसाब में गिने जाए ?

सूत्र – २७७

कुंथुआ के स्पर्श का या खुजली का दुःख यहाँ केवल उपलक्षण से बताया । संसार में सबको दुःख तो प्रत्यक्ष ही है । उसका अहसास होने के बावजूद भी कुछ प्राणी नहीं जानते इसलिए कहता हूँ ।

सूत्र – २७८-२७९

दूसरे लेकिन महाघोर दुःख सर्व संसारी जीव को होते हैं । हे गौतम ! वो कितने दुःख यहाँ बयान करना ? जन्म-जन्मान्तर में केवल वाचा से इतना ही बोले कि, ''हण लो-मारो'' उतने वचन मात्र का जो यहाँ फल और पापकर्म का उदय होता है वो कहता हूँ ।

सूत्र – २८०-२८३

जहाँ-जहाँ वो उत्पन्न होता है वहाँ-वहाँ कईं भव-वन में हंमेशा मरनेवाला, पीटनेवाला, कूटनेवाला हंमेशा भ्रमण करता है । जो किसी प्राणी के या कीड़े तितली आदि जीव के अंग उपांग आँख, कान, नासिका, कमर, हड्डियाँ आदि शरीर के अवयव को तोड़ दे, अगर तुड़वा दे या ऐसा करनेवाले को अच्छा माने तो वो किए कर्म के उदय से घाणी-चक्की या वैसे यंत्र में जैसे तल पीले जाए वैसे वो भी चक या वैसे यंत्र में पीला जाएगा । इस तरह एक, दो, तीन, बीस, तीस या सो, हजार, लाख नहीं लेकिन संख्याता भव तक दुःख की परम्परा प्राप्त करेगा ।

सूत्र – २८४-२८६

प्रमाद या अज्ञान से अगर इर्ष्या दोष से जो कोई असत्य वचन बोलता है, सामनेवाले को अच्छे न लगने वाले अनिष्ट वचन सूनाते हैं-कामदेव के अगर शठपन के अभिमान से दुराग्रह से बार-बार बोले, कहलाए या उसकी अनुमोदना करे, क्रोध से लालच से, भय से, हास्य से, असत्य, अप्रिय, अनिष्ट वचन बोले तो उस कर्म के उदय से गूँगा, बूरे मुँहवाला, मूरख, बिमार, निष्फल वचनवाला हर एक भव में अपनी ही ओर से लाघव-लघुपन, अच्छे व्यवहारवाला होने के बावजूद हर एक जगह बार-बार झूठे कलंक पानेवाला होता है ।

सूत्र – २८७

जीवनिकाय के हित के लिए यथार्थ वचन बोला गया हो वो वचन निर्दोष है और शायद-असत्य हो तो भी असत्य का दोष नहीं लगता ।

सूत्र – २८८

इस प्रकार चोरी आदि के फल जानना, खेत आदि आरम्भ के कर्म करके प्राप्त धन की इस भव में या पूर्व जन्म में किए पाप से हानि होती दिखती है ।

अध्ययन-२ उद्देशक-३

सूत्र – २८९-२९१

उस प्रकार मैथुन के दोष से स्थावरपन भुगतकर कुछ अनन्तकाल मानव योनि में आए । मानवपन में भी कुछ लोगों की होजरी मंद होने से मुश्किल से आहार पाचन हो । शायद थोड़ा ज्यादा आहार भोजन करे तो पेट में दर्द होता है । या तो पल-पल प्यास लगे, शायद रास्ते में उनकी मौत हो जाए । बोलना बहुत चाहे इसलिए कोई पास में न बिठाए, सुख से किसी स्थान पर स्थिर न बैठ सके, मुश्किल से बैठे, स्थान मिले तो भी कला-विज्ञान रहित होने से कहीं आवकार न मिले, पाप उदयवाला वो बेचारा निद्रा भी न पा सके ।

सूत्र – २९२-२९३

इस प्रकार परिग्रह और आरम्भ के दोष से नरकायुष बाँधकर उत्कृष्ट तैंतीस सागरोपम के काल तक नारकी की तीव्र वेदना से पीड़ित है । चाहे कितना भी तृप्त हो उतना भोजन करने के बावजूद भी संतोष नहीं होता, मुसाफिर को जिस तरह शान्ति नहीं मिलती उसी तरह यह बेचारा भोजन करने के बाद भी तृप्त नहीं होता ।

सूत्र – २९४-२९५

क्रोधादिक कषाय के दोष से घो आशीविष दृष्टिविष सर्पपन पाकर, उसके बाद रौद्रध्यान करनेवाला मिथ्यादृष्टि होता है, मिथ्यादृष्टि वाले मानवपन में धूर्त, छल, प्रपंच, दंभ आदि लम्बे अरसे तक करके अपनी महत्ता लोगों को दिखाते हुए उस छल करते हुए उन्होंने तिर्यंचपन पाया ।

सूत्र – २९६-२९८

यहाँ भी कईं व्याधि रोग, दुःख और शोक का भाजन बने । दरिद्रता और क्लेश से पराभवित होनेवाला कईं लोगों की नफरत पाता है । उसके कर्म के उदय के दोष से हंमेशा फिक्र से क्षीण होनेवाले देहवाला इर्षा-विषाद समान अग्नि ज्वाला से हंमेशा धणधण-जल रहे शरीरवाले होते हैं । ऐसे अज्ञान बाल-जीव कईं दुःख से हैरान-परेशान होते हैं । उसमें उनके दुश्चरित्र का ही दोष होता है । इसलिए वो यहाँ किस पर गुस्सा करे ?

सूत्र – २९९-३००

इस तरह व्रत-नियम को तोड़ने से, शील के खंड़न से, असंयम में प्रवर्तन करने से, उत्सूत्रप्ररूपणा मिथ्या मार्ग की आचरणा-पवर्ताव से, कईं तरह की प्रभु की आज्ञा से विपरीत आचरण करने से, प्रमादाचरण सेवन से, कुछ मन से या कुछ वचन से या कुछ अकेली काया से करने से, करवाने से और अनुमोदन करने से मन, वचन, काया के योग का प्रमादाचरण सेवन से-दोष लगता है ।

सूत्र – ३०१

यह लगनेवाले दोष की विधिवत् त्रिविध से निंदा, गर्हा, आलोचना, प्रतिक्रमण, प्रायश्चित्त किए बिना दोष की शुद्धि नहीं होती ।

सूत्र – ३०२

शल्यसहित रहने से अनन्त बार गर्भ में १, २, ३, ४, ५, ६ मास तक उसकी हड्डियाँ, हाथ, पाँव, मस्तक आकृति न बने, उसके पहले भी गर्भ के भीतर विलय हो जाता है यानि गर्भ पीगल जाता है ।

सूत्र – ३०३-३०६

मानव जन्म मिलने के बावजूद वह कोढ़-क्षय आदि व्याधिवाला बने, जिन्दा होने के बावजूद भी शरीर में कृमि हो । कईं मक्खियाँ शरीर पर बैठे, बणबणकर उड़े, हंमेशा शरीर के सभी अंग सड़ जाए, हड्डियाँ कमझोर बने आदि ऐसे दुःख से पराभव पानेवाला अति शर्मीला, बूरा, गर्हणीय कईं लोगों को उद्वेग करवानेवाला बने, नजदीकी रिश्तेदारों को और बन्धुओं को भी अनचाहा उद्वेग करवानेवाला होता है । ऐसे अध्यवसाय-परिणाम विशेष से अकाम-निर्जरा से वो भूत-पिशाचपन पाए । पूर्वभव के शल्य से उस तरह के अध्यवसाय विशेष से कईं भव के उपार्जन किए गए कर्म से दशों दिशा में दूर-दूर फेंका जाए कि जहाँ आहार और जल की प्राप्ति मुश्किल हो, साँस भी नहीं ली जाए, ऐसे विरान अरण्य में उत्पन्न हो ।

सूत्र – ३०७-३०९

या तो एक-दूसरे के अंग-उपांग के साथ जुड़े हुए हों, मोह-मदिरा में चकचूर बना, सूर्य कब उदय और अस्त होता है उसका जिसे पता नहीं चलता ऐसे पृथ्वी पर गोल कृमिपन से उत्पन्न होते हैं । कृमिपन की वहाँ भवदशा और कायदशा भुगतकर कभी भी मानवता पाते हुए लेकिन नपुंसक उत्पन्न होता है । नपुंसक होकर अति क्रूर-घोर-रौद्र परिणाम का वहन करते और उस परिणामरूप पवन से जलकर-गीरकर मर जाता है और मरकर वनस्पति-काय में जन्म लेता है ।

सूत्र – ३१०-३१३

वनस्पतिपन पाकर पाँव ऊपर और मुँह नीचे रहे वैसे हालात में अनन्तकाल बीताते हुए बेइन्द्रियपन न पा सके वनस्पतिपन की भव और कायदशा भुगतकर बाद में एक, दो, तीन, चार, (पाँच) इन्द्रियपन पाए । पूर्व किए

हुए पापशल्य के दोष से तिर्यंचपन में उत्पन्न हो तो भी महामत्स्य, हिंसक पंछी, साँढ़ जैसे बैल, शेर आदि के भव पाए । वहाँ भी अति क्रूरतर परिणाम विशेष से माँसाहार, पंचेन्द्रिय जीव का वध आदि पापकर्म करने के कारण से गहरा उतरता जाए कि सातवीं नरकी तक भी पहुँच जाए ।

सूत्र – ३१४-३१५

वहाँ लम्बे अरसे तक उस तरह के महाघोर दुःख का अहसास करके फिर से क्रूरतिर्यंच के भव में पैदा होकर क्रूर पापकर्म करके वापस नारकी में जाए इस तरह नरक और तिर्यंच गति के भव का बारी-बारी परावर्तन करते हुए कईं तरह के महादुःख का अहसास करते हुए वहाँ हुए के जो दुःख हैं उनका वर्णन करोड़ साल बाद भी कहने के लिए शक्तिमान न हो सके ।

सूत्र – ३१६-३१८

उसके बाद गधे, ऊंट, बैल आदि के भव-भवान्तर करते हुए गाड़ी का बोज उठाना, भारवहन करना, कीलकयुक्त लकड़ी के मार का दर्द सहना, कीचड़ में पाँव फँस जाए वैसे हालात में बोझ उठाना । गर्मी, ठंड़ी, बारीस के दुःख सहना, वध बँधन, अंकन-निशानी करने के लिए कान-नाक छेदन, निर्लांछन, ड़ाम सहना, घुँसरी में जुड़कर साथ चलना, परोणी, चाबूक, अंकुश आदि से मार खाने से लगातार भयानक दुःख जैसा रात को ऐसा दिन में ऐसे सर्वकाल जीवन पर्यन्त दुःख सहना यह और उसके जैसे दूसरे कईं दुःखसमूह को चीरकाल पर्यन्त महसूस करके दुःख से पीड़ित आर्तध्यान करते हुए महा मुश्किल से प्राण का त्याग करता है ।

सूत्र – ३१९-३२३

और फिर वैसे किसी शुभ अध्यवसाय विशेष से किसी भी तरह मनुष्यत्व पाए लेकिन अभी पूर्व किए गए शल्य के दोष से मनुष्य में आने के बाद भी जन्म से ही दरिद्र के वहाँ उत्पन्न होता है । वहाँ व्याधि, खस, खुजली आदि रोग से घिरे हुए रहता है और सब लोग उसे न देखने में कल्याण मानते हैं । यहाँ लोगों की लक्ष्मी हड़प लेने की दृढ़ मनोभावना से दिल में जलता रहता है । जन्म सफल किए बिना वापस मर जाए अध्यवसाय विशेष को आश्रित करके वैसे पृथ्वी आदि स्थावरकाय में घूमे या तो दो, तीन, चार, पाँच इन्द्रियवाले भव में उस तरह का अति रौद्र घोर भयानक महादुःख भुगतते हुए चारों गति समान संसार अटवी में दुःसह दर्द सहते हुए (हे गौतम !) वो जीव सर्प योनि में भव और काय दशा खपाते हुए घूमता रहता है ।

सूत्र – ३२४

जो आगे एक बार पूर्वभव में शल्य या पाप दोष का सेवन किया था, उस कारण से चारों गति में भ्रमण करते हुए और हर एक भव में जन्मधारण, अनेक व्याधि, दर्द, रोग, शोक, दरिद्रता, क्लेश, झूठे कलंक पाना, गर्भावास आदि के दुःख समान अग्नि में जलनेवाला बेचारा ''क्या नहीं पा सकता'' वो बताता है । निर्वाण गमन उचित आनन्द महोत्सव स्वरूप सामर्थ्ययोग, मोक्ष दिलानेवाला अठ्ठारह हजार शीलांग रथ और सर्व पापराशि एवं आठ तरह के कर्म के विनाश के लिए समर्थ ऐसे अहिंसा के लक्षणवाला वीतराग सर्वज्ञकथित धर्म और बोधि-सम्यक्त्व नहीं पा सकता ।

सूत्र – ३२५-३२७

परिणाम विशेष को आश्रित करके कोई आत्मा लाख पुद्गल परिवर्तन के लम्बे अरसे के बाद महा मुसीबत से बोधि प्राप्त करे । ऐसा अति दुर्लभ सर्व दुःख का क्षय करनेवाला बोधि रत्न प्राप्त करके जो कोई प्रमाद करे वो फिर से इस तरह के पहले बताए उस योनि में उसी क्रम में उसी मार्ग में जाते हैं और वैसे ही दुःख पाते हैं ।

सूत्र – ३२८-३२९

उस प्रकार सर्व पुद्गल के सर्व पर्याय सर्व वर्णान्तर सर्व गंधरूप से, रसरूप से, स्पर्शपन से, संस्थानपन से अपनी शरीररूप में, परिणाम पाए, भवस्थिति और कायस्थिति के सर्वभाव लोक के लिए परिणामान्तर पाए, उतने

पुद्गल परावर्तन काल तक बोधि पाए या न पाए ।

सूत्र – ३३०-३३१

इस प्रकार व्रत-नियम का भंग करे, व्रत-नियम तोड़नेवाले की उपेक्षा करे, उसे स्थिर न करे, शील-खंड़न करे, अगर शील खंड़न करनेवाले की उपेक्षा करे, वो संयम विराधना करे या संयम विराधक की उपेक्षा करे, उन्मार्ग का प्रवर्तन करे और ऐसा करते हुए न रोके, उत्सूत्र का आचरण करे और सामर्थ्य होते हुए भी उसे न रोके या उपेक्षा करे, वो सब आगे वर्णित क्रम से चारों गतिरूप संसार में परिभ्रमण करता है ।

सूत्र – ३३२-३३३

सामनेवाला आदमी क्रोधित बने या तोषायमान बने, झहर खाकर मरण की बातें करे या भय बताता हो तो भी हंमेशा स्वपक्ष को गुण करनेवाला खुद को या दूसरों का हित हो वैसा ही भाषा बोलनी इस तरह हितकारी वचन बोलनेवाला बोध पाए या पाए हुए बोधि को निर्मल करता है ।

सूत्र – ३३४-३३५

खुले आश्रव द्वारवाले जीव प्रकृति, स्थिति, प्रदेश और रस से कर्म की चिकनाईवाले होते हैं । वैसी आत्मा कर्म का क्षय या निर्जरा कर सके इस तरह घोर आठ कर्म में मल में फँसे हुए सर्व जीव को दुःख से छूटकारा किस तरह मिले ? पूर्व दुष्कृत्य पाप कर्म किए हो, उस पाप का प्रतिक्रमण न किया हो ऐसे खुद के किए हुए कर्म भुगते बिना अघोर तप का सेवन किए बिना उस कर्म से मुक्त नहीं हो सकते ।

सूत्र – ३३६-३३७

सिद्धात्मा, अयोगी और शैलेशीकरण में रहे सिवाय तमाम संसारी आत्मा हरएक वक्त कर्म बाँधते हैं । कर्मबंध बिना कोई जीव नहीं है । शुभ अध्यवसाय से शुभ कर्म, अशुभ अध्यवसाय से अशुभ कर्मबंध, तीव्रतर परिणाम से तीव्रतर रसस्थितिवाले और मंद परिणाम से मंदरस और अल्प स्थितिवाले कर्म उपार्जित करे ।

सूत्र – ३३८

सर्व पापकर्म इकट्ठे करने से जितना रासिढ़ग हो, उसे असंख्यात गुना करने से जितना कर्म का परिमाण हो उतने कर्म, तप, संयम, चारित्र का खंड़न और विराधना करने से और उत्सूत्र मार्ग की प्ररूपणा, उत्सूत्र मार्ग की आचरणा और उसकी उपासना करने से उपार्जन होता है ।

सूत्र – ३३९

यदि सर्व दानादि स्व-पर हित के लिए आचरण किया जाए तो अ-परिमित महा, ऊंचे, भारी, आंतरा रहित गाढ पापकर्म का ढ़ग भी क्षय हो जाए । संयम-तप के सेवन से दीर्घकाल के सर्व पापकर्म का विनाश हो जाता है ।

सूत्र – ३४०-३४४

यदि सम्यक्त्व की निर्मलता सहित आनेवाले आश्रवद्वार बंध करके जब वहाँ अप्रमादी बने तब वहाँ बंध अल्प करे और काफी निर्जरा करे, आश्रवद्वार बंध करके जब प्रभु की आज्ञा का खंड़न न करे और ज्ञान-दर्शन चारित्र से दृढ़ बने तब पहले के बांधे हुए सर्व कर्म खपा दे और अल्प स्थितिवाले कर्म बाँधे, उदय न हुए हो वैसे वैसे कर्म भी घोर उपसर्ग परिषह सहकर उदीरणा करके उसका क्षय करे और कर्म पर जय पाए । इस प्रकार आश्रव के कारण को रोककर सर्व आशातना का त्याग करके स्वाध्याय ध्यान योग में और फिर धीर वीर ऐसे तप में लीन बने, सम्पूर्ण संयम मन, वचन, काया से पालन करे तब उत्कृष्ट बंध नहीं करता और अनन्त गुण कर्म की निर्जरा करता है

सूत्र – ३४५-३४८

सर्व आवश्यक क्रिया में उद्यमवन्त बने हुए, प्रमाद, विषय, राग, कषाय आदि के आलम्बन रहित बाह्य अभ्यंतर सर्व संग से मुक्त, रागद्वेष मोह सहित, नियाणा रहित बने, विषय के राग से निवृत्त बने, गर्भ परम्परा से

भय लगे, आश्रव द्वार का रोध करके क्षमादि यतिधर्म और यमनियमादि में रहा हो, उस शुक्ल ध्यान की श्रेणी में आरोहण करके शैलेशीकरण प्राप्त करता है, तब लम्बे अरसे से बाँधा हुआ समग्र कर्म जलाकर भस्म करता है, नया अल्प कर्म भी नहीं बाँधता । ध्यानयोग की अग्नि में पाँच ह्रस्वाक्षर बोले जाए उतने कम समय में भव तक टिकनेवाले समग्र कर्म को जलाकर राख कर देता है ।

सूत्र – ३४९-३५०

इस प्रकार जीव के वीर्य और सामर्थ्य योग से परम्परा से कर्म कलंक के कवच से सर्वथा मुक्त होनेवाले जीव एक समय में शाश्वत, पीड़ा रहित रोग, बुढ़ापा, मरण से रहित, जिसमें किसी दिन दुःख या दारिद्र न देखा जाता हो । हंमेशा आनन्द का अहसास हो वैसे सुखवाला शिवालय-मोक्षस्थान पाता है ।

सूत्र – ३५१-३५३

हे गौतम ! ऐसे जीव भी होते हैं कि जो आश्रवद्वार बन्ध कर के क्षमादि दशविध संयम स्थान आदि पाया हुआ हो तो भी दुःख मिश्रित सुख पाता है । इसलिए जब तक समग्र आठ कर्म घोर तप और संयम से निर्मूल-सर्वथा जलाए नहीं, तब तक जीव को सपने में भी सुख नहीं हो सकता । इस जगतमें सर्व जीव को विश्रान्ति बिना दुःख लगातार भुगतना होता है । एक समय भी ऐसा नहीं जिसमें इस जीवने आया हुआ दुःख समता से सहा हो

सूत्र – ३५४-३५५

कुंथुआ के जीव का शरीर कितना ? हे गौतम ! वो तु यदि सोचे- छोटे से छोटा, उससे भी छोटा, उससे भी काफी अल्प उसमें कुंथु, उसका पाँव कितना ? पाँव की धार तो केवल छोटे से छोटा हिस्सा, उसका हिस्सा भी यदि हमारे शरीर को छू ले या किसी के शरीर पर चले तो भी हमारे दुःख का कारण न बने । लाख कुंथुआ के शरीर को इकट्ठे करके छोटे तराजू से तोल-नाप करके उसका भी एक पल (मिलिग्राम) न बने, तो एक कुंथु का शरीर कितना हो ? ऐसे छोटे एक कुंथुआ के पाँव की धार के हिस्से के स्पर्श को सह नहीं सकते और पादाग्र हिस्से को छूने से आगे कहे अनुसार वैसी दशा जीव सहते हैं । हे गौतम ! वैसे दुःख के समय कैसी भावना रखनी वो सून ।

सूत्र – ३५६-३६५

कुंथु समान छोटा जानवर मेरे मलीन शरीर पर भ्रमण करे, संचार करे, चले तो भी उसको खुजलाकर नष्ट न करे लेकिन रक्षण करे, यह हंमेशा यहाँ नहीं रहेगा । शायद दूसरे पल में चला जाए, दूसरे पल में नहीं रहेगा । शायद दूसरे पल में न चला जाए तो हे गौतम ! इस प्रकार भावना रखनी, यह कुंथु राग से नहीं बसा या मुज पर उसे द्वेष नहीं, क्रोध से, मत्सर से, ईर्ष्या से, बैर से मुझे डँसता नहीं या क्रीड़ा करने की ईच्छा से मुजे डँसता नहीं । कुंथु वैर भाव से किसी के शरीर पर नहीं चड़ता । वो तो किसी के भी शरीर पर ऐसे ही चड़ जाता है । विकलेन्द्रिय हो, बच्चा हो, दूसरे किसी जानवर हो, या जलता हुआ अग्नि और वावड़ी के पानी में भी प्रवेश करे । वो कभी भी यह न सोचे कि यह मेरे पूर्व का बैरी है या मेरा रिश्तेदार है इसलिए आत्मा को ऐसा सोचना चाहिए कि इसमें मेरी आशातना-पाप का उदय हुआ है ।ऐसे जीव के प्रति मैंने कौन-सी अशाता का दुःख किया होगा । पूर्वभव में किए गए पापकर्म के फल भुगतने का या उस पाप पूंज का अन्त लाने के लिए मेरे आत्मा के हित के लिए यह कौन-सा तिरछी, ऊर्ध्व, अधो दिशा और विदिशा में मेरे शरीर पर इधर-उधर घूमता है । इस दुःख को समभाव से सहन करूँगा तो मेरे पापकर्म का अन्त होगा ।

शायद कुंथु को शरीर पर घूमते-घूमते महावायरा की झपट लगी हो तो उस कुंथु को शारीरिक दुस्सह दुःख और रौद्र और आर्तध्यान का महादुःख वृद्धि पाए । ऐसे वक्त में सोचो कि इस कुंथुआ के स्पर्श से तुझे थोड़ा भी दुःख हुआ है वो भी तुम सह नहीं सकते और आर्त रौद्र ध्यान में चला जाता है तो उस दुःख के कारण से तू शल्य का आरम्भ करके मनोयोग, वचनयोग, काययोग, समय, आवलिका, मुहूर्त्त तक शल्यवाला होकर उसका फल तुम्हें दीर्घकाल तक सहना पड़ेगा उस वक्त वैसे दुःख को तू किस तरह सह सकेगा ?

सूत्र – ३६६

वो दुःख कैसे होगा ? चार गति और ८४ लाख योनि स्वरूप कईं भव और गर्भावास सहना पड़ेगा, जिसमें रात-दिन के प्रत्येक समय सतत घोर, प्रचंड़ महा भयानक दुःख सहना पड़ेगा – हाहा-अरे रे ! – मर गया रे ऐसे आक्रन्द करना पड़ेगा ।

सूत्र – ३६७

नारक और तिर्यंच गति में कोई रक्षा करनेवाला या शरणभूत नहीं होता । बेचारे अकेले-अपने शरीर को किसी सहाय करनेवाला न मिले, वहाँ कटू और कठिन विरस पाप के फल भुगतना पड़े ।

सूत्र – ३६८

नारकी तलवार की धार समान पत्रवाले पेड़ के वन में छाँव की ईच्छा से जाए तो पवन से पत्ते शरीर पर भी पड़े यानि शरीर के टुकड़े हो । लहू, परु, चरबी केशवाले दुर्गंधयुक्त प्रवाहवाली वैतरणी नदी में डूबना, यंत्र में पीलना, करवत से कटना । कंटकयुक्त शाल्मली पेड़ के साथ आलिंगन, कुंभी में पकाना, कौए आदि पंछी की चोंच की मार सहना, शेर आदि जानवर के चबाने के दुःख और वैसे कईं दुःख नरकगति में पराधीन होकर भुगतना पड़े ।

सूत्र – ३६९-३७०

तिर्यंच को नाक-कान बींधना, वध, बँधन, आक्रंदन करनेवाले प्राणी के शरीर में से माँस काटे, चमड़ी उतारे, हल-गाड़ी को खींचना, अति बोझ सहन करने के लिए, धारवाली परोणी भोंकना, भूख प्यास का, लोह की कठिन नाल, पाँव में खीली लगाई है, बलात्कार से बाँधकर शस्त्र से अग्नि के ड़ाम देकर अंकित करे । जलन उत्पन्न करनेवाली चीज के अंजन आँख में लगाए, आदि पराधीनपन के निर्दयता से कईं दुःख तिर्यंचभव में भुगतना पड़े ।

सूत्र – ३७१

कुंथुआ के पाँव के स्पर्श से उत्पन्न होनेवाली खुजली का दुःख तू यहाँ सहने के लिए समर्थ नहीं बनता तो फिर ऊपर कहे गए नरक तिर्यंचगति के अति भयानक महादुःख आएंगे तब उसका निस्तार-पार कैसे पाएंगे ?

सूत्र – ३७२-३७५

नारकी और तिर्यंच के दुःख और कुंथुआ के पाँव के स्पर्श का दुःख वो दोनों दुःख का अंतर कितना है ? तो कहते हैं मेरु पर्वत के परमाणु को अनन्त गुने किए जाए तो एक परमाणु जितना भी कुंथु के पाँव के स्पर्श का दुःख नहीं है । यह जीव भव के भीतर लम्बे अरसे से सुख की आकांक्षा कर रहे हैं । उसमें भी उसे दुःख की प्राप्ति होती है । और फिर भूतकाल के दुःख का स्मरण करने से वो अति दुःखी हो जाता है । इस प्रकार कईं दुःख के संकट में रहे लाख आपदा से भरा ऐसे संसार में जीव बसा है । उसमें अचानक मध्यबिन्दु प्राप्त हो जाए तो मिला हुआ सुख कोई न जाने दे, लेकिन... जो आत्मा पथ्य और अपथ्य, कार्य और अकार्य, हित और अहित सेव्य-असेव्य और आचरणीय – अनाचरणीय के फर्क का विवेक नहीं करता (धर्म-अधर्म को नहीं जानता) वो बेचारे आत्मा की भावि में कैसी स्थिति हो ?

सूत्र – ३७६

इसलिए यह सर्व हकीकत सूनकर दुःख का अन्त करनेवाले को स्त्री, परिग्रह और आरम्भ का त्याग करके संयम और तप की आसेवना करनी चाहिए ।

सूत्र – ३७७-३८४

अलग आसन पर बैठी हुई, शयन में सोती हुई, मुँह फिराकर, अलंकार पहने हो या न पहने हो, प्रत्यक्ष न हो लेकिन तसवीर में बताई हो उनको भी प्रमाद से देखे तो दुर्बल मानव को आकर्षण करते हैं । यानि देखकर राग हुए बिना नहीं रहता । इसलिए गर्मी वक्त के मध्याह्न के सूर्य को देखकर जिस तरह दृष्टिबंध हो जाए, वैसे स्त्री को चित्रामणवाली दीवार या अच्छी अलंकृत हुई स्त्री को देखकर तुरन्त नजर हटा लेना । कहा है कि जिसके हाथ पाँव

कट गए हो, कान, नाक, होठ छेदन हुए हो, कोढ़ रोग के व्याधि से सड़ गई हो । वैसी स्त्री को भी ब्रह्मचारी पुरुष काफी दूर से त्याग करे । बुढ़ी भार्या या जिसके पाँच अंग में से शृंगार टपक रहा हो वैसी यौवना, बड़ी उम्र की कँवारी कन्या, परदेश गए हुए पतिवाली, बालविधवा और अंतःपुर की स्त्री स्वमत्त-परमत्त के पाखंड़ धर्म को कहनेवाली दीक्षित साध्वी, वेश्या या नपुंसक ऐसे विजातीय मानव हो, उतना ही नहीं लेकिन तिर्यंच, कुत्ती, भेंस, गाय, गधी, खचरी, बोकड़ी, घेटी, पत्थर की बनी स्त्री की मूरत हो, व्यभिचारी स्त्री, जन्म से बीमार स्त्री । इस तरह से परिचित हो या अनजान स्त्री हो, चाहे जैसी भी हो और रात को आती जाती है, दिन में भी एकान्त जगह में रहती है वैसे निवास स्थान, उपाश्रय, वसति को सर्व उपाय से अत्यंत रूप से अति दूर से ब्रह्मचारी पुरुष त्याग करे

सूत्र – ३८५

हे गौतम ! उनके साथ मार्ग में सहवास-संलाप-बातचीत न करना, उसके सिवा बाकी स्त्रीयों के साथ अर्धक्षण भी वार्तालाप न करना । साथ मत चलना ।

सूत्र – ३८६

हे भगवंत ! क्या स्त्री की ओर सर्वथा नजर ही न करना ? हे गौतम ! ना, स्त्री की ओर नजर नहीं करनी या नहीं देखना, हे भगवंत ! पहचानवाली हो, वस्त्रालंकार से विभूषित हो वैसी स्त्री को न देखना या वस्त्रालंकार रहित हो उसे न देखना ? हे गौतम ! दोनों तरह की स्त्री को मत देखना । हे भगवंत ! क्या स्त्रीयों के साथ आलाप-संलाप भी न करे ? हे गौतम ! नहीं, स्त्री के साथ वार्तालाप भी मत करना । हे भगवंत ! स्त्री के साथ अर्धक्षण भी संवास न करना ? हे गौतम ! स्त्री के साथ क्षणार्ध भी संवास मत करो । हे भगवंत ! क्या रास्ते में स्त्री के साथ चल सकते हैं ? – हे गौतम ! एक ब्रह्मचारी पुरुष अकेली स्त्री के साथ मार्ग में नहीं चल सकता ।

सूत्र – ३८७

हे भगवंत ! आप ऐसा क्यों कहते हैं कि–स्त्री के मर्म अंग-उपांग की ओर नजर न करना, उसके साथ बात न करना, उसके साथ वास न करना, उसके साथ मार्ग में अकेले न चलना ? हे गौतम ! सभी स्त्री सर्व तरह से अति उत्कट मद और विषयाभिलाप के राग से उत्तेजित होती है । स्वभाव से उस का कामाग्नि हंमेशा सुलगता रहता है । विषय की ओर उसका चंचल चित्त दौड़ता रहता है । उस के हृदय में हंमेशा कामाग्नि दर्द देता हे, सर्व दिशा विदिशामें वो विषय की प्रार्थना करता है। इसलिए सर्व तरह से पुरुष का संकल्प और अभिलाष करनेवाली होती है

उस कारण से जहाँ सुन्दर कंठ से कोई संगीत गाए तो वो शायद मनोहर रूपवाला या बदसूरत हो, तरो-ताजा जवानीवाला या बीती हुई जवानीवाला हो । पहले देखा हुआ हो या अनदेखा हो । ऋद्धिवाला या रहित हो, नई समृद्धि पाई हो या न पाई हो, कामभोग से ऊब गया हो या विषय पाने की अभिलाषा वाला हो, बुढ्ढे देहवाला या मजबूत शरीरवाला हो, महासत्त्वशाली हो या हीन सत्त्ववाला हो, महापराक्रमी हो या कायर हो, श्रमण हो या गृहस्थ हो, ब्राह्मन हो या निन्दित, अधम-नीच जातिवाला हो वहाँ अपनी श्रोत्रेन्द्रिय के उपयोग से, चक्षु-इन्द्रिय के उपयोग से, रसनेन्द्रिय के उपयोग से, घ्राणेन्द्रिय के उपयोग से, स्पर्शेन्द्रिय के उपयोग से तुरन्त ही विषय प्राप्ति के लिए, तर्क, वितर्क, विचार और एकाग्र चित्तवाली बनेगी । एकाग्र चित्तवाली होकर उसका चित्त शोभायमान होगा । और फिर चित्त में मुझे यह मिलेगा या नहीं ? ऐसी द्विधा में रहेंगे । उसके बाद शरीर में पसीना छूटेगा । उसके बाद आलोक-परलोक में ऐसी अशुभ सोच से नुकसान होगा । उसके विपाक मुझे कम-ज्यादा प्रमाण में भुगतने पड़ेंगे वो बात उस वक्त उसके दिमाग से नीकल जाए तब लज्जा, भय, अपयश, अपकीर्ति, मर्यादा का त्याग करके ऊंचे स्थान से नीचे स्थान में बैठ जाते हैं । जितने में ऊंचे स्थान से नीचे स्थान पर परिणाम की अपेक्षा से हलके परिणाम वाली उस स्त्री की आत्मा होती है । उतने में असंख्यात समय और आवलिका बीत जाते हैं ।

जितने में असंख्यात समय और आवलिका चली जाती है । उतने में प्रथम समय से जो कर्म की दशा होती है और दूसरे समय तीसरे समय उस प्रकार प्रत्येक समय यावत् संख्याता समय असंख्यात समय, अनन्त समय

क्रमशः पसार होता है । तब आगे के समय पर संख्यातगुण, असंख्यातगुण, अनन्तगुण कर्म की दशा इकट्ठी करता है । यावत् असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी पूरी हो तब तक नारकी और तिर्यंच दोनों गति के लिए उत्कृष्ट कर्म स्थिति उपार्जन करे । इस प्रकार स्त्री विषयक संकल्पादिक योग से करोड़ लाख उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी तक भुगतना पड़े वैसे नरक तिर्यंच के उचित कर्मदशा उपार्जन करे ।

वहाँ से नीकलने के बाद भवान्तर में कैसे हालात सहने पड़ते हैं वो बताते हैं कि स्त्री की ओर दृष्टि या कामराग करने से उस पाप परम्परा से कदरूपता, श्याम देहवाला, तेज, कान्ति रहित, लावण्य और शोभा रहित, नष्ट होनेवाले तेज और सौभाग्यवाला और फिर उसे देखकर दूसरे उद्वेग पाए वैसे शरीरवाला होता है । उसकी स्पर्शइन्द्रिय सीदती है । उस के बाद उस के नेत्र-अंग उपांग देखने के लिए रागवाले और

लाल वर्णवाले होते हैं । विजातीय की ओर नेत्र रागवाले होते हैं । जितने में नयनयुगल कामराग के लिए अरुण वर्णवाले मदपूर्ण बनते हैं ।

काम के रागांधपन से अति महान भारी दोष और ब्रह्मव्रत भंग, नियमभंग को नहीं गिनते, अति महान घोर पापकर्म के आचरण को, शीलखंड़न को नहीं गिनते अति महान सबसे भारी पापकर्म के आचरण, संयम विराधना की परवा नहीं करते । घोर अंधेरे समान नारकी रूप परलोक के भय को नहीं गिनते । आत्मा को भूल जाते हैं, अपने कर्म और गुणस्थानक को नहीं गिनते । देव और असुर सहित समग्र जगत को जिसकी आज्ञा अलंघनीय है उसकी भी परवा नहीं । ८४ लाख योनि में लाख बार परीवर्तन और गर्भ की परम्परा अनन्त बार करनी पड़ेगी । वो बात भी भूल जाते हैं । अर्ध पलक जितना काल भी जिसमें सुख नहीं है । और चारों गति में एकान्त दुःख है । वह जो देखनेलायक है वो नहीं देखते और न देखनेलायक देखते हैं ।

सर्वजन समुदाय इकट्ठे हुए हैं । उनके बीच बैठी हुई या खड़ी होनेवाली, भूमि पर लैटी हुई – सोई हुई या चलती हुई, सर्व लोग से दिखनेवाली झगमग करते सूर्य की किरणों के समूह से दश दिशा में तेज राशि फैल गई है तो भी जैसे खुद ऐसा मानती हो कि सर्व दिशा में शून्य अंधेरा ही है । रागान्ध और कामान्ध बनी खुद जैसे ऐसा न मानती हो कि जैसे कोई देखता या जानता नहीं । जब कि वो रागांध हुई अति महान भारी दोषवाले व्रतभंग, शीलखंड़न, संयम विराधना, परलोक भय, आज्ञा का भंग, आज्ञा का अतिक्रमण, संसार में अनन्त काल तक भ्रमण करने समान भय नहीं देखती या परवा नहीं करती । न देखनेलायक देखती है । सब लोगों को प्रकट दिखनेवाला सूर्य हाजिर होने के बाद भी सर्व दिशा में जैसे अंधेरा फैला हो ऐसा मानते हैं ।

जिसका सौभाग्यातिशय सर्वथा ऊड गया है, मुँह लटकानेवाली, लालीमावाली थी वो फीके-मुर्झा गए, दुर्दर्शनीय, नहीं देखनेलायक, वदनकमलवाली होती है । उस वक्त काफी तड़पती थी । और फिर उसके कमलपुर, नितम्ब, वत्सप्रदेश, जघन, बाहुलतिका, वक्षःस्थल, कंठप्रदेश धीरे-धीरे स्फुरायमान होते हैं । उसके बाद गुप्त और प्रकट अंग विकारवाले बना देते हैं । उसके अंग सर्व उपांग कामदेव के तीर से भेदित होकर जर्जरित होते हैं । पूरे देह पर का रोमांच खड़ा होता है, जितने में मदन के तीर से भेदित होकर शरीर जर्जरित होता है उतने में शरीर में रही धातु कुछ चलायमान होती है । उसके बाद शरीर पुद्गल नितम्ब साँथल बाहुलतिका कामदेव के तीर से पीड़ित होती है । शरीर पर का काबू स्वाधीन नहीं रहता । नितम्ब और शरीर को महा मुसीबत से धारण कर सकते हैं । और ऐसा करते हुए अपने शरीर अवस्था की दशा खुद पहचान या समझ नहीं सकती । वैसी अवस्था पाने के बाद बारह समय में शरीर से निश्चेष्ट दशा हो जाती है । साँस प्रतिस्खलित होती है । फिर मंद-मंद साँस ग्रहण करते हैं ।

इस प्रकार कही हुई इतनी विचित्र तरह की अवस्था काम की चेष्टा पाती है । और वो जैसे किसी पुरुष या स्त्री को ग्रह का वलगाड़ चीपका हो । होशियार पिशाच ने शरीर में प्रवेश किया हो तब चाहे कुछ भी बोला करे । इधर-ऊधर का मन चाहे ऐसा बकवास करे उसकी तरह कामपिशाच या ग्रस्त होनेवाली स्त्री भी कामावस्था में चाहे वैसे असंबद्ध वचन बोले, कामसमुद्र के विषमावर्त में भटकती, मोह उत्पन्न करनेवाले काम के वचन से देखते हुए या अनदेखे मनोहर रूपवाले या बगैर रूपवाले, जवान या बुढ्ढे पुरुष की खीलती जवानीवाली या महा पराक्रमी हो

वैसे को हीन सत्त्ववाले या सत्पुरुष को या दूसरे किसी भी निन्दित अधम हीन जातिवाले पुरुष को काम के अभिप्राय से भय पानेवाली सिकुड़कर आमंत्रित करके बुलाती है ऐसे संख्याता भेदवाले रागयुक्त स्वर और कटाक्षवाली नजर से उस पुरुष को बुलाती है, उसका राग से निरीक्षण करती है ।

उस वक्त नारकी और तिर्यंच दोनों गति को उचित असंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी करोड़ लाख साल या कालचक्र प्रमाण की उत्कृष्ट-दशावाले पापकर्म उपार्जन करे यानि कर्म बाँधे, लेकिन कर्मबँध स्पृष्ट न करे । अब वो जिस वक्त पुरुष के शरीर के अवयव को छूने के लिए सन्मुख हो, लेकिन अभी स्पर्श नहीं किया उस वक्त कर्म की दशा बद्ध स्पृष्ट करे । लेकिन बद्ध स्पृष्ट निकाचित न करे ।

सूत्र – ३८८

हे गौतम ! अब ऐसे वक्त में जो पुरुष संयोग के आधीन होकर उस स्त्री का योग करे और स्त्री के आधीन होकर काम सेवन करे वो अधन्य है । संयोग करना या न करना पुरुष आधीन है । इसलिए जो उत्तम पुरुष संयोग को आधीन न हो वो धन्य है ।

सूत्र – ३८९

हे भगवंत ! किस कारण से ऐसा कहलाता है कि जो पुरुष उस स्त्री के साथ योग न करे वो धन्य और योग करे वो अधन्य ? हे गौतम ! बद्धस्पृष्ट-कर्म की अवस्था तक पहुँची हुई वो पापी स्त्री पुरुष का साथ प्राप्त हो तो वो कर्म निकाचितपन में बदले, यानि बद्धस्पृष्ट निकाचित कर्म से बेचारी उस तरह के अध्यवसाय पाकर उसकी आत्मा पृथ्वीकाय आदि एकेन्द्रिय स्थावरपन में अनन्तकाल तक परिभ्रमण करे लेकिन दो इन्द्रियपन न पाए । उस प्रकार महा मुश्किल से कईं क्लेश सहकर अनन्ता काल तक एकेन्द्रियपन की भवदशा भुगतकर एकेन्द्रियपन का कर्म खपाते हैं और कर्म करके दो-तीन और चार इन्द्रियपन क्लेश से भुगतकर पंचेन्द्रिय में मनुष्यत्व में शायद आ जाए तो भी बदनसीब स्त्रीरूप को प्राप्त करनेवाला होता है ।

नपुंसक रूप से उत्पन्न हो । और फिर तिर्यंचपन में बेशूमार वेदना भुगतना पड़ता । हंमेशा हाहाकार करनेवाले जहाँ कोई शरणभूत नहीं होता । सपने में भी सुख की छाँव जिस गति में देखने को नहीं मिलता । हंमेशा संताप भुगतते हुए और उद्वेग पानेवाले रिश्तेदार स्वजन बंधु आदि से रहित जन्मपर्यन्त कुत्सनीय, गर्हणीय, निन्दनीय, तिरस्करणीय ऐसे कर्म करके कईं लोगों की तारीफ करके सेंकड़ों मीठे वचन से बिनती करके उन लोगों के पराभव के वचन सूनकर मुश्किल से उदर पोषण करते करते चारों गति में भटकना पड़ता है ।

हे गौतम ! दूसरी बात यह समझो कि जिस पापी स्त्री ने बद्ध, स्पृष्ट और निकाचित कर्मदशा उपार्जन करके उस स्त्री की अभिलाषा करनेवाला पुरुष भी उतनी ही नहीं लेकिन उसके हालात से भी उत्कृष्ट या उत्कृष्टतम ऐसी अनन्त कर्मदशा उपार्जन करे और एसे बद्ध स्पृष्ट और निकाचित करे, इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि जो पुरुष उसका संग नहीं करता वो धन्य है और संग करता है वो अधन्य है ।

सूत्र – ३९०

हे भगवंत ! कितनी तरह के पुरुष हैं जिससे आप इस प्रकार कहते हो ? हे गौतम ! पुरुष छ तरह के बताए हैं वो इस प्रकार – १. अधमाधम, २. अधम, ३. विमध्यम, ४. उत्तम, ५. उत्तमोत्तम, ६. सर्वोत्तम ।

सूत्र – ३९१

उसमें जिसे सर्वोत्तम पुरुष कहा, वो जिस के पाँव अंग उत्तम रूप लावण्य युक्त हो, नवयौवन वय पाया हो, उत्तम रूप लावण्य कान्ति युक्त ऐसी स्त्री मजबूरी से भी अपनी गोद में सो साल तक बिठाकर कामचेष्टा करे तो भी वो पुरुष उस स्त्री की अभिलाषा न करे । और फिर जो उत्तमोत्तम पुरुष बताए वो खुद स्त्री की अभिलाषा न करे । लेकिन शायद अल्प मन से केवल एक समय की अभिलाषा करे लेकिन दूसरे ही पल मन को रोककर अपने आत्मा की निन्दा गर्हणा करे, लेकिन दूसरी बार उस जन्ममें स्त्री की मन से भी अभिलाषा न करे ।

सूत्र – ३९२

और फिर जो उत्तमोत्तम तरह के पुरुष हो वो अभिलाषा करनेवाली स्त्री को देखकर पलभर या मुहूर्त्त तक देखकर मन से उसकी अभिलाषा करे, लेकिन पहोर या अर्ध पहोर तक उस स्त्री के साथ अनुचित कर्मसेवन न करे।

सूत्र – ३९३

यदि वो पुरुष ब्रह्मचारी या अभिग्रह प्रत्याख्यान किया हो । या ब्रह्मचारी न हो या अभिग्रह प्रत्याख्यान किए न हो तो अपनी पत्नी के विषय में भजना-विकल्प समझने के कामभोग में तीव्र अभिलाषावाला न हो । हे गौतम ! इस पुरुष को कर्म का बंध हो लेकिन वो अनन्त संसार में घूमने के उचित कर्म न बाँधे ।

सूत्र – ३९४

और फिर जो विमध्यम तरह के पुरुष हो वो अपनी पत्नी के साथ इस प्रकार कर्म का सेवन करे लेकिन पराई स्त्री के साथ वैसे अनुचित कर्म का सेवन न करे । लेकिन पराई स्त्री के साथ ऐसा पुरुष यदि पीछे से उग्र ब्रह्मचारी न हो तो अध्यवसाय विशेष अनन्त संसारी बने या न बने । अनन्त संसारी कौन न बने ? तो कहते हैं कि उस तरह क भव्य आत्मा जीवादिक नौ तत्त्व को जाननेवाला हुआ हो । आगम आदि शास्त्र के मुताबिक उत्तम साधु भगवंत को धर्म में उपकार करनेवाला, आहारादिक का दान देनेवाला, दान, शील, तप और भावना समान चार तरह के धर्म का यथाशक्ति अनुष्ठान करता हो । किसी भी तरह चाहे कैसी भी मुसीबत में भी ग्रहण किए गए नियम और व्रत का भंग न करे तो शाता भुगतते हुए परम्परा में उत्तम मानवता या उत्तम देवपन और फिर सम्यक् त्व से प्रतिपतित हुए बिना निसर्ग सम्यक्त्व हो या–अभिगमिक सम्यक्त्व द्वारा उत्तरोत्तर अठ्ठारह हजार शीलांग धारण करनेवाला होकर आश्रवद्वार बन्ध करके कर्मरज और पापमल रहित होकर पापकर्म खपाकर सिद्धगति पाए ।

सूत्र – ३९५

जो अधम पुरुष हो वो अपनी या पराई स्त्री में आसक्त मनवाला हो । हरएक वक्त में क्रूर परिणाम जिसके चित्त में चलता हो आरम्भ और परिग्रहादिक के लिए तल्लीन मनवाला हो । और फिर जो अधमाधम पुरुष हो वो महापाप कर्म करनेवाले सर्व स्त्री की मन, वचन, काया से त्रिविध त्रिविध से प्रत्येक समय अभिलाषा करे । और अति क्रूर अध्यवसाय से परिणमित चित्तवाला आरम्भ परिग्रह में आसक्त होकर अपना आयुकाल गमन करता है । इस प्रकार अधम और अधमाधम दोनों का अनन्त संसारीपन समझो ।

सूत्र – ३९६

हे भगवंत ! जो अधम और अधमाधम पुरुष दोनों का एक समान अनन्त संसारी इस तरह बताया तो एक अधम और अधमाधम उसमें फर्क कौन-सा समझे ? हे गौतम ! जो अधम पुरुष अपनी या पराई स्त्री में आसक्त मनवाला क्रूर-परिणामवाले चित्तवाला आरम्भ परिग्रह में लीन होने के बावजूद भी दीक्षित साध्वी और शील संरक्षण करने की ईच्छावाली हो । पौषध, उपवास, व्रत, प्रत्याख्यान करने में उद्यमवाली दुःखी गृहस्थ स्त्रीओं के सहवास में आ गए हो वो अनुचित अतिचार की माँग करे, प्रेरणा करे, आमंत्रित करे, प्रार्थना करे तो भी कामवश होकर उसके साथ दुराचार का सेवन न करे ।

लेकिन जो अधमाधम पुरुष हो अपनी माँ-भगिनी आदि यावत् दीक्षित साध्वी के साथ भी शारीरिक अनुचित अनाचार सेवन करे । उस कारण से उसे महापाप करनेवाला अधमाधम पुरुष कहा । हे गौतम ! इन दोनों में इतना फर्क है ।और फिर जो अधम पुरुष हैं वो अनन्त काल से बोधि प्राप्त कर सकता है । लेकिन महापाप कर्म करनेवाला दीक्षित साध्वी के साथ भी कुकर्म करनेवाले अधमाधम पुरुष अनन्ती बार अनन्त संसार में घूमे तो भी बोधि पाने के लिए अधिकारी नहीं बन सकता । यह दुःसम भेद मानो ।

सूत्र – ३९७

इन छ पुरुष में सर्वोत्तम पुरुष उसे मानो कि जो छद्मस्थ वीतरागपन पाया हो जिसे उत्तमोत्तम पुरुष बताए हैं वो उन्हें जानना कि जो ऋद्धि रहित इत्यादि से लेकर उपशामक और क्षपक मुनिवर हो । और फिर उत्तम उन्हें मानो कि जो अप्रमत्त मुनिवर हो इस प्रकार इन पुरुष की निरुपणा करना ।

सूत्र – ३९८

और फिर जो मिथ्यादृष्टि होकर उग्र ब्रह्मचर्य धारण करनेवाला हो हिंसा-आरम्भ परिग्रह का त्याग करनेवाला वो मिथ्यादृष्टि ही है, सम्यक्दृष्टि नहीं । उनको जीवादिक नौ तत्त्व के सद्भाव का ज्ञान नहीं होता वो उत्तम चीज मोक्ष का अभिनन्दन या प्रशंसा नहीं करते, वो ब्रह्मचर्य हिंसा आदि पाप का परिहार करके उस धर्म के बदले में आगे के भव के लिए तप ब्रह्मचर्य के बदले में नियाणा करके देवांगना पाए उतने ब्रह्मचर्य से भ्रष्ट बने संसार के पौद्गलिक सुख पाने की ईच्छा से नियाणा करे ।

सूत्र – ३९९

विमध्यम पुरुष उसे कहते हैं कि जो उस तरह का अध्यवसाय अंगीकार करके श्रावक के व्रत अपनाए हो ।

सूत्र – ४००

और जो अधम और अधमाधम वो जिस तरह एकान्तमें स्त्रीयों के लिए कहा उस तरह कर्मस्थिति उपार्जन करे । केवल पुरुष के लिए इतना विशेष समझो कि पुरुष को स्त्री के राग उत्पन्न करवानेवाले स्तन-मुख ऊपर के हिस्से के अवयव योनि आदि अंग पर अधिकतर राग उत्पन्न होता है । इस प्रकार पुरुष के छ तरीके बताए ।

सूत्र – ४०१

हे गौतम ! कुछ स्त्री भव्य और दृढ़ सम्यक्त्ववाली होती है । उनकी उत्तमता सोचे तो सर्वोत्तम ऐसे पुरुष की कक्षा में आ सकते हैं । लेकिन सभी स्त्री वैसी नहीं होती ।

सूत्र – ४०२

हे गौतम ! उसी तरह जिस स्त्री को तीन काल पुरुष संयोग की प्राप्ति नहीं हुई । पुरुष संयोग संप्राप्ति स्वाधीन होने के बावजूद भी तेरहवे-चौदहवे, पंद्रहवे समय में भी पुरुष के साथ मिलाप न हुआ । यानि संभोग कार्य आचरण न किया । तो जिस तरह कईं काष्ठ लकड़े, ईंधण से भरे किसी गाँव, नगर या अरण्य में अग्नि फैल उठा और उस वक्त प्रचंड़ पवन फेंका गया तो अग्नि विशेष प्रदीप्त हुआ । जला-जलाकर लम्बे अरसे के बाद वो अग्नि अपने-आप बुझकर शान्त हो जाए । उस प्रकार हे गौतम ! स्त्री का कामाग्नि प्रदीप्त होकर वृद्धि पाते हैं । लेकिन चौथे वक्त शान्त हो उस मुताबिक इक्कीसवे, बाईसवे यावत् सत्ताईसवे समय में शान्त बने, जिस तरह दीए की शिखा अदृश्य दिखे लेकिन फिर तेल ड़ालने से अगर अपने आप अगर उस तरह के चूर्ण के योग से वापस प्रकट होकर चलायमान होकर जलने लगे । उसी तरह स्त्री भी पुरुष के दर्शन से या पुरुष के साथ बातचीत करने से उसके आकर्षण से, मद से, कंदर्प से उसके कामाग्नि से सतेज होती है । फिर से भी जागृत होती है ।

सूत्र – ४०३

हे गौतम ! ऐसे वक्त यदि वो स्त्री भय से, लज्जा से, कुल के कलंक के दोष से, धर्म की श्रद्धा से, काम का दर्द सह ले और असभ्य आचरण सेवन न करे वो स्त्री धन्य है । पुन्यवंती है, वंदनीय है । पूज्य है । दर्शनीय है, सर्व लक्षणवाली है, सर्व कल्याण साधनेवाली है । सर्वोत्तम मंगल की नीधि है । वो श्रुत देवता है, सरस्वती है । पवित्र देवी है; अच्युता देवी है, इन्द्राणी है, परमपवित्रा उत्तमा है । सिद्धि मुक्ति शाश्वत शिवगति नाम से संबोधन लायक है

सूत्र – ४०४

यदि वो स्त्री वेदना न सहे और अकार्याचरण करे तो वो स्त्री, अधन्या, अपुण्यवंती, अवंदनीय, अपूज्य, न देखने लायक, बिना लक्षण के तूटे हुए भाग्यवाली, सर्व अमंगल और अकल्याण के कारणवाली, शीलभ्रष्टा,

भ्रष्टाचारवाली, नफरतवाली, धृणा करनेलायक, पापी, पापी में भी महा पापीणी, अपवित्रा है । हे गौतम ! स्त्री होंशियारी से, भय से, कायरता से, लोलुपता से, उन्माद से, कंदर्प से, अभिमान से, पराधीनता से, बलात्कार से जान-बुझकर यह स्त्र संयम और शील में भ्रष्ट होती है । दूर रहे रास्ते के मार्ग में, गाँव में, नगर में, राजधानी में, वेश त्याग किए बिना स्त्री के साथ अनुचित आचरण करे, बार-बार पुरुष भुगतने की ईच्छा करे, पुरुष के साथ क्रीड़ा करे तो आगे कहने के मुताबिक वो पापीणी देखने लायक भी नहीं है ।

उसी प्रकार किसी साधु ऐसी स्त्री को देखे फिर उन्माद से, अभिमान से, कंदर्प से, पराधीनता से, स्वेच्छा से, जानबुझकर पाप का ड़र रखे बिना कोई आचार्य, सामान्य साधु, राजा से तारिफ पाए गए, वायु लब्धिवाले, तप लब्धिवाले, योग लब्धिवाले, विज्ञान लब्धिवाले, युग प्रधान, प्रवचन प्रभावक ऐसे मुनिवर भी यदि दूसरी स्त्री के साथ रमण क्रीड़ा करे, उसकी अभिलाषा करे,भुगतना चाहे या भुगते । बार-बार भुगते यावत् अति राग से न करने लायक आचार सेवन करे तो वो मुनि अति दुष्ट, तुच्छ, क्षुद्र लक्षणवाला, अधन्य, अवंदनीय, अदर्शनीय, अहितकारी, अप्रशस्त, अकल्याणकर, मंगल, निंदनीय, गर्हणीय, नफरत करनेलायक दुगंच्छनीय है । वो पापी है और पापी में भी महापापी है वो अति महापापी है, भ्रष्ट शीलवाला, चारित्र से अति भ्रष्ट होनेवाला महापाप कर्म करनेवाला है ।

इसलिए जब वो प्रायश्चित्त लेने के लिए तैयार हो तब वो उस मंद जाति के अश्व की तरह वज्रऋषभनाराच-संघयणवाले, उत्तम पराक्रमवाले, उत्तम सत्त्ववाले, उत्तम तत्त्व के जानकार, उत्तमवीर्य सामर्थ्यवाले, उत्तम संयोग वाले, उत्तम धर्म-श्रद्धावाले प्रायश्चित्त करते वक्त उत्तम तरह के समाधि मरण की दशा का अहसास करते हैं । हे गौतम ! इसलिए वैसे साधुओं की महानुभाव अठ्ठारह पाप स्थानक का परिहार करनेवाले नव ब्रह्मचर्य की गुप्ति का पालन करनेवाले ऐसे गुणयुक्त उन्हें शास्त्र में बताए हैं ।

सूत्र – ४०५

हे भगवंत ! क्या प्रायश्चित्त से शुद्धि होती है ? हे गौतम ! कुछ लोगों की शुद्धि होती है और कुछ लोगों की नहीं होती । हे भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते हो कि एक की होती है और एक की नहीं होती ? हे गौतम ! यदि कोई पुरुष माया, दंभ, छल, ठगाई के स्वभाववाले हो, वक्र आचारवाला हो, वह आत्मा शल्यवाले रहकर, प्रायश्चित्त का सेवन करते हैं । इसलिए उनके अंतःकरण विशुद्धि न होने से कलुषित आशयवाले होते हैं । इसलिए उनकी शुद्धि नहीं होती । कुछ आत्मा सरलतावाली होती है, जिससे जिस प्रकार दोष लगा हो उस प्रकार यथार्थ गुरु को निवेदन करते हैं । इसलिए वो निःशल्य, निःशंक, पूरी तरह साफ दिल से प्रकट आलोचना अंगीकार करके यथोक्त नजरिये से प्रायश्चित्त का सेवन करे । वो निर्मलता निष्कलुषता से विशुद्ध होते हैं इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि एक निःशल्य आशयवाला शुद्ध होता है और शल्यवाला शुद्ध नहीं हो सकता ।

सूत्र – ४०६-४०७

हे गौतम ! यह स्त्री, पुरुष के लिए सर्व पापकर्म की सर्व अधर्म की धनवृष्टि समान वसुधारा समान है । मोह और कर्मरज के कीचड़ की खान समान सद्गति के मार्ग की अर्गला-विघ्न करनेवाली, नरक में उतरने के लिए सीड़ी समान, बिना भूमि के विषवेलड़ी, अग्नि रहित उंबाडक-भोजन बिना विसूचिकांत बीमारी समान, नाम रहित व्याधि, चेतना बिना मूर्छा, उपसर्ग बिना मरकी, बेड़ी बिना कैद, रस्सी बिना फाँसी, कारण बिना मौत या अकस्मात मौत, बताई हुई सर्व उपमा स्त्री को लग सकती है । इस तरह के बदसूरत उपनामवाली स्त्री के साथ पुरुष को मन से भी उसके भोग की फिक्र न करना, ऐसा अध्यवसाय न करना, प्रार्थना, धारणा, विकल्प या संकल्प अभिलाषा स्मरण त्रिविध त्रिविध से न करना ।

हे गौतम ! जैसे कोई विद्या या मंत्र के अधिष्ठायक देव उसके साधक की बूरी दशा कर देते हैं उसी तरह स्त्री भी पुरुष की दुर्दशा करके कलंक उत्पन्न करनेवाली होती है । पाप की हत्या के संकल्प करनेवाले को जिस

तरह धर्म का स्पर्श नहीं होता वैसे उनका संकल्प करनेवाले को धर्म नहीं छूता । चारित्र में स्खलना हुई हो तो स्त्री के संकल्पवाले को आलोचना, निंदा, गर्हा प्रायश्चित्त करने का अध्यवसाय नहीं होता । आलोचना आदि न करने के कारण से अनन्तकाल तक दुःख समूहवाले संसार में घूमना पड़ता है । प्रायश्चित्त की विशुद्धि के होने के बावजूद भी फिर से उनके संसर्ग में आने से असंयम की प्रवृत्ति करनी पड़ती है । महापाप कर्म के ढ़ग समान साक्षात् हिंसा पिशाचिणी समान, समग्र तीन लोक से नफरत पाई हुई । परलोक के बड़े नुकसान को न देखनेवाले, घोर अंधकार पूर्ण नरकावास समान हंमेशा कईं दुःख के निधान समान । स्त्री के अंग उपांग मर्मस्थान या उसका रूप लावण्य, उसकी मीठी बोली या कामराग की वृद्धि करनेवाला उसके दर्शन का अध्यवसाय भी न करना ।

सूत्र – ४०८

हे गौतम ! यह स्त्री प्रलयकाल की रात की तरह जिस तरह हंमेशा अज्ञान अंधकार से लिपीत है । बीजली की तरह पलभर में दिखते ही नष्ट होने के स्नेह स्वभाववाली होती है । शरण में आनेवाले का घात करनेवाले लोगों की तरह तत्काल जन्म दिए बच्चे के जीव का ही भक्षण करनेवाले समान महापाप करनेवाली स्त्री होती है, सज्जक पवन के योग से घूंघवाते उछलते लवणसमुद्र के लहर समान कईं तरह के विकल्प-तरंग की श्रेणी की तरह जैसे एक स्थान में एक स्वामी के लिए स्थिर मन करके न रहनेवाली स्त्री होती है । स्वयंभूरमण समुद्र काफी गहरा होने से उसे अवगाहन करना अति कठिन होता है । वैसे स्त्री के दिल अति छल से भरे होते हैं । जिससे उसके दिल को पहचानना काफी मुश्किल है । स्त्री पवन समान चंचल स्वभाववाली होती है, अग्नि की तरह सबका भक्षण करनेवाली, वायु की तरह सबको छूनेवाली स्त्री होती है, चोर की तरह पराई चीज पाने की लालसावाली होती है । कुत्ते को रोटी का टुकड़ा दे उतने वक्त दोस्त बन जाए । उसकी तरह जब तक उसे अर्थ दो तब तक मैत्री रखनेवाली यानि सर्वस्व हड़प करनेवाली और फिर बैरिणी होती है । मत्स्य लहरों में इकट्ठे हो, किनारे पर अलग हो जाए, उसके पास हो तब तक स्नेह रखनेवाली, दूर जाने के बाद भूल जानेवाली होती है । इस तरह कईं लाख दोष से भरपूर ऐसे सर्व अंग और उपांगवाली बाह्य और अभ्यंतर महापाप करनेवाली अविनय समान । विष की वेलड़ी, अविनय के कारण से अनर्थ समूह के उत्पन्न करनेवाली स्त्री होती है ।

जिस स्त्री के शरीर से हंमेशा नीकलते बदबूवाले अशुचि सड़े हुए कुत्सनीय, निन्दनीय, नफरत के लायक सर्व अंग उपांगवाली और फिर परमार्थ से सोचा जाए तो उसके भीतर और बाहर के शरीर के अवयव से ज्ञात महासत्त्ववाली कामदेव से ऊंबनेवाले और वैराग्य पाकर आत्मा से ज्ञात, सर्वोत्तम और उत्तम पुरुष को और धर्माधर्म का रूप अच्छी तरह से समजे हो उनको वैसी स्त्री के लिए पलभर भी कैसे अभिलाषा हो ?

सूत्र – ४०९-४१०

जिसकी अभिलाषा पुरुष करता है, उस स्त्री की योनि में पुरुष के एक संयोग के समय नौ लाख पंचेन्द्रिय संमूर्च्छिम जीव नष्ट होते हैं । वो जीव अति सूक्ष्म स्वरूप होने से चर्मचक्षु से नहीं देख सकते । इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि स्त्री के साथ एक बार या बार बार बोलचाल न करना । और फिर उसके अंग या उपांग रागपूर्वक निरीक्षण न करना । यावत् ब्रह्मचारी पुरुष को मार्ग में स्त्री के साथ गमन नहीं करना ।

सूत्र – ४११

हे भगवंत ! स्त्री के साथ बातचीत न करना, अंगोपांग न देखना या मैथुन सेवन का त्याग करना ? हे गौतम! दोनों का त्याग करो । हे भगवंत ! क्या स्त्री का समागम करने समान मैथुन का त्याग करना या कईं तरह के सचित्त अचित्त चीज विषयक मैथुन का परिणाम मन, वचन, काया से त्रिविध से सर्वथा यावज्जीवन त्याग करे ? हे गौतम ! उसे सर्व तरीके से त्याग करो ।

सूत्र – ४१२

हे भगवंत ! जो कोई साधु-साध्वी मैथुन सेवन करे वो दूसरों के पास वन्दन करवाए क्या ?

हे गौतम ! यदि कोई साधु-साध्वी दीव्य, मानव या तिर्यंच संग से यावत् हस्तकर्म आदि सचित्त चीज विषयक दुष्ट अध्यवसाय कर के मन, वचन, काया से खुद मैथुन सेवे, दूसरों को प्रेरणा उपदेश देकर मैथुन सेवन करवाए, सेवन करनेवाले को अच्छा माने, कृत्रिम और स्वाभाविक उपकरण से उसी तरह त्रिविध-त्रिविध मैथुन का सेवन करे, करवाए या अनुमोदना करे वो साधु-साध्वी दुरन्त बूरे विपाकवाले पंत-असुंदर, अति बूरा, मुख भी जिसका देखनेलायक नहीं है, संसारमार्ग का सेवन करनेवाला, मोक्षमार्ग से दूर, महापाप कर्म करनेवाला वो वंदन करने लायक नहीं है । वंदन करवाने लायक नहीं है । वंदन करनेवालेको अच्छा मानने लायक नहीं है, त्रिविधे वंदन के उचित नहीं या जहाँ तक प्रायश्चित्त करके विशुद्धि न हो, तब तक दूसरे वंदन करते हो तो खुद वंदन न करना ।

हे भगवंत ! ऐसे लोगों को जो वंदन करे वो क्या पाए ? हे गौतम ! अठारह हजार शीलांग धारण करनेवाले महानुभाव तीर्थंकर भगवंत की महान् आशातना करनेवाला होता है । और आशातना के परिणाम को आश्रित करके यावत् अनन्त संसारीपन पाता है ।

सूत्र – ४१३-४१५

हे गौतम ! ऐसे कुछ जीव होते हैं कि जो स्त्री का त्याग अच्छी तरह से कर सकते हैं । मैथुन को भी छोड़ देते हैं । फिर भी वो परिग्रह की ममता छोड़ नहीं सकते । सचित्त, अचित्त या उभययुक्त बहुत या थोड़ा जितने प्रमाण में उसकी ममता रखते हैं, भोगवटा करते हैं, उतने प्रमाण में वो संगवाला कहलाता है । संगवाला प्राणी ज्ञान आदि तीन की साधना नहीं कर सकता, इसलिए परिग्रह का त्याग करो ।

सूत्र – ४१६

हे गौतम ! ऐसे जीव भी होते हैं कि जो परिग्रह का त्याग करते हैं, लेकिन आरम्भ का नहीं करते, वो भी उसी तरह भव परम्परा पानेवाले कहलाते हैं ।

सूत्र – ४१७

हे गौतम ! आरम्भ करने के लिए तैयार हुआ और एकेन्द्रिय एवं विकलेन्द्रिय जीव के संघट्टन आदि कर्म करे तो हे गौतम ! वो जिस तरह का पापकर्म बाँधे उसे तू समझ ।

सूत्र – ४१८-४२०

किसी बेइन्द्रिय जीव को बलात्कार से उसी अनिच्छा से एक वक्त के लिए हाथ से पाँव से दूसरे किसी सली आदि उपकरण से अगाढ़ संघट्ट करे । संघट्टा करवाए, ऐसा करनेवाले को अच्छा माने । हे गौतम ! यहाँ इस प्रकार बाँधा हुआ कर्म जब वो जीव के उदय में आता है, तब उसके विपाक बड़े क्लेश से छ महिने तक भुगतना पड़ता है। वो ही कर्म गाढ़पन से संघट्ट करने से बारह साल तक भुगतना पड़ता है । अगाढ़ परिताप करे तो एक हजार साल तक और गाढ़ परिताप करे तो दश हजार साल तक, अगाढ़ कीलामणा करे तो एक लाख साल, गाढ़ कीलामणा करे तो दश लाख साल तक उसके परिणाम-विपाक जीव को भुगतने पड़ते हैं । मरण पाए तो एक करोड़ साल तक उस कर्म की वेदना भुगतनी पड़े । उसी तरह तीन, चार, पाँच इन्द्रियवाले जीव के लिए भी समझो हे गौतम ! सूक्ष्म पृथ्वीकाय के एक जीव की जिसमें विराधना होती है उसे सर्व केवली अल्पारंभ कहते हैं । हे गौतम ! जिसमें सूक्ष्म पृथ्वीकाय को विनाश होता है, उसे सर्व केवली महारंभ कहते हैं ।

सूत्र – ४२१

हे गौतम ! उस तरह उत्कट कर्म अनन्त प्रमाण में इकट्ठे होते हैं । जो आरम्भ में प्रवर्तते हैं वो आत्मा उस कर्म से बँधता है ।

सूत्र – ४२२-४२३

आरम्भ करनेवाला बद्ध, स्पृष्ट और निकाचित अवस्थावाले कर्म बाँधते हैं इसलिए आरम्भ का त्याग करना चाहिए । पृथ्वीकाय आदि जीव का सर्व भाव से सर्व तरह से अंत लानेवाले आरम्भ का जिसने त्याग किया हो वो

सत्वरे जन्म-मरण, जरा सर्व तरह के दारिद्र्य और दुःख से मुक्त होते हैं ।

सूत्र – ४२४-४२६

हे गौतम ! जगत में ऐसे भी जीव हैं कि जो यह जानने के बाद भी एकान्त सुखशीलपन के कारण से सम्यग् मार्ग की आराधना में प्रवृत्त नहीं हो सकते । किसी जीव सम्यग् मार्ग में जुड़कर घोर और वीर संयम तप का सेवन करे लेकिन उसके साथ यह जो पाँच बातें कही जाएगी उसका त्याग न करे तो उसके सेवन किए गए संयम तप सर्व निरर्थक हैं । १. कुशील, २. ओसन्न-शिथिलपन ऐसा कठिन संयम जीवन ? ऐसा बोल उठे । ३. यथाच्छंद-स्वच्छंद, ४. सबल-दूषित चारित्रवाले, ५. पासत्थो । इन पाँच को दृष्टि से भी न देखें ।

सूत्र – ४२७

सर्वज्ञ भगवंत ने उपदेश दीया हुआ मार्ग सर्व दुःख को नष्ट करनेवाला है । और शाता गौरव में फँसा हुआ, शिथिल आचार सेवन करनेवाला, भगवंत ने बताए मोक्षमार्ग को छोड़नेवाला होता है ।

सूत्र – ४२८

सर्वज्ञ भगवंत ने बताए एक पद या एक शब्द को भी जो न माने, रुचि न करे और विपरीत प्ररूपणा करे उसे जरुर मिथ्यादृष्टि समझो ।

सूत्र – ४२९

इस प्रकार जानकर उस पाँच का संसर्ग दर्शन, बातचीत करना, पहचान, सहवास आदि सर्व बात हित के-कल्याण के अर्थी सर्व उपाय से वर्जन करना ।

सूत्र – ४३०

हे भगवंत ! शील भ्रष्ट का दर्शन करने का आप निषेध करते हो और फिर प्रायश्चित्त तो उसे देते हो । यह दोनों बात किस तरह संगत हो सके ?

सूत्र – ४३१

हे गौतम ! शीलभ्रष्ट आत्मा को संसार सागर पार करना काफी मुश्किल है । इसलिए यकीनन वैसे आत्मा की अनुकंपा करके उसे प्रायश्चित्त दिया जाता है ।

सूत्र – ४३२

हे भगवंत ! क्या प्रायश्चित्त करने से नरक का बँधा हुआ आयु छेदन हो जाए ? हे गौतम ! प्रायश्चित्त करके भी कईं आत्माए दुर्गति में गई है ।

सूत्र – ४३३-४३४

हे गौतम ! जिन्होंने अनन्त संसार उपार्जन किया है ऐसे आत्मा यकीनन प्रायश्चित्त से उसे नष्ट करते हैं, तो फिर वो नरक की आयु क्यों न तोडे ? इस भुवन में प्रायश्चित्त से छ भी असाध्य नहीं है । एक बोधिलाभ सिवा जीव को प्रायश्चित्त से कुछ भी असाध्य नहीं है । एक बार पाया हुआ बोधिलाभ हार जाए तो फिर से मिलना मुश्किल है

सूत्र – ४३५-४३६

अप्काय परिभोग, अग्निकाय आरम्भ और मैथुन सेवन अबोधि लाभ-कर्म बँधानेवाले हैं, इसलिए उसका वर्जन करना । अबोधि बँधानेवाले मैथुन, अप्काय, अग्निकाय का परिभाग संयत आत्माए प्रयत्नपूर्वक त्याग करे ।

सूत्र – ४३७

हे भगवंत ! उपर बताए हुए कार्य से अबोधि लाभ हो तो वो गृहस्थ हंमेशा वैसे कार्य में प्रवृत्त होते हैं । उन्हें शिक्षाव्रत, गुणव्रत और अणुव्रत धारण करना निष्फल माना जाए क्या ?

सूत्र – ४३८-४४३

हे गौतम ! मोक्ष मार्ग दो तरह का बताया है । एक उत्तम श्रमण का और दूसरा उत्तम श्रावक का । प्रथम महाव्रतधारी का और दूसरा अणुव्रतधारी का । साधुओं ने त्रिविध त्रिविध से सर्व पाप व्यापार का जीवन पर्यन्त त्याग किया है । मोक्ष के साधनभूत घोर महाव्रत का श्रमण ने स्वीकार किया है । गृहस्थ ने परिमित काल के लिए द्विविध, एकविध या त्रिविध स्थूलपन से सावद्य का त्याग किया है, यानि श्रावक देश से व्रत अंगीकार करते हैं । जब कि साधुओंने त्रिविध त्रिविध से मूर्च्छा, ईच्छा, आरम्भ, परिग्रह का त्याग किया है । पाप वोसिराकर जिनेश्वर के लिंग-चिन्ह या वेश धारण किया है । जब गृहस्थ ईच्छा आरम्भ परिग्रह के त्याग किए बिना अपनी स्त्री में आसक्त रहकर जिनेश्वर के वेश को धारण किए बिना श्रमण की सेवा करते हैं, इसलिए हे गौतम ! एक देश से गृहस्थ पाप त्याग व्रत का पालन करते हैं, इसलिए उसके मार्ग की गृहस्थ को आशातना नहीं होती ।

सूत्र – ४४४-४४५

जिन्होंने सर्व पाप का प्रत्याख्यान किया है । पंच महाव्रत धारण किया है, प्रभु के वेश को स्वीकार किया है। वो यदि मैथुन अप्काय अग्निकाय सेवन का त्याग न करे तो उनको बड़ी आशातना बताई है । उसी कारण से जिनेश्वर इन तीन में बड़ी आशातना कहते हैं । इसलिए उन तीन का मन से भी सेवन के लिए अभिलाषा मत करो ।

सूत्र – ४४६-४४७

हे गौतम ! काफी दृढ़ सोचकर यह कहा है कि यति अबोधिलाभ का कर्म बाँधे और गृहस्थ अबोधिलाभ न बाँधे । और फिर संयत मुनि इन तीन आशय से अबोधिलाभ कर्म बाँधते हैं । १. आज्ञा का उल्लंघन, २. व्रत का भंग और ३. उन्मार्ग प्रवर्तन ।

सूत्र – ४४८

मैथुन, अप्काय और तेऊकाय इन तीन के सेवन से अबोधिक लाभ होता है । इसलिए मुनि को कोशीश करके सर्वथा इन तीनों का त्याग करना चाहिए ।

सूत्र – ४४९

जो आत्मा प्रायश्चित्त का सेवन करे और मन में संक्लेश रखे और फिर जो कहा हो उसके अनुसार न करे, तो वो नरक में जाए ।

सूत्र – ४५०

हे गौतम ! जो मंद श्रद्धावाला हो, वो प्रायश्चित्त न करे, या करे तो भी क्लिष्ट मनवाला होकर करता है । तो उनकी अनुकंपा करना विरुद्ध न माना जाए ?

सूत्र – ४५१-४५२

हे गौतम! राजादि जब संग्राममें युद्ध करते हैं, तब उसमें कुछ सैनिक घायल होते हैं, तीर शरीर में जाता है तब तीर बाहर नीकालने से या शल्य उद्धार करने से उसे दुःख होता है । लेकिन शल्य उद्धार करने की अनुकंपा में विरोध नहीं माना जाता । शल्य उद्धार करनेवाला अनुकंपा रहित नहीं माना जाता, वैसे संसार समान संग्राम में अंगोपांग के भीतर या बाहर के शल्य-भाव शल्य रहे हो उसका उद्धार करनेमें अनुपम अनुकंपा भगवंत ने बताई है।

सूत्र – ४५३-४५५

हे भगवंत ! जब तक शरीर में शल्य हो तब तक जीव दुःख का अहसास करते हैं, जब शल्य नीकाल देते हैं तब सुखी होते हैं । उसी प्रकार तीर्थंकर, सिद्धभगवंत, साधु और धर्म को धोखा देकर जो कुछ भी अकार्य आचरण किया हो उस का प्रायश्चित्त कर सुखी होता है । भावशल्य दूर होने से सुखी हो, वैसे आत्मा के लिए प्रायश्चित्त करने से कौन-सा गुण होगा ? बेचारे दीन पुरुष के पास दुष्कर और दुःख में आचरण किया जाए वैसे

प्रायश्चित्त क्यों दे ?

सूत्र – ४५६-४५७

हे गौतम ! शरीर में से शल्य बाहर नीकाला लेकिन झख्म भरने के लिए जब तक मल्हम लगाया न जाए, पट्टी न बाँधी जाए तब तक वो झख्म नहीं भरता । वैसे भावशल्य का उद्धार करने के बाद यह प्रायश्चित्त मल्हम पट्टी और पट्टी बाँधने समान समझो । दुःख से करके रूझ लाई जाए वैसे पाप रूप झख्म की जल्द रूझ लाने के लिए प्रायश्चित्त अमोघ उपाय है ।

सूत्र – ४५८-४६०

हे भगवंत ! सर्वज्ञ ने बताए प्रायश्चित्त थोड़े से भी आचरण में, सूनने में या जानने में क्या सर्व पाप की शुद्धि होती है ? हे गौतम ! गर्मी के दिनों में अति प्यास लगी हो, पास ही में अति स्वादिष्ट शीतल जल हो, लेकिन जब तक उसका पान न किया जाए तब तक तृषा की शान्ति नहीं होती उसी तरह प्रायश्चित्त जानकर जब तक निष्कपट भाव से सेवन न किया जाए तब तक उस पाप की वृद्धि होती है लेकिन कम नहीं होता ।

सूत्र – ४६१

हे भगवंत ! क्या प्रमाद से पाप की वृद्धि होती है ? क्या किसी वक्त आत्मा सावध हो जाए और पाप करने से रुक जाए तो वो पाप उतना ही रहे या वृद्धि होते रूक न जाए ?

सूत्र – ४६२

हे गौतम ! जैसे प्रमाद से साँप का डंख लगा हो लेकिन जरुरतवाले को पीछे से विष की वृद्धि हो वैसे पाप की भी वृद्धि होती है ।

सूत्र – ४६३-४६५

हे भगवंत ! जो परमार्थ को जाननेवाले होते हैं, तमाम प्रायश्चित्त का ज्ञाता हो उन्हें भी क्या अपने अकार्य जिस मुताबिक हुए हो उस मुताबिक कहना पड़े ? हे गौतम ! जो मानव तंत्र मंत्र से करोड़ को शल्य बिना और डंख रहित करके मूर्च्छित को खड़ा कर देते हैं, ऐसा जाननेवाले भी डंखवाले हुए हो, निश्चेष्ट बने हो, युद्ध में बरछी के घा से घायल हुए हो उन्हें दूसरे शल्य रहित मूर्च्छा रहित बनाते हैं । उसी तरह शील से उज्ज्वल साधु भी निपुण होने के बावजूद भी यथार्थ तरह से दूसरे साधु से अपना पाप प्रकाशित करे । जिस तरह अपना शिष्य अपने पास पाप प्रकट करे तब वो विशुद्ध होते हैं । वैसे खुद को शुद्ध होने के लिए दूसरों के पास अपनी आलोचना प्रायश्चित्त विधिवत करना चाहिए ।

अध्ययन-२-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

सूत्र - ४६६

यह ''महानिसीह'' सूत्र के दोनों अध्ययन की विधिवत् सर्व श्रमण (श्रमणी) को वाचना देनी यानि पढ़ाना

अध्ययन-३-कुशील-लक्षण

सूत्र - ४६७

यह तीसरा अध्ययन चारों को (साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका को) सूना शके उस प्रकार का है । क्योंकि अति बड़े और अति श्रेष्ठ आज्ञा से श्रद्धा करने के लायक सूत्र और अर्थ हैं । उसे यथार्थ विधि से उचित शिष्य को देना चाहिए ।

सूत्र – ४६८-४६९

जो कोई इसे प्रकटपन से प्ररूपे, अच्छी तरह से बिना योग करनेवाले को दे, अब्रह्मचारी से पढ़ाए, उद्देशादिक विधि रहित को पढ़ाए वो उन्माद, पागलपन पाए या लम्बे अरसे की बीमारी-आतंक के दुःख भुगते, संयम से भ्रष्ट हो, मरण के वक्त आराधना नहीं पाते ।

सूत्र – ४७०-४७३

यहाँ प्रथम अध्ययन में पूर्व विधि बताई है । दूसरे अध्ययन में इस तरह का विधि कहना और बाकी के अध्ययन की अविधि समझना, दूसरे अध्ययन में पाँच आयंबिल उसमें नौ उद्देशा होते हैं । तीसरे में आठ आयंबिल और सात उद्देशो, जिस प्रकार तीसरे में कहा उस प्रकार चौथे अध्ययन में भी समझना, पाँचवे अध्ययन में छ आयंबिल, छठ्ठे में दो, सातवे में तीन, आठवे में दश आयंबिल ऐसे लगातार आयंबिल तप संलग्न आऊत्तवायणा सहित आहार पानी ग्रहण करके यह महानिशीथ नाम के श्रेष्ठ श्रुतस्कंध को वहन धारण करना चाहिए ।

सूत्र - ४७४

गम्भीरतावाले महा बुद्धिशाली तप के गुण युक्त अच्छी तरह से परीक्षा में उत्तीर्ण हुए हों, काल ग्रहण विधि की हो उन्हें वाचनाचार्य के पास वाचना ग्रहण करनी चाहिए ।

सूत्र – ४७५-४७६

हंमेशा क्षेत्र की शुद्धि सावधानी से जब करे तब यह पढ़ाना । वरना किसी क्षेत्र देवता से हैरान हो । अंग और उपांग आदि सूत्र का यह सारभूत श्रेष्ठ तत्त्व है । महानिधि से अविधि से ग्रहण करने में जिस तरह धोखा खाती है वैसे इस श्रुतस्कंध से अविधि से ग्रहण करने में ठगाने का अवसर उत्पन्न होता है ।

सूत्र – ४७७-४७८

या तो श्रेयकारी-कल्याणकारी कार्य कईं विघ्नवाले होते हैं । श्रेय में भी श्रेय हो तो यह श्रुतस्कंध है, इसलिए उसे निर्विघ्न ग्रहण करना चाहिए । जो धन्य है, पुण्यवंत है वो ही इसे पढ़ सकते हैं ।

सूत्र – ४७९

हे भगवंत ! उस कुशील आदि के लक्षण किस तरह के होते हैं ? कि जो अच्छी तरह जानकर उस का सर्वथा त्याग कर सके ?

सूत्र – ४८०-४८१

हे गौतम ! आम तोर पर उनके लक्षण इस प्रकार समझना और समझकर उसका सर्वथा संसर्ग त्याग करना, कुशील दो सौ प्रकार के जानना, ओसन्न दो तरह के बताए हैं । ज्ञान आदि के पासत्था, बाईश तरह से और सबल चारित्रवाले तीन तरह के हैं । हे गौतम ! उसमें जो दो सौ प्रकार के कुशील हैं वो तुम्हें पहले कहता हूँ कि जिसके संसर्ग से मुनि पलभर में भ्रष्ट होता है ।

सूत्र – ४८२-४८४

उसमें संक्षेप से कुशील दो तरह का है । १. परम्परा कुशील, २. अपरम्परा कुशील । उसमें जो परम्परा कुशील है वो दो तरह का है । १. सात-आठ गुरु परम्परा कुशील और २. एक, दो, तीन गुरु परम्परा कुशील । और

फिर जो अपरम्परा कुशील है वो दो तरीके का है । आगम से गुरु परम्परा से क्रम या परिपाटी में जो कोई कुशील थे वो ही कुशील माने जाते हैं ।

सूत्र – ४८५-४८६

नोआगम से कुशील कईं तरह के हैं वो इस प्रकार – ज्ञान कुशील, दर्शन कुशील, चारित्र कुशील, तप कुशील, वीर्याचार में कुशील । उसमें जो ज्ञान कुशील है वो तीन प्रकार के हैं । प्रशस्ता प्रशस्त ज्ञान कुशील, अप्रशस्त ज्ञान कुशील और सुप्रशस्त ज्ञान कुशील ।

सूत्र - ४८७

उसमें जो प्रशस्ता प्रशस्त ज्ञान कुशील है उसे दो तरह के जानो । आगम से और नोआगम से । उसमें आगम से विभंग ज्ञानी के प्ररूपेल प्रशस्ता प्रशस्त चीज समूहवाले अध्ययन पढ़ाना वह अध्ययन कुशील, नोआगम से कईं तरह के प्रशस्ता-प्रशस्त परपाखंड़ के शास्त्र के अर्थ समूह को पढ़ना, पढ़ाना, वाचना, अनुप्रेक्षा करने समान कुशील ।

सूत्र - ४८८

उसमें जो अप्रशस्त ज्ञान कुशील है वो २९ प्रकार के हैं । वो इस तरह –

१. सावद्यवाद विषयक मंत्र, तंत्र का प्रयोग करने समान कुशील ।

२. विद्या-मंत्र-तंत्र पढ़ाना-पढ़ना यानि वस्तुविद्या कुशील ।

३. ग्रह-नक्षत्र चार ज्योतिष शास्त्र देखना, कहना, पढ़ाना समान लक्षण कुशील ।

४. निमित्त कहना । शरीर के लक्षण देखकर कहना, उसके शास्त्र पढ़ाना समान लक्षण कुशील ।

५. शकुन शास्त्र लक्षण शास्त्र कहना, पढ़ाना समान लक्षण कुशील ।

६. हस्ति शिक्षा बतानेवाले शास्त्र पढ़ना पढ़ाना समान लक्षण कुशील ।

७. धनुर्वेद की शिक्षा लेना उसके शास्त्र पढ़ाना समान लक्षण कुशील ।

८. गंधर्ववेद का प्रयोग शीखलाना यानि रूप कुशील ।

९. पुरुष-स्त्री के लक्षण कहनेवाले शास्त्र पढ़ानेवाले रूप कुशील ।

१०. कामशास्त्र के प्रयोग कहनेवाले, पढ़ानेवाले रूप कुशील ।

११. कौतुक इन्द्रजाल के शस्त्र का प्रयोग करनेवाले पढ़ानेवाले कुशील ।

१२. लेखनकला, चित्रकला शीखलानेवाले रूप कुशील ।

१३. लेपकर्म विद्या पढ़ानेवाले रूप कुशील ।

१४. वमन विरेचन के प्रयोग करना, करवाना, शीखलाना, कईं तरह की वेलड़ी उसकी जड़ नीकालने के लिए कहना, प्रेरणा देना, वनस्पति-वेल तोड़ना, कटवाने के समान कईं दोषवाली वैदक विद्या के शस्त्र अनुसार प्रयोग करना, वो विद्या पढ़ना, पढ़ाना यानि रूप कुशील ।

१५. उस प्रकार अंजन प्रयोग । १६. योगचूर्ण । १७. सुवर्ण धातुवाद । १८. राजदंड़नीति । १९. शास्त्र अस्त्र अग्नि बीजली पर्वत । २०. स्फटिक रत्न । २१. रत्न की कसौटी । २२. रस वेध विषयक शास्त्र । २३. अमात्य शिक्षा । २४. गुप्त तंत्र-मंत्र । २५. काल देशसंधि करवाना ।

२६. लड़ाई करवाने का उपदेश । २७. शस्त्र । २८. मार्ग । २९. जहाज व्यवहार । आदि यह निरुपण करनेवाले शास्त्र का अर्थ कथन करना करवाना यानि अप्रशस्त ज्ञान कुशील । इस प्रकार पाप-श्रुत की वाचना, विचारणा, परावर्तन, उसकी खोज, संशोधन, उसका श्रवण करना अप्रशस्त ज्ञान कुशील कहलाता है ।

सूत्र - ४८९

उसमें जो सुप्रशस्त ज्ञानकुशील है वो भी दो तरह के जान लेने आगम से और नोआगम से । उसमें आगम

से सुप्रशस्त ज्ञान ऐसे पाँच तरह के ज्ञान की या सुप्रशस्त ज्ञान धारण करनेवालों की आशातना करनेवाला यानि सुप्रशस्त ज्ञान कुशील ।

सूत्र - ४९०

नोआगम से सुप्रशस्त ज्ञान कुशील आठ तरह के – अकाल सुप्रशस्त ज्ञान पढ़े, पढ़ाए, अविनय से सुप्रशस्त ज्ञान ग्रहण करे, करवाए, अबहुमान से सुप्रशस्त ज्ञान पठन करे, उपधान किए बिना सुप्रशस्त ज्ञान पढ़ना, पढ़ाना, जिसके पास सुप्रशस्त सूत्र अर्थ पढ़े हो उसे छिपाए, वो स्वर-व्यंजन रहित, कम अक्षर, ज्यादा अक्षरवाले सूत्र पढ़ना, पढ़ाना, सूत्र, अर्थ विपरीतपन से पढ़ना, पढ़ाना । संदेहवाले सूत्रादिक पढ़ना-पढ़ाना ।

सूत्र - ४९१

यह आठ तरह के पद को जो किसी उपधान वहन किए बिना सुप्रशस्त ज्ञान पढ़े या पढ़ाए, पढ़नेवाले या पढ़ानेवालेको अच्छे मानकर अनुमोदना करे वो महापाप कर्म सुप्रशस्त ज्ञान की महा आशातना करनेवाला होता है

सूत्र - ४९२

हे भगवंत ! यदि ऐसा है तो क्या पंच मंगल के उपधान करने चाहिए ? हे गौतम ! प्रथम ज्ञान और उसके बाद दया यानि संयम यानि ज्ञान से चारित्र-दया पालन होता है । दया से सर्व जगत के सारे जीव-प्राणी-भूत-सत्त्व को अपनी तरह देखनेवाला होता है । जगत के सर्व जीव, प्राणी, भूत सत्त्व को अपनी तरह सुख-दुःख होता है, ऐसा देखनेवाला होने से वो दूसरे जीव के संघट्ट करने के लिए परिताप या कीलामणा-उपद्रव आदि दुःख उत्पन्न करना, भयभीत करना, त्रास देना इत्यादिक से दूर रहता है । ऐसा करने से कर्म का आश्रव नहीं होता । कर्म का आश्रव बन्द होने से कर्म आने के कारण समान आश्रव द्वार बन्द होते हैं । आश्रव के द्वार बन्द होने से इन्द्रिय का दमन और आत्मा में उपशम होता है ।

इसलिए शत्रु और मित्र के प्रति समान भाव सहितपन होता है । शत्रु मित्र के प्रति समान भाव सहितपन से रागद्वेष रहितपन उससे क्षमा, नम्रता, सरलता, निर्लोभता होने से कषाय रहितपन प्राप्त होता है । कषाय रहितपन होने से सम्यक्त्व उत्पन्न होता है । सम्यक्त्व होने से जीवादिक चीज का ज्ञान होता है । वो होने से सर्व ममता-रहितपन होता है । सभी चीजों में ममता न रहने से अज्ञान मोह और मिथ्यात्व का क्षय होता है । यानि विवेक आता है। विवेक होने से हेय और उपादेय चीज की यथार्थ सोच और एकान्त मोक्ष पाने के लिए दृढ़ निश्चय होता है

इससे अहित का परित्याग और हित का आचरण हो वैसे कार्य में अति उद्यम करनेवाला बने । उसके बाद उत्तरोत्तर परमार्थ स्वरूप पवित्र उत्तम क्षमा आदि दश तरह के, अहिंसा लक्षणवाले धर्म का अनुष्ठान करने और करवाने में एकाग्र और आसक्त चित्रवाला होता है । उसके बाद यानि कि क्षमा आदि दश तरह के और अहिंसा लक्षण युक्त धर्म का अनुष्ठान का सेवन करना और करवाना उसमें एकाग्रता और आसक्त चित्तवाले आत्मा को सर्वोत्तम क्षमा, सर्वोत्तम मृदुता, सर्वोत्तम सरलता, सर्वोत्तम बाह्य धन, सुवर्ण आदि परिग्रह और काम क्रोधादिक अभ्यंतर परिग्रह स्वरूप सर्व संग का परित्याग होता है । और सर्वोत्तम बाह्य अभ्यन्तर ऐसे बारह तरह के अति घोर वीर उग्र कष्टवाले तप और चरण के अनुष्ठान में आत्मरमणता और परमानन्द प्रकट होता है ।

आगे सर्वोत्तम सत्तरह प्रकार के समग्र संयम अनुष्ठान परिपालन करने के लिए बद्धलक्षपन प्राप्त होता है । सर्वोत्तम सत्य भाषा बोलना, छ काय जीव का हीत, अपना बल, वीर्य, पुरुषार्थ, पराक्रम छिपाए बिना मोक्ष मार्ग की साधना करने में कटिबद्ध हुए सर्वोत्तम स्वाध्याय ध्यान समान जल द्वारा पापकर्म समान मल के लेप को प्रक्षाल करनेवाला – धोनेवाला होता है । और फिर सर्वोत्तम अकिंचनता, सर्वोत्तम परमपवित्रता सहित, सर्व भावयुक्त सुविशुद्ध सर्व दोष रहित, नव गुप्ति सहित, १८ परिहार स्थानक से विरमित यानि १८ तरह के अब्रह्म का त्याग करनेवाला होता है ।

उसके बाद यह सर्वोत्तम क्षमा, नम्रता, सरलता, निर्लोभता, तप, संयम, सत्य, शोच, आकिंचन्य, अतिदुर्धर,

ब्रह्मवत् धारण करना इत्यादिक शुभ अनुष्ठान से सर्व समारम्भ का त्याग करनेवाला होता है । फिर पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति रूप स्थावर जीव दो, तीन, चार, पाँच इन्द्रियवाले जीव का और अजीव काय का सरंभ, समारम्भ, आरम्भ को मन, वचन, काया के त्रिक से त्रिविध त्रिविध से श्रोत्रादि इन्द्रिय के विषय के संवरपूर्वक आहारादि चार संज्ञा का त्याग करके पाप को वोसिराता है ।

फिर निर्मल अठ्ठारह हजार शीलांग धारण करनेवाला होने से अस्खलित, अखंड़ित, अमलिन, अविराधित, सुन्दर, उग्र, उग्रतर, विचित्र, आश्चर्य उत्पन्न करनेवाला अभिग्रह का निर्वाह करनेवाला होता है । फिर देवता, मनुष्य, तिर्यंच के किए हुए घोर परिषह उपसर्ग को समता रखकर सहनेवाले होते हैं । उसके बाद अहोरात्र आदि प्रतिमा के लिए महा कोशीश करनेवाला होता है । फिर शरीर की-टापटीप रहित ममतारहित होता है । शरीर निष्प्रतिक्रमण-वाला होने से शुक्ल ध्यान में अड़ोलपन पाता है ।

फिर अनादि भव परम्परा से इकट्ठे किए समग्र आठ तरह के कर्म राशि का क्षय करनेवाला होता है । चार गति रूप भव के कैदखाने में से बाहर नीकलकर सर्व दुःख से विमुक्त होकर मोक्ष में गमन करनेवाला होता है । मोक्ष के भीतर सदा के लिए जन्म, बुढ़ापा, मरण, अनिष्ट का मिलन, इष्ट का वियोग, संताप, उद्वेग, अपयश, झूठा आरोप लगाना, बड़ी व्याधि की वेदना, रोग, शोक, दारिद्र, दुःख, भय, वैमनस्य आदि दुःख नहीं होते, फिर वहाँ एकान्तिक आत्यन्तिक निरुपद्रवतावाला, मिला हुआ वापस न चला जाए ऐसा, अक्षय, ध्रुव, शाश्वत हंमेशा रहनेवाला सर्वोत्तम सुख मोक्ष में होता है ।

यह सर्व सुख का मूल कारण ज्ञान है । ज्ञान से ही यह प्रवृत्ति शुरु होती है इसलिए हे गौतम ! एकान्तिक आत्यन्तिक, परम शाश्वत, ध्रुव, निरन्तर, सर्वोत्तम सुख की ईच्छा वाले को सबसे पहले आदर सहित सामायिक सूत्र से लेकर लोकबिन्दुसार तक बारह अंग स्वरूप श्रुतज्ञान कालग्रहण विधि सहित आयंबिल आदि तप और शास्त्र में बताई विधिवाले उपधान वहन करने पूर्वक, हिंसादिक पाँच को त्रिविध त्रिविध से त्याग करके उसके पाप का प्रतिक्रमण करके सूत्र के स्वर, व्यंजन, मात्रा, बिन्दु पद, अक्षर, कम ज्यादा न बोल सके वैसे पदच्छेद दोष, गाथाबद्ध, क्रमसर, पूर्वानुपूर्वी, आनुपूर्वी, अनानुपूर्वी सहित सुविशुद्ध गुरु के मुख से विधिवत् विनय सहित ग्रहण किया हो ऐसा ज्ञान एकांते सुंदर समझना ।

हे गौतम ! आदि और बिना अन्त के किनारा रहित अति विशाल ऐसे स्वयंभूरमण समुद्र की तरह जिसमें दुःख से करके अवगाहन कर सकते हैं । समग्र सुख की परम कारण समान ही तो वो श्रुतज्ञान है । ऐसे ज्ञान सागर को पार करने के लिए इष्ट देवता को नमस्कार करना चाहिए । इष्ट देवता को नमस्कार किए बिना कोई उसको पार नहीं कर सकते इसलिए हे गौतम ! यदि कोई इष्ट देव हो तो नवकार । यानि कि पंचमंगल ही है । उसके अलावा दूसरे किसी इष्टदेव मंगल समान नहीं है । इसलिए प्रथम पंच मंगल का ही विनय उपधान करना जरुरी है ।

सूत्र - ४९३

हे भगवंत ! किस विधि से पंचमंगल का विनय उपधान करे ? हे गौतम ! आगे हम बताएंगे उस विधि से पंचमंगल का विनय उपधान करना चाहिए ।

अति प्रशस्त और शोभन तिथि, करण, मुहूर्त्त, नक्षत्र, योग, लग्न, चन्द्रबल हो तब आठ तरह के मद स्थान से मुक्त हो, शंका रहित श्रद्धासंवेग जिसके अति वृद्धि पानेवाले हो, अति तीव्र महान उल्लास पानेवाले, शुभ अध्यवसाय सहित, पूर्ण भक्ति और बहुमान से किसी भी तरह के आलोक या परलोक के फल की ईच्छारहित बनकर लगातार पाँच उपवास के पच्चक्खाण करके जिन मंदिर में जन्तुरहित स्थान में रहकर जिसका मस्तक भक्तिपूर्ण बना है । हर्ष से जिसके शरीर में रोमांच उत्पन्न हुआ है, नयन समान शतपत्रकमल प्रफुल्लित होता है । जिसकी नजर प्रशान्त, सौम्य, स्थिर है । जिसके हृदय सरोवर में संवेग की लहरे उठी है ।

अति तीव्र, महान, उल्लास पानेवाले कईं, घन-तीव्र आंतरा रहित, अचिंत्य, परम शुभ, परिणाम विशेष से

आनन्दित होनेवाले, जीव के वीर्य योग से हर वक्त वृद्धि पानेवाले, हर्षपूर्ण शुद्ध अति निर्मल स्थिर निश्चल अंतःकरण वाले, भूमि पर स्थापन किया हो उस तरह से श्री ऋषभ आदि श्रेष्ठ धर्म तीर्थंकर की प्रतिमा के लिए स्थापन किए नैन और मनवाला उसके लिए एकाग्र बने परिणामवाला आराधक आत्मा शास्त्र के जानकार दृढ़ चारित्रवाले गुण संपत्ति से युक्त गुरु लघुमात्रा सहित शब्द उच्चार करके अनुष्ठान करवाने के अद्वीतिय लक्षवाले गुरु के वचन को बाधा न हो उस तरह जिसके वचन नीकलते हो । विनय आदि सम्मान हर्ष अनुकंपा से प्राप्त हुआ, कईं शोक संताप उद्वेग महाव्याधि का दर्द, घोर दुःख-दारिद्र्य, क्लेश रोग-जन्म, जरा, मरण, गर्भावास आदि समान दुष्ट श्वापद (एक जीव विशेष) और मच्छ से भरपूर भवसागर में नाव समान ऐसे इस समग्र आगम की-शास्त्र की मध्य में व्यवहार करनेवाले, मिथ्यात्व दोष से वध किए गए, विशिष्ट बुद्धि से खुद ने कल्पना किए हुए कुशास्त्र और उस के वचन जिसमें समग्र आशय-दृष्टांत युक्ति से घटीत नहीं होते ।

इतना ही नहीं लेकिन हेतु, दृष्टांत, युक्ति से कुमतवालों की कल्पीत बातों का विनाश करने के लिए समर्थ हैं। ऐसे पंचमंगल महा श्रुतस्कंधवाले पाँच अध्ययन और एक चुलिकावाले, श्रेष्ठ, प्रवचन देवता से अधिष्ठित, तीन पद युक्त, एक आलापक और सात अक्षर के प्रमाणवाले अनन्त गम-पर्याय अर्थ को बतानेवाले सर्व महामंत्र और श्रेष्ठ विद्या के परम बीज समान ऐसे 'नमो अरिहंताणं' इस तरह का पहला अध्ययन वांचनापूर्वक पढ़ना चाहिए । उस दिन यानि पाँच उपवास करने के बाद पहले अध्ययन की वांचना लेने के बाद दूसरे दिन आयंबिल तप से पारणा करना चाहिए ।

उसी प्रकार दूसरे दिन यानि सातवे दिन कईं अतिशय गुण संपदायुक्त आगे बताए गए अर्थ को साधनेवाले आगे कहे क्रम के मुताबिक दो पदयुक्त एक आलापक, पाँच शब्द के प्रमाणवाले ऐसे 'नमो सिद्धाणं' ऐसे दूसरे अध्ययन को पढ़ना चाहिए । उस दिन भी आयंबिल से पच्चक्खाण करना चाहिए ।

उसी प्रकार पहले बताए हुए क्रम अनुसार पहले कहे अर्थ की साधना करनेवाले तीन पदयुक्त एक आलापक, सात शब्द के प्रमाणवाले 'नमो आयरियाणं' ऐसे तीसरे अध्ययन का पठन करना और आयंबिल करना।

आगे बताए अर्थ साधनेवाले तीन पदयुक्त एक आलापक और सात शब्द के प्रमाणवाला नमो उवज्झायाणं ऐसे चौथे अध्ययन का पठन करना । आयंबिल करना ।

उसी प्रकार चार पदयुक्त एक आलापक और नौ अक्षर प्रमाणवाला ''नमो लोए सव्वसाहूणं'' ऐसे पाँचवे अध्ययन की वाचना लेकर पढ़ना और वो पाँचवे दिन यानि कुल दशवें दिन आयंबिल करना ।

उसी प्रकार उसके अर्थ को अनुसरण करनेवाले ग्यारह पदयुक्त तीन आलापक और तैंतीस अक्षर प्रमाण वाली ऐसी चुलिका समान ऐसो पंच नमोक्कारो, सव्व पावप्पणासणो । मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवई मंगलं तीन दिन एक एक पद की वाचना ग्रहण करके, छठ्ठे, सातवे, आठवे दिन उसी क्रम से और विभाग से आयंबिल तप करके पठन करना । उसी प्रकार यह पाँच मंगल महा श्रुतस्कंध स्वर, वर्ण, पद सहित, पद अक्षर बिन्दु मात्रा से विशुद्ध बड़े गुणवाले, गुरु ने उपदेश दिए हुए, वाचना दिए हुए ऐसे उसे समग्र ओर से इस तरह पढ़कर तैयार करो कि जिससे पूर्वानुपूर्वी पश्चानुपूर्वी अनानुपूर्वी वो ज़बान के अग्र हिस्से पर अच्छी तरह से याद रह जाए ।

उसके बाद आगे बताए अनुसार तिथि, करण, मुहूर्त्त, नक्षत्र, योग, लग्न, चन्द्रबल के शुभ समय जन्तुरहित ऐसे चैत्यालय-जिनालय के स्थान में क्रमसर आए हुए, अठ्ठम तप सहित समुद्देश अनुज्ञा विधि करवाके हे गौतम ! बड़े प्रबन्ध आड़म्बर सहित अति स्पष्ट वाचना सूनकर उसे अच्छी तरह से अवधारण करना चाहिए । यह विधि से पंचमंगल के विनय उपधान करने चाहिए ।

सूत्र - ४९४

हे भगवंत ! क्या यह चिन्तामणी कल्पवृक्ष समान पंच मंगल महाश्रुतस्कंध के सूत्र और अर्थ को प्ररूपे हैं ?

हे गौतम ! यह अचिंत्य चिंतामणी कल्पवृक्ष समान मनोवांछित पूर्ण करनेवाला पंचमंगल महा श्रुतस्कंध के

सूत्र और अर्थ प्ररूपेल हैं । वो इस प्रकार –

जिस कारण के लिए तल में तैल, कमल में मकरन्द, सर्वलोक में पंचास्तिकाय फैले रहे हैं । उसी तरह यह पंचमंगल महाश्रुतस्कंध के लिए समग्र आगम के भीतर यथार्थ क्रिया व्यापी है । सर्वभूत के गुण स्वभाव का कथन किया है । तो परम स्तुति किसकी करे ? इस जगत में जो भूतकाल में हो उसकी । इस सर्व जगत में जो कुछ भूतकाल में या भावि में उत्तम हुए हो वो सब स्तुति करने लायक हैं वैसे सर्वोत्तम और गुणवाले हो वे केवल अरिहंतादिक पाँच ही हैं, उसके अलावा दूसरे कोई सर्वोत्तम नहीं है, वो पाँच प्रकार के हैं – अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु । यह पाँच परमेष्ठि के गर्भार्थ-यथार्थ गुण सद्भाव हो तो वो इस प्रकार बताए हैं ।

मनुष्य, देव और असुरवाले इस सर्व जगत को आठ महाप्रातिहार्य आदि के पूजातिशय से पहचाननेवाले, असाधारण, अचिन्त्य प्रभाववाले, केवलज्ञान पानेवाले, श्रेष्ठ उत्तमता को वरे हुए होने से 'अरहंत', समग्र कर्मक्षय पाए हुए होने से जिसका भवांकुर समग्र तरीके से जल गया है, जिससे अब वो फिर से इस संसार में उत्पन्न नहीं होते । इसलिए उन्हें अरूहंत भी कहते हैं । या फिर अति दुःख से करके जिन पर विजय पा सकते हैं वैसे समग्र आठ कर्मशत्रुओं को निमर्थन करके वध किया है । निर्दलन टुकड़े कर दिए हैं, पीगला दिए हैं । अंत किया है, परिभाव किया है, यानि कर्म समान शत्रुओं को जिन्होंने हंमेशा के लिए वध किया है । ऐसे 'अरिहंत' कहा है ।

इस प्रकार इस अरिहंत की कईं प्रकार से समज दी है, प्रज्ञापना की जाती है, प्ररूपणा की जाती है । कहलाते हैं । पढ़ाते हैं, बनाते हैं, उपदेश दिया जाता है ।

और सिद्ध भगवंत परमानन्द महोत्सव में महालते, महाकल्याण पानेवाले, निरूपम सुख भुगतनेवाले, निष्कंप शुक्लध्यान आदि के अचिंत्य सामर्थ्य से अपने जीववीर्य से योग निरोध करने समान महा कोशीश से जो सिद्ध हुए हैं । या तो आठ तरह के कर्म का क्षय होने से जिन्होंने सिद्धपन की साधना का सेवन किया है, इस तरह के सिद्ध भगवंत या शुक्लध्यान समान अग्नि से बंधे कर्म भस्मीभूत करके जो सिद्ध हुए हैं, वैसे सिद्ध भगवंत सिद्ध किए हैं, पूर्ण हुए हैं, रहित हुए हैं, समग्र प्रयोजन समूह जिनको ऐसे सिद्ध भगवंत ! यह सिद्ध भगवंत स्त्री-पुरुष, नपुंसक, अन्यलिंग गृहस्थलिंग, प्रत्येकबुद्ध, स्वयंबुद्ध यावत् कर्मक्षय करके सिद्ध हुए-ऐसे कईं तरह के सिद्ध की प्ररूपणा की है (और) अठ्ठारह हजार शीलांग के आश्रय किए देहवाले छत्तीस तरह के ज्ञानादिक आचार प्रमाद किए बिना हंमेशा जो आचरण करते हैं, इसलिए आचार्य, सर्व सत्य और शिष्य समुदाय का हित आचरण करनेवाले होने से आचार्य, प्राण के परित्याग वक्त में भी जो पृथ्वीकाय आदि जीव का समारम्भ, आचरण नहीं करते । या आरम्भ की अनुमोदना जो नहीं करते, वो आचार्य बड़ा अपराध करने के बावजूद भी जो किसी पर मन से भी पाप आचरण नहीं करते यों आचार्य कहलाते हैं । इस प्रकार नाम-स्थापना आदि कईं भेद से प्ररूपणा की जाती है ।

(और) जिन्हों ने अच्छी तरह से आश्रवद्वार बन्ध किए हैं, मन, वचन, काया के सुंदर योग में उपयोगवाले, विधिवत् स्वर-व्यंजन, मात्रा, बिन्दु, पद, अक्षर से विशुद्ध बारह अंग, श्रुतज्ञान पढ़नेवाले और पढ़ानेवाले एवं दूसरे और खुद के मोक्ष उपाय जो सोचते हैं–उसका ध्यान धरते हैं वो उपाध्याय । स्थिर परिचित किए अनन्तगम पर्याय चीज सहित द्वादशांगी और श्रुतज्ञान जो एकाग्र मन से चिन्तवन करते हैं, स्मरण करते हैं, ध्यान करते हैं, वो उपाध्याय । इस प्रकार कईं भेद से उसकी व्याख्या करते हैं ।

अति कष्टवाले उग्र उग्रतर घोर तप और चारित्रवाले, कईं व्रत-नियम उपवास विविध अभिग्रह विशेष, संयम पालन, समता रहित परिषह उपसर्ग सहनेवाले, सर्व दुःख रहित मोक्ष की साधना करनेवाले वो साधु भगवंत कहलाते हैं । यही बात चुलिका में सोचेंगे ।

एसो पंच नमोक्कारो–इन पाँच को किया गया नमस्कार क्या करेगा ? ज्ञानावरणीय आदि सर्व पापकर्म विशेष को हर एक दिशा में नष्ट करे वो सर्व पाप नष्ट करनेवाले । यह पद चुलिका के भीतर प्रथम उद्देशो कहलाए 'एसो पंच नमोक्कारो सव्वपावप्पणासणो' यह उद्देशक इस तरह का है ।

मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवई मंगलं उसमें मंगल शब्द में रहे मंगल शब्द का निर्वाणसुख अर्थ होता है । वैसे मोक्ष सुख को साधने में समर्थ ऐसे सम्यग्दर्शनादि स्वरूपवाला, अहिंसा लक्षणवाला धर्म जो मुजे लाकर दे वो मंगल। और मुजे भव से-संसार से पार करे वो मंगल । या बद्ध, स्पृष्ट, निकाचित ऐसे आठ तरह के मेरे कर्म समूह को जो छाँने, विलय, नष्ट करे वो मंगल ।

यह मंगल और दूसरे सर्व मंगल में क्या विशेषता है ? प्रथम आदि में अरिहंत की स्तुति यही मंगल है । यह संक्षेप से अर्थ बताया । अब विस्तार से नीचे मुताबिक अर्थ जान लो । उस काल उस वक्त हे गौतम ! जिसके शब्द का अर्थ आगे बताया गया है ऐसा जो कोई धर्म तीर्थंकर अरिहंत होते हैं, वो परम पूज्य से भी विशेष तरह से पूज्य होते हैं । क्योंकि वो सब यहाँ बताएंगे वैसे लक्षण युक्त होते हैं ।

अचिन्त्य, अप्रमेय, निरुपम जिसकी तुलना में दूसरा कोई न आ सके, श्रेष्ठ और श्रेष्ठतर गुण समूह से अधिष्ठित होने के कारण से तीन लोक के अति महान, मन के आनन्द को उत्पन्न करनेवाले हैं । लम्बे ग्रीष्मकाल के ताप से संतप्त हुए, मयुर गण को जिस तरह प्रथम वर्षा की धारा का समूह शान्ति दे, उसी तरह कईं जन्मान्तर में उपार्जन करके इकट्ठे किए महा-पुण्य स्वरूप तीर्थंकर नामकर्म के उदय से अरिहंत भगवंत उत्तम हितोपदेश देना आदि के द्वारा सज्जड़ राग, द्वेष, मोह, मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, दुष्ट-संक्लिष्ट ऐसा परिणाम आदि से बंधे अशुभ घोर पापकर्म से होनेवाले भव्य जीव के संताप को निर्मूल करते हैं ।

सबको जानते होने से सर्वज्ञ हैं । कईं जन्म से उपार्जन किए महापुण्य के समूह से जगत में किसी की तुलना में न आए ऐसे अखूट बल, वीर्य, ऐश्वर्य, सत्त्व, पराक्रमयुक्त देहवाले वो होते हैं । उनके मनोहर देदीप्यमान पाँव के अँगूठे के अग्र हिस्से का रूप इतना रूपातिशयवाला होता है कि जिसके आगे सूर्य जैसे दस दिशा में प्रकाश से (स्फुरायमान) प्रकट प्रतापी किरणों के समूह से सर्व ग्रह, नक्षत्र और चन्द्र की श्रेणी को तेजहीन बताते हैं, वैसे तीर्थंकर भगवंत के शरीर के तेज से सर्व विद्याधर, देवांगना, देवेन्द्र, असुरेन्द्र सहित देव का सौभाग्य, कान्ति, दीप्ति, लावण्य और रूप की समग्र शोभा फिखी-निस्तेज हो जाती है ।

स्वाभाविक ऐसे चार, कर्मक्षय होने से ग्यारह और देव के किए उन्नीस ऐसे चौंतीस अतिशय ऐसे श्रेष्ठ निरुपम और असामान्य होते हैं । जिसके दर्शन से भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिष्क, वैमानिक, अहमिन्द्र, इन्द्र अप्सरा, किन्नर, नर विद्याधर, सूर और असूर सहित जगत के जीव को आश्चर्य होता है । अरे ! हम आज तक किसी भी दिन न देखा हुआ आज देखा । एक साथ इकट्ठे हुए । अतुल महान अचिंत्य गुण परम आश्चर्य का समूह एक ही व्यक्ति में आज हमने देखा । ऐसे शुभ परिणाम से उस वक्त अति गहरा सतत उत्पन्न होनेवाले प्रमोदवाले हुए । हर्ष और अनुराग से स्फुरायमान होनेवाले नये परिणाम से आपस में हर्ष के वचन बोलने लगे और विहार कर के भगवंत आगे चले तब अपने आत्मा की निंदा करने लगे । आपस में कहने लगे की वाकई हम नफरत के लायक हैं, अधन्य हैं, पुण्यहीन हैं, भगवंत विहार करके चले गए फिर संक्षोभ पाए हुए हृदयवाले मूर्छित हुए, महा मुसीबत से होश आया । उनके गात्र खींचने से अति शिथिल हो गए । शरीर सिकुड़ना, हाथ-पाँव फैलाना, प्रसन्नता बतानी, आँख में पलकार होना, शरीर की क्रियाएं-बन्ध हो गई, न समझ सके वैसे स्खलनवाले मंद शब्द बोलने लगे, मंद लम्बे हुँकार के साथ लम्बे गर्म निसाँसे छोड़ने लगे । अति बुद्धिशाली पुरुष ही उनके मन का यथार्थ निर्णय कर सके

जगत के जीव सोचने लगे कि किस तरह के तप के सेवन से ऐसी श्रेष्ठ ऋद्धि पा सकेंगे ? उनकी ऋद्धि-समृद्धि की सोच से और दर्शन से आश्चर्य पानेवाले अपने वक्षःस्थल पर हस्ततल स्थापन करके मन को चमत्कार देनेवाले बड़ा आश्चर्य उत्पन्न करते थे । इसलिए हे गौतम ! ऐसे अनन्त गुण समूह से युक्त शरीरवाले अच्छी तरह से सम्मानपूर्वक ग्रहण किए गए नामवाले धर्मतीर्थ को प्रवर्तानेवाले अरिहंत भगवंत के गुण-समूह समान रत्ननिधान का बयान इन्द्र महाराजा, अन्य किसी चार ज्ञानवाले या महा अतिशयवाले छद्मस्थ जीव भी रात दिन हर एक पल हजारों जबान से करोड़ों साल तक करे तो भी स्वयंभूरमण समुद्र समान अरिहंत के गुण को बयान नहीं कर सकते

क्योंकि हे गौतम ! धर्मतीर्थ प्रवर्तानेवाले अरिहंत भगवंत अपरिमित गुणरत्नवाले होते हैं । इसलिए यहाँ उनके लिए क्या बताए ? जहाँ तीन लोक के नाथ जगत के गुरु, तीन भूवन के एक बन्धु, तीन लोक के वैसे-वैसे उत्तम गुण के आधार समान श्रेष्ठ धर्म तीर्थंकर के वरण का एक अँगूठे के अग्र हिस्सेका केवल एक हिस्सा कईं गुण के समूह से शोभायमान है । उसमें अनन्ता हिस्से का रूप इन्द्रादि वर्णन करने के लिए समर्थ नहीं है । ये बात विशेष बताते हुए कहते हैं –

देव और इन्द्र या वैसे किसी भक्ति में लीन हुए सर्व पुरुष कईं जन्मान्तर में उपार्जन किए गए अनिष्ट दुष्ट कर्मराशि जनित दुर्गति उद्वेग आदि दुःख दारिद्र्य, क्लेश, जन्म, जरा, मरण, रोग, संताप, खिन्नता, व्याधि, वेदना आदि के क्षय के लिए उनके अँगूठे के गुण का वर्णन करने लगे तो सूर्य के किरणों के समूह की तरह भगवान के जो कईं गुण का समूह एक साथ उनके जिह्वा के अग्र हिस्से पर स्फूरायमान होता है, उसे इन्द्र सहित देवगण एक साथ बोलने लगे तो भी जिसका वर्णन करनेके लिए शक्तिमान नहीं है, तो फिर चर्मचक्षुवाले अकेवली क्या बोलेंगे?

इसलिए हे गौतम ! इस विषय में यहाँ यह परमार्थ समजे कि तीर्थंकर भगवंत के गुण सागर को अकेले केवलज्ञानी तीर्थंकर ही कहने के लिए शक्तिवर हैं । दूसरे किसी कहने के लिए समर्थ नहीं हो सकते । क्योंकि उनकी बोली सातिशय होती है । इसलिए वो कहने के लिए समर्थ है । या हे गौतम ! इस विषय में ज्यादा कहने से क्या ? सारभूत अर्थ बताता हूँ वो इस प्रकार है –

सूत्र – ४९५-४९६

समग्र आठ तरह के कर्म समान मल के कलंक रहित, देव और इन्द्र से पूजित चरणवाले जीनेश्वर भगवंत का केवल नाम स्मरण करनेवाले मन, वचन, काया समान तीन कारण में एकाग्रतावाला, पल-पल में शील और संयम में उद्यम-व्रत नियम में विराधना न करनेवाली आत्मा यकीनन अल्प काल में तुरंत सिद्धि पाती है ।

सूत्र – ४९७-४९९

जो किसी जीव संसार के दुःख से उद्वेग पाए और मोक्ष सुख पाने की अभिलाषावाला बने तब वो ''जैसे कमलवन में भ्रमर मग्न बन जाए उसी तरह'' भगवंत को स्तवना, स्तुति, मांगलिक जय जयारव शब्द करने में लीन हो जाए और झणझणते गुंजारव करते भक्ति पूर्व हृदय से जिनेश्वर के चरण-युगल के आगे भूमि पर अपना मस्तक स्थापन करके अंजलि जोड़कर शंकादि दूषण सहित सम्यक्त्ववाला चारित्र का अर्थी अखंड़ित व्रत-नियम धारण करनेवाला मानवी यदि तीर्थंकर के एक ही गुण को हृदय में धारण करे तो वो जरुर सिद्धि पाता है ।

सूत्र - ५००

हे गौतम ! जिनका पवित्र नाम ग्रहण करना ऐसे उत्तम फलवाला है ऐसे तीर्थंकर भगवंत के जगत में प्रकट महान आश्चर्यभूत, तीन भुवन में विशाल प्रकट और महान ऐसे अतिशय का विस्तार इस प्रकार का है ।

सूत्र – ५०१-५०३

केवलज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और चरम शरीर जिन्होंने प्राप्त नहीं किया ऐसे जीव भी अरिहंत के अतिशय को देखकर आठ तरह के कर्म का क्षय करनेवाले होते हैं । ज्यादा दुःख और गर्भावास से मुक्त होते हैं, महायोगी होते हैं, विविध दुःख से भरे भवसागर से उद्विग्न बनते हैं । और पलभर में संसार से विरक्त मनवाला बन जाता है । या हे गौतम ! दूसरा कथन करना एक ओर रखकर, लेकिन इस तरह से धर्म तीर्थंकर ऐसे श्रेष्ठ अक्षरवाला नाम है । वो तीन भुवन के बन्धु, अरिहंत, भगवंत, जीनेश्वर, धर्म तीर्थंकर को ही शोभा देता है । दूसरों को यह नाम देना शोभा नहीं देता । क्योंकि उन्होंने मोह का उपशम, संवेग, निर्वेद, अनुकंपा और आस्तिक्य लक्षणयुक्त कईं जन्म में छूनेवाले प्रकट किए गए सम्यग्दर्शन और उल्लास पाए हुए पराक्रम की शक्ति को छिपाए बिना उग्र कष्टदायक घोर दुष्कर तप का हंमेशा सेवन करके उच्च प्रकार के महापुण्य स्कंध समूह को उपार्जित किया है । उत्तम, प्रवर, पवित्र, समग्र विश्व के बन्धु, नाम और श्रेष्ठ स्वामी बने होते हैं ।

अनन्ता काल से वर्तते भव की पापवाली भावना के योग से बाँधे हुए पापकर्म का छेदन करके अद्वितीय तीर्थंकर नामकर्म जिन्होंने बाँधा है । अति मनोहर, देदीप्यमान, दश दिशा में प्रकाशित, निरुपम ऐसे एक हजार और आठ लक्षण–से शोभायमान होता है । जगत में जो उत्तम शोभा के निवास का जैसे वासगृह हो वैसी अपूर्व शोभावाले, उनके दर्शन होते ही उनकी शोभा देखकर देव और मानव अंतःकरण में आश्चर्य का अहसास करते हैं, एवं नेत्र और मन में महान विस्मय और प्रमोद महसूस करते हैं । वो तीर्थंकर भगवंत समग्र पापकर्म समान मैल के कलंक से मुक्त होते हैं । उत्तम समचतुरस्र संस्थान और श्रेष्ठ वजऋषभनाराच संघयण से युक्त परम पवित्र और उत्तम शरीर को धारण करनेवाले होते हैं ।

इस तरह के तीर्थंकर भगवंत महायशस्वी, महासत्त्वशाली, महाप्रभावी, परमेष्ठी हो वो ही धर्मतीर्थ को प्रवर्तनेवाले होते हैं । और फिर कहा है कि–

सूत्र – ५०४-५०८

समग्र मानव, देव, इन्द्र और देवांगना के रूप, कान्ति, लावण्य वो सब इकट्ठे करके उसका ढ़ग शायद एक और किया जाए और उसकी दूसरी ओर जिनेश्वर के चरण के अँगूठे के अग्र हिस्से का करोड़ या लाख हिस्से की उसके साथ तुलना की जाए तो वो देव-देवी के रूप का पिंड़ सुवर्ण के मेरू पर्वत के पास रखे गए ढ़ग की तरह शोभारहित दिखता है । या इस जगत के सारे पुरुष के सभी गुण इकट्ठे किए जाए तो उस तीर्थंकर के गुण का अनन्तवां हिस्सा भी नहीं आता । समग्र तीन जगत इकट्ठे होकर एक ओर एक दिशा में तीन भुवन हो और दूसरी दिशा में तीर्थंकर भगवंत अकेले ही हो तो भी वो गुण में अधिक होते हैं इसलिए वो परम पुजनीय हैं । वंदनीय, पूजनीय, अर्हंत हैं । बुद्धि और मतिवाले हैं, इसलिए उसी तीर्थंकर को भाव से नमस्कार करो ।

सूत्र – ५०९-५१२

लोक में भी गाँव, पुर, नगर, विषय, देश या समग्र भारत का जो जितने देश का स्वामी होता है, उस की आज्ञा को उस प्रदेश के लोग मान्य रखते हैं । लेकिन ग्रामाधिपति अच्छी तरह से अति प्रसन्न हुआ हो तो एक गाँव में से कितना दे ? जिस के पास जितना हो उसमें से कुछ दे । चक्रवर्ती थोड़ा भी दे तो भी उसके कुल परम्परा से आते (समग्र बंधु वर्ग का) दारिद्र नष्ट होता है । और फिर वो मंत्रीपन की, मंत्री चक्रवर्तीपन की, चक्रवर्ती सुरपतिपन की अभिलाषा करता है । देवेन्द्र, जगत के यथेच्छित सुखकुल को देनेवाले तीर्थंकरपन की अभिलाषा करते हैं ।

सूत्र – ५१३-५१४

एकान्त लक्ष रखकर अति अनुराग पूर्वक इन्द्र भी जिस तीर्थंकर पद की ईच्छा रखते हैं, ऐसे तीर्थंकर भगवंत सर्वोत्तम है । उसमें कोई सन्देह नहीं । इसलिए समग्र देव, दानव, ग्रह, नक्षत्र, सूर्य और चन्द्र आदि को भी तीर्थंकर पूज्य हैं । और वाकई में वो पाप नष्ट करनेवाले हैं ।

सूत्र – ५१५-५१६

तीन लोक में पूजनीय और जगत के गुरु ऐसे धर्मतीर्थंकर की द्रव्यपूजा और भावपूजा ऐसे दो तरह की पूजा बताई है । चारित्रानुष्ठान और कष्टवाले उग्र घोर तप का आसेवन करना वो भावपूजा और देशविरति श्रावक जो पूजा-सत्कार और दान-शीलादि धर्म सेवन करे वो द्रव्यपूजा । हे गौतम ! यहाँ इसका तात्पर्य इस प्रकार समझो

सूत्र - ५१७

भाव-अर्चन प्रमाद से उत्कृष्ट चारित्र पालन समान है । जब कि द्रव्य अर्चन जिनपूजा समान है । मुनि के लिए भाव अर्चन है और श्रावक के लिए दोनों अर्चन बताए हैं । उसमें भाव अर्चन प्रशंसनीय है ।

सूत्र - ५१८

हे गौतम ! यहाँ कुछ शास्त्र के परमार्थ को न समजनेवाले अवसन्न शिथिलविहारी, नित्यवासी, परलोक के

नुकसान के बारे में न सोचनेवाले, अपनी मति के अनुसार व्यवहार करनेवाले, स्वच्छंद, ऋद्धि, रस, शाता-गारव आदि में आसक्त हुए, राग-द्वेष, मोह-अंधकार-ममत्त्व आदि में अति प्रतिबद्ध रागवाले, समग्र संयम समान सद्धर्म से पराङ्मुख, निर्दय, लज्जाहीन, पाप की धृणा रहित, करुणा रहित, निर्दय, पाप आचरण करने में अभिनिवेश-कदाग्रह बुद्धिवाला, एकान्त में जो अति चंड़, रूद्र और क्रूर अभिग्रह करनेवाली मिथ्यादृष्टि, सर्व संग, आरम्भ, परिग्रह से रहित होकर, त्रिविध-त्रिविध से (मन, वचन, काया से कृत, कारित, अनुमति से) द्रव्य से सामायिक ग्रहण करता है लेकिन भाव से ग्रहण नहीं करता, नाम मात्र ही मस्तक मुंड़न करवाते हैं । नाम से ही अणगार-घर छोड़ दिया है । नाम का ही महाव्रतधारी है । श्रमण होने के बावजूद भी विपरीत मान्यता करके सर्वथा उन्मार्ग का सेवन और प्रवर्तन करता है । वो इस प्रकार–

हम अरिहंत भगवंत की गन्ध, माला, दीपक, संमार्जन, लिंपन, वस्त्र, बलि, धूप आदि की पूजा सत्कार करके हंमेशा तीर्थ की प्रभावना करते हैं । उसके अनुसार माननेवाले उन्मार्ग प्रवर्ताते हैं । इस प्रकार उनके कर्तव्य साधु धर्म के अनुरूप नहीं है । हे गौतम ! वचन से भी उनके इस कर्तव्य की अनुमोदना नहीं करनी चाहिए ।

हे भगवंत ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है कि वचन से भी उनके इस द्रव्यपूजन की अनुमोदना न करे? हे गौतम ! उनके वचन के अनुसार असंयम की बहुलता और मूल गुण नष्ट हो इससे कर्म का आश्रव हो और फिर अध्यवसाय को लेकर स्थूल और सूक्ष्म शुभाशुभ कर्म प्रकृति का बंध हो, सर्व सावद्य की की गई विरति समान महाव्रत का भंग हो, व्रत भंग होने से आज्ञा उल्लंघन का दोष लगे, उससे उन्मार्गगामीपन पाए, उससे सन्मार्ग का लोप हो, उन्मार्ग प्रवर्तन करना और सन्मार्ग का विप्रलोप करना यति के लिए महाआशातना समान है । क्योंकि वैसी महाआशातना करनेवाले को अनन्ता काल तक चार गति में जन्म-मरण के फेरे करने पड़ते हैं । इस कारण से वैसे वचन की अनुमोदना नहीं करनी चाहिए ।

सूत्र – ५१९-५२०

द्रव्यस्तव और भावस्तव इन दोनों में भाव-स्तव बहुत गुणवाला है । ''द्रव्यस्तव'' काफी गुणवाला है ऐसा बोलनेवाले की बुद्धि में समजदारी नहीं है । हे गौतम ! छ काय के जीव का हित-रक्षण हो ऐसा व्यवहार करना । यह द्रव्यस्तव गन्ध पुष्पादिक से प्रभुभक्ति करना उन समग्र पाप का त्याग न किया हो वैसे देश-विरतीवाले श्रावक को युक्त माना जाता है । लेकिन समग्र पाप के पच्चक्खाण करनेवाले संयमी साधु को पुष्पादिक की पूजा समान, द्रव्यस्तव करना कल्पता नहीं ।

सूत्र – ५२१-५२२

हे गौतम ! जिस कारण से यह द्रव्यस्तव और भावस्तव रूप दोनों पूजा बत्तीस इन्द्र ने की है तो करने लायक है ऐसा शायद तुम समज रहे हो तो उसमें इस प्रकार समजना । यह तो केवल उनका विनियोग पाने की अभिलाषा समान भाव-स्तव माना है । अविरति ऐसे इन्द्र को भावस्तव (छ काय जीव की त्रिविध त्रिविध से दया स्वरूप) नामुमकीन है । दशार्णभद्र राजा ने भगवंत का आडंबर से सत्कार किया वो द्रव्यपूजा और इन्द्र के सामने मुकाबले में हार गए तब भावस्तव समान दीक्षा अंगीकार की । तब इन्द्र को भी हराया – वो दृष्टांत का यहाँ लागु करना, इसलिए भाव स्तव ही उत्तम है ।

सूत्र – ५२३-५२६

चक्रवर्ती, सूर्य, चन्द्र, दत्त, दमक आदि ने भगवान को पूछा कि क्या सर्व तरह की ऋद्धि सहित कोई न कर सके उस तरह भक्ति से पूजा-सत्कार किए वो क्या सर्व सावद्य समजे ? या त्रिविध विरतिवाला अनुष्ठान समजे या सर्व तरह के योगवाली विरती के लिए उसे पूजा माने ? हे भगवंत, इन्द्र ने तो उनकी सारी शक्ति से सर्व प्रकार की पूजा की है । हे गौतम ! अविरतिवाले इन्द्र ने उत्तम तरह की भक्ति से पूजा सत्कार किए हो तो भी वो देश विरति वाले और अविरतिवाले के यह द्रव्य और भावस्तव ऐसे दोनों का विनियोग उसकी योग्यतानुसार जोड़ना ।

सूत्र - ५२७

हे गौतम ! सर्व तीर्थंकर भक्त ने समग्र आठ कर्म का निर्मूलक्षय करनेवाले ऐसे चारित्र अंगीकार करने समान भावस्तव का खुद आचरण किया है ।

सूत्र – ५२८-५३०

भव से भयभीत ऐसे उनको जहाँ-जहाँ आना, जन्तु को स्पर्श आदि प्रपुरुषन-विनाशकारण प्रवर्तता हो, स्व-पर हित से विरमे हुए हो उनका मन वैसे सावद्य कार्य में नहीं प्रवर्तता । इसलिए स्व-पर अहित से विरमे हुए संयत को सर्व तरह से सविशेष परम सारभूत ज्यादा लाभप्रद ऐसे अनुष्ठान का सेवन करना चाहिए । मोक्ष-मार्ग का परम सारभूत विशेषतावाला एकान्त करनेवाला पथ्य सुख देनेवाला प्रकट परमार्थ रूप कोई अनुष्ठान हो तो केवल सर्व विरति समान भावस्तव है । वो इस प्रकार –

सूत्र – ५३१-५३७

लाख योजन प्रमाण मेरु पर्वत जैसे ऊंचे, मणिसमुद्र से शोभायमान, सुवर्णमय, परम मनोहर, नयन और मन को आनन्द देनेवाला, अति विज्ञानपूर्ण, अति मजबूत, दिखाई न दे उस तरह जुड़ दिया हो ऐसा, अति घिसकर मुलायम बनाया हुआ, जिसके हिस्से अच्छी तरह से बाँटे गए हैं ऐसा कईं शिखरयुक्त, कईं घंट और ध्वजा सहित, श्रेष्ठ तोरण युक्त कदम-कदम पर आगे-आगे चलने से जहाँ (पर्वत) या राजमहल समान शोभा दिखाई देती हो । वैसे अगर, कपूर, चंदन आदि का बनाया हुआ धूप जो अग्नि में ड़ालने से महकता हो, कईं तरह के कईं वर्णवाले आश्चर्यकारी सुन्दर पुष्प समूह से अच्छी तरह से पूजे गए, जिसमें नृत्य पूर्ण कईं नाटिका से आकुल, मधुर, मृदंग के शब्द फैले हुए हों, सैंकड़ों उत्तम आशयवाले लोगों से आकुल, जिसमें जिनेश्वर भगवंत के चारित्र और उपदेश का श्रवण करवाने के कारण से उत्कंठित हुए चित्तयुक्त लोग हो, जहाँ कहने की कथाएं, व्याख्याता, नृत्य करनेवाले, अप्सरा, गंधर्व, वाजिंत्र के शब्द सुनाई दे रहे हो । यह बताए गुणसमूह युक्त इस पृथ्व में सर्वत्र अपनी भुजा से उपार्जन किए गए न्यायोपार्जित अर्थ से सुवर्ण के, मणि के और रत्न के दादरवाला, उसी तरह के हजार स्तंभ जिसमें खड़े किए गए हो, सुवर्ण का बनाया हुआ भूमितल हो, ऐसा जिनमंदिर जो बनवाए उससे भी तप और संयम कईं गुणवाले बताए हैं ।

सूत्र – ५३८-५४०

इस प्रकार तपसंयम द्वारा कईं भव के उपार्जन किए पापकर्म के मल समान लेप को साफ करके अल्पकाल में अनंत सुखवाला मोक्ष पाता है । समग्र पृथ्वी पट्ट को जिनायतन से शोभायमान करनेवाले दानादिक चार तरह का सुन्दर धर्म सेवन करनेवाला श्रावक ज्यादा से ज्यादा अच्छी गति पाए तो भी बारहवें देवलोक से आगे नहीं नीकल सकता । लेकिन अच्युत नाम के बारहवे देवलोक तक ही जा सकता है ।

सूत्र – ५४१-५४२

हे गौतम ! लवसत्तम देव यानि सर्वार्थसिद्ध में रहनेवाले देव भी वहाँ से च्यवकर नीचे आते हैं फिर बाकी के बारे में सोचा जाए तो संसार में कोई शाश्वत या स्थिर स्थान नहीं है । लम्बे काल के बाद जिसमें दुःख मिलनेवाला हो वैसे वर्तमान के सुख को सुख कैसे कहा जाए ? जिसमें अन्त में मौत आनेवाली हो और अल्पकाल का श्रेय वैसे सुख को तुच्छ माना है । समग्र नर और देव का सर्व लम्बे काल तक इकट्ठा किया जाए तो भी वो सुख मोक्ष के अनन्त हिस्से जितना भी श्रवण या अनुभव कर शके ऐसा नहीं है ।

सूत्र – ५४३-५४५

हे गौतम ! अति महान ऐसे संसार के सुख की भीतर कईं हजार घोर प्रचंड़ दुःख छिपे हैं । लेकिन मंद बुद्धिवाले शाता वेदनीय कर्म के उदय में उसे पहचान नहीं सकता । मणि सुवर्ण के पर्वत में भीतर छिपकर रहे लोह

रोड़ा की तरह या वणिक पुत्री की तरह (यह किसी अवसर का पात्र है । वहाँ ऐसा अर्थ नीकल सकता है कि जिस तरह कुलवान, लज्जावाली और घुँघट नीकालनेवाली वणिक पुत्री का मुँह दूसरे नहीं देख सकते वैसे मोक्ष सुख भी बयान नहीं किया जाता ।) नगर के अतिथि की तरह रहकर आनेवाला भील राजमहल आदि के नगरसुख को बयान नहीं कर सकता । वैसे यहाँ देवता, असुर और मनुष्य के जगत में मोक्ष के सुख को समर्थ ज्ञानी पुरुष भी बयान नहीं कर सकते ।

सूत्र – ५४६

दीर्घकाल के बाद भी जिसका अन्त दिखाई न दे उसे पुण्य किस तरह कह सकते हैं । और फिर जिसका अन्त दुःख से होनेवाला हो और जो संसार की परम्परा बढ़ानेवाला हो उसे पुण्य या सुख किस तरह कह सकते हैं?

सूत्र – ५४७

वो देव विमान का वैभव और फिर देवलोक में से च्यवन हो । इन दोनों के बारे में सोचनेवाला का हृदय वाकई वैक्रिय शरीर के मजबूती से बनाया है । वरना उसके सो टुकड़े हो जाए ।

सूत्र – ५४८-५४९

नरकगति के भीतर अति दुःसह ऐसे जो दुःख हैं उसे करोड़ साल जीनेवाला वर्णन शूरु करे तो भी पूर्ण न कर सके । इसलिए हे गौतम ! दस तरह का यतिधर्म घोर तप और संयम का अनुष्ठान आराधन वो रूप भावस्तव से ही अक्षय, मोक्ष, सुख पा सकते हैं ।

सूत्र – ५५०

नारकी के भव में, तिर्यंच के भव में, देवभव में या इन्द्ररूप में उसे पा नहीं सकते कि जो किसी मानव भव में पा सकते हैं ।

सूत्र – ५५१

अति महान बहोत चारित्रावरणीय नाम के कर्म दूर हो तब ही हे गौतम ! जीव भावस्तव करने की योग्यता पा सकते हैं ।

सूत्र – ५५२

जन्मान्तर में उपार्जित बड़े पुण्य समूह को और मानव जन्म को प्राप्त किए बिना उत्तम चारित्र धर्म नहीं पा सकते ।

सूत्र – ५५३

अच्छी तरह से आराधन किए हुए, शल्य और दंभरहित होकर जो चारित्र के प्रभाव से तुलना न की हो वैसे अनन्त अक्षय तीन लोक के अग्र हिस्से पर रहे मोक्ष सुख पाते हैं ।

सूत्र – ५५४-५५६

कईं भव में ईकट्ठे किए गए, ऊंचे पहाड़ समान, आठ पापकर्म के ढ़ग को जला देनेवाले विवेक आदि गुण-युक्त मानव जन्म प्राप्त किया । ऐसा उत्तम मानव जन्म पाकर जो कोई आत्महित और श्रुतानुसार आश्रव निरोध नहीं करते और फिर अप्रमत्त होकर अठ्ठारह हजार शीलांग को जो धारण नहीं करते । वो दीर्घकाल तक लगातार घोर दुःखाग्नि के दावानल में अति उद्वेगपूर्वक शेकते हुए अनन्ती बार जलता रहता है ।

सूत्र – ५५७-५६०

अति बदबूवाले विष्टा, प्रवाही, क्षार-पित्त, उल्टी, बलखा, कफ आदि से परिपूर्ण चरबी ओर परु, गाढ़ अशुचि, मलमूत्र, रूधिर के कीचड़वाले कढ़कढ़ करते हुए नीकलनेवाला, चलचल करते हुए चलायमान किए जानेवाला, ढ़लढ़छ करते हुए ढ़लनेवाला, रझोड़ते हुए सर्व अंग इकट्ठे करके सिकुड़ा हुआ गर्भावास में कईं योनि में

रहता था । नियंत्रित किए अंगवाला, हर एक योनिवाले गर्भावास में पुनः पुनः भ्रमण करता था, अब मुजे संताप-उद्वेग जन्मजरा मरण गर्भावास आदि संसार के दुःख और संसार की विचित्रता से भयभीत होनेवाले ने इस समग्र भय को नष्ट करनेवाले भावस्तव के प्रभाव को जानकर उसके लिए दृढ़पन से अति उद्यम और प्रवृत्ति करनी चाहिए

सूत्र – ५६१

उस प्रकार विद्याधर, किन्नर, मानव, देव असुरवाले जगत ने तीन भुवन में उत्कृष्ट ऐसे जिनेश्वर की द्रव्यस्तव और भावस्तव ऐसे दो तरह से स्तुति की है ।

सूत्र – ५६२-५६९

हे गौतम ! धर्म तीर्थंकर भगवंत, अरिहंत, जिनेश्वर जो विस्तारवाली ऋद्धि पाए हुए हैं । ऐसी समृद्धि स्वाधीन फिर भी जगत् बन्धु पलभर उसमें मन से भी लुभाए नहीं । उनका परमैश्वर्य रूप शोभायमय लावण्य, वर्ण, बल, शरीर प्रमाण, सामर्थ्य, यश, कीर्ति जिस तरह देवलोक में से च्यवकर यहाँ अवतरे, जिस तरह दूसरे भव में, उग्र तप करके देवलोक पाया । एक आदि विशस्थानक की आराधना करके जिस तरह तीर्थंकर नामकर्म बाँधा, जिस तरह सम्यक्त्व पाया । बाकी भव में श्रमणपन की आराधना की, सिद्धार्थ राजा की रानी त्रिशला को चौदह महा सपने की जिस तरह प्राप्ति हुई । जिस तरह गर्भावास में से अशुभ अशुचि चीज का दूर होना और सुगंधी सुवास स्थापन किया । इन्द्र राजा ने बड़ी भक्ति से अंगूठे के पर्व में अमृताहार का न्यास किया । जन्म हुआ तब तक भगवंत की इन्द्रादिक स्तवना करते थे और फिर जिस प्रकार दिशिकुमारी ने आकर जन्म सम्बन्धी सूतिकर्म किए । बत्तीस देवेन्द्र गौरववाली भक्ति से महा आनन्द सहित सर्व ऋद्धि से सर्व तरह के अपने कर्तव्य जिस तरह से पूरे किए, मेरु पर्वत के शिखर पर प्रभु का जन्माभिषेक करते थे तब रोमांच रूप कंचुक से पुलकित हुए देहवाले, भक्तिपूर्ण, गात्रवाले ऐसा सोचने लगे कि वाकई हमारा जन्म कृतार्थ हुआ ।

सूत्र – ५७०-५७९

पलभर हाथ हिलाना, सुन्दर स्वर में गाना, गम्भीर दुंदुभि का शब्द करते, क्षीर समुद्र में से जैसे शब्द प्रकट हो वैसे जय जय करनेवाले मंगल शब्द मुख से नीकलते थे और जिस तरह दो हाथ जोड़कर अंजलि करते थे, जिस तरह क्षीर सागर के जल से कईं खुशबूदार चीज की खुशबू से सुवासित किए गए सुवर्ण मणिरत्न के बनाए हुए ऊंचे कलश से जन्माभिषेक महोत्सव देव करते थे, जिस तरह जिनेश्वर ने पर्वत को चलायमान किया । जिस तरह भगवंत आठ साल के थे फिर भी ''इन्द्र व्याकरण'' बनाया । जिस तरह कुमारपन बिताया, शादी करनी पड़ी । जिस तरह लोकांतिक देव ने प्रतिबोध किया । जिस तरह हर्षित सर्व देव और असुर ने भगवान की दीक्षा का महोत्सव किया, जिस तरह दिव्य मनुष्य और तिर्यंच सम्बन्धी घोर परिषह सहन किए । जिस तरह घोर तपस्या ध्यान योग से अग्नि से चार घनघाती कर्म जला दिए । जिस तरह लोकालोक को प्रकाशित करनेवाला केवलज्ञान उपार्जन किया, फिर से भी जिस तरह देव और असुर ने केवलज्ञान की महिमा करके धर्म, नीति, तप, चारित्र विषयक संशय पूछे । देव के तैयार किए हुए सिंहासन पर बिराजमान होकर जिस तरह श्रेष्ठ समवसरण तैयार किया । जिस तरह देव उनकी ऋद्धि और जगत की ऋद्धि दोनों की तुलना करते थे । समग्र भुवन के एक गुरु महायशवाले अरिहंत भगवंत ने जहाँ जहाँ जिस तरह विचरण किया । जिस तरह आठ महाप्रतिहार्य के सुंदर चिन्ह जिन तीर्थ में होते हैं । जिस तरह भव्य जीव के अनादिकाल के चिकने मिथ्यात्त्व के समग्र कर्म को निर्दलन करते हैं, जिस तरह प्रतिबोध करके मार्ग में स्थापन करके गणधर को दीक्षित करते हैं । और फिर महाबुद्धिवाले वो सूत्र बुनते हैं । जिस तरह जिनेन्द्र अनन्तगम पर्याय-समग्र अर्थ गणधर को कहते हैं ।

सूत्र – ५८०-५८५

जिस तरह जगत के नाथ सिद्धि पाते हैं, जिस तरह सर्व सुरवरेन्द्र उनका निर्वाण महोत्सव करते हैं और

फिर भगवंत की गेरमोजुदगी में शोक पाए हुए वो देव अपने गात्र को बहते अश्रुजल के सरसर शब्द करनेवाले प्रवाह से जिस तरह धो रहे थे । और फिर दुःखी स्वर से विलाप करते थे कि हे स्वामी ! हमे अनाथ बनाया । जिस तरह सुरभी गंधयुक्त गोशीर्ष चंदनवृक्ष के काष्ट से सर्व देवेन्द्र ने विधिवत् भगवंत के देह का अग्निसंस्कार किया । संस्कार करने के बाद शोक पानेवाले शून्य दश दिशा के मार्ग को देखते थे । जिस तरह क्षीर-सागर में जिनेश्वर के अस्थि को प्रक्षालन करके देवलोक में ले जाकर श्रेष्ठ चंदन रस से उन अस्थि का विलेपन करके अशोकवृक्ष, पारिजात वृक्ष के पुष्प और शतपत्र सहस्र पत्र जाति के कमल से उसकी पूजा करके अपने अपने भवन में जिस तरह स्तुति करते थे । (वो सर्व वृत्तांत महा विस्तार से अरिहंत चरित्र नाम) अंतगड़ दशा से जानना ।

सूत्र – ५८६-५८९

यहाँ अभी जो चालु अधिकार है उसे छोड़कर यदि यह कहा जाए तो विषयान्तर असंबद्धता और ग्रंथ का लम्बा विस्तार हो जाए । प्रस्ताव न होने के बावजूद भी इतना भी हमने निरुपण किया उसमें अति बड़ा कारण उपदेशीत है जो यहाँ बताया है । उन भव्य सत्त्व के उपकार के लिए कहा गया है । अच्छे वसाणा से मिश्रित मोदक का जिस तरह भक्षण किया जाता है, वैसे लोगों में अति बड़ी मानसिक प्रीति उत्पन्न होती है । उस तरह यहाँ अवसर न होने के बावजूद भी भक्ति के बोझ से निर्भर और निजगुण ग्रहण करने में खींचे हुए चित्तवाले भवात्मा को बड़ा हर्ष उत्पन्न होता है ।

सूत्र – ५९०

यह पंचमंगल महाश्रुतस्कंध नवकार का व्याख्यान महा विस्तार से अनन्तगम और पर्याय सहित सूत्र से भिन्न ऐसे निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि से अनन्त ज्ञान-दर्शन धारण करनेवाले तीर्थंकर ने जिस तरह व्याख्या की थी । उसी तरह संक्षेप से व्याख्यान किया जाता था । लेकिन काल की परिहाणी होने के दोष से वो निर्युक्ति भाष्य, चूर्णिका विच्छेद पाकर इस तरह का समय-काल बह गया था, तब महा-ऋद्धि, लब्धि, संपन्न पदानुसारी लब्धिवाले व्रजस्वामी नाम के बारह अंग रूप श्रुत को धारण करनेवाले उत्पन्न हुए । उन्होंने पंचमंगल महाश्रुतस्कंध का यह उद्धार मूलसूत्र के बीच लिखा । गणधर-भगवंत ने मूलसूत्र को सूत्रपन से, धर्म तीर्थंकर अरहंत भगवंत ने अर्थ से बताया । तीन लोक से पूजित वीर जिनेन्द्र ने इसकी प्ररूपणा की इस प्रकार से वृद्ध आचार्य का सम्प्रदाय है ।

सूत्र – ५९१

यहाँ जहाँ जहाँ पद पद के साथ जुड़े हो और लगातार सूत्रालापक प्राप्त न हो वहाँ श्रुतधर ने लहीयाओं ने झूठ लिखा है । ऐसा दोष मत देना लेकिन जो किसी इस अचिन्त्य चिन्तामणी और कल्पवृक्ष समान महानिशीथ श्रुतस्कंध की पूर्वादर्श पहले की लिखी हुई प्रति थी उसमें ही ऊधई आदि जीवांत से खाकर उस कारण से टुकड़ेवाली प्रत हो गई । काफी पत्ते सड़ गए तो भी अति अतिशयवाला बड़े अर्थ से भरपूर यह महानिशीथ श्रुतस्कंध है । समग्र प्रवचन के परम सारभूत श्रेष्ठ तत्त्वपूर्ण महा, अर्थ, गर्भित है ऐसा जानकर प्रवचन के वात्सल्य से कईं भव्यजीव को उपकारमंद होंगे ऐसा मानकर और अपने आत्मा के हित के लिए आचार्य हरिभद्रसूरी ने जो उस आदर्श में लिखा, वो सर्व अपनी मति से शुद्ध करके लिखा है । दूसरे भी आचार्य-सिद्धेन दिवाकर, वृद्धवादी, यक्षसेन, देवगुप्त, यशोवर्धन, क्षमाश्रमण के शिष्य रविगुप्त, नेमिचन्द्र, जिनदासगणि, क्षमक, सत्यर्षी आदि युग प्रधान श्रुतधर ने उसे बहुमान्य रखा है ।

सूत्र – ५९२

हे गौतम ! इस प्रकार आगे कहने के अनुसार विनय-उपधान सहित पंचमंगल महा-श्रुतस्कंध (नवकार) को पूर्वानुपूर्वी, पश्चानुपूर्वी और अनानुपूर्वी से स्वर, व्यंजन, मात्रा, बिन्दु और पदाक्षर से शुद्ध तरह से पढ़कर उसे दिल में स्थिर और परिचित करके महा विस्तार से सूत्र और अर्थ जानने के बाद क्या पढ़ना चाहिए ?

हे गौतम ! उसके बाद इरियावहिय सूत्र पढ़ना चाहिए ।

हे भगवंत ! किस कारण से ऐसा कहलाता है कि पंचमंगल महा श्रुतस्कंध को पढ़ने के बाद इरियावहिय सूत्र पढ़ना चाहिए ?

हे गौतम ! हमारी यह आत्मा जब-जब आना-जाना आदि क्रिया के परिणाम में परिणत हुआ हो, कईं जीव, प्राण, भूत और सत्त्व के अनुपयोग या प्रमाद से संघट्टन, उपद्रव या किलामणा करके फिर उसका आलोचन प्रतिक्रमण किया जाए और समग्र कर्म के क्षय के लिए चैत्यवंदन, स्वाध्याय, ध्यान आदि किसी अनुष्ठान किया जाए उस वक्त एकाग्र चित्तवाली समाधि हो या न भी हो, क्योंकि गमनागमन आदि कईं अन्य व्यापार के परिणाम में आसक्त होनेवाले चित्त से कुछ जीव उसके पूर्व के परिणाम को न छोड़े और दुर्ध्यान के परिणाम में कुछ काल वर्तता है । तब उसके फल में विसंवाद होता है । और जब किसी तरह अज्ञान मोह प्रमाद आदि के दोष से अचानक एकेन्द्रियादिक जीव के संघट्टन या परितापन आदि हो गए हो और उसके बाद अरे रे ! यह हमसे बूरा काम हो गया। हम कैसे सज्जड़ राग, द्वेष, मोह, मिथ्यात्व और अज्ञान में अंध बन गए हैं । परलोक में इस काम के कैसे कटु फल भुगतने पड़ेंगे उसका खयाल भी नहीं आता । वाकई हम क्रूर कर्म और निर्दय व्यवहार करनेवाले हैं । इस प्रकार पछतावा करते हुए और अति संवेग पानेवाली आत्माएं अच्छी तरह से प्रकटपन में इरियावहिय सूत्र से दोष की आलोचना करके, बूराई करके, गुरु के सामने गर्हा करके, प्रायश्चित्त का सेवन करके शल्य रहित होता है । चित्त की स्थिरतावाला अशुभकर्म के क्षय के लिए जो कुछ आत्महित के लिए उपयोगवाला हो, जब वो अनुष्ठान में उपयोग वाला बने तब उसे परम एकाग्र चित्तवाली समाधि प्राप्त होती है । उससे सर्व जगत के जीव, प्राणीभूत और सत्त्व को जो ईष्टफल हो वैसी इष्टफल की प्राप्ति होती है ।

उस कारण से हे गौतम ! इरियावहिय पड़िक्कमे बिना चैत्यवंदन स्वाध्यायादिक किसी भी अनुष्ठान न करना चाहिए । यदि यथार्थफल की अभिलाषा रखता हो तो, इस कारण से कि गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि पंचमंगल महाश्रुतस्कंध नवकार सूत्र अर्थ और तदुभय सहित स्थिर-परिचित कर के इरियावहिय सूत्र पढ़ना चाहिए

सूत्र – ५९३

हे भगवंत ! किस विधि से इरियावहिय सूत्र पढ़ना चाहिए ? हे गौतम ! पंच मंगल महाश्रुतस्कंध की विधि के अनुसार पढ़ना चाहिए ।

सूत्र – ५९४

हे भगवंत ! इरियावहिय सूत्र पढ़कर फिर क्या करना चाहिए ? हे गौतम ! शक्रस्तव आदि चैत्यवंदन पढ़ना चाहिए । लेकिन शक्रस्तव एक अठ्ठम और उसके बाद उसके उपर बत्तीस आयंबिल करना चाहिए । अरहंत सत्व यानि अरिहंत चेईआणं एक उपवास और उस पर पाँच आयंबिल करके । चौबीस स्तव-लोगस्स, एक छठ्ठ, एक उपवास पर पचीस आयंबिल करके । श्रुतस्तव-पुक्खरवरदीवड्ढे सूत्र, एक उपवास और उपर पाँच आयंबिल करके विधिवत् पढ़ना चाहिए ।

उस प्रकार स्वर, व्यंजन, मात्रा, बिन्दु, पदच्छेद, पद, अक्षर से विशुद्ध, एक पद के अक्षर दूसरे में न मिल जाए, उसी तरह वैसे दूसरे गुण सहित बताए सूत्र का अध्ययन करना । यह बताई गई तपस्या और विधि से समग्र सूत्र और अर्थ का अध्ययन करना । जहाँ जहाँ कोई संदेह हो वहाँ वहाँ उस सूत्र को फिर से सोचना । सोचकर निःशंक अवधारण करके निःसंदेह करना ।

सूत्र – ५९५

इस प्रकार सूत्र, अर्थ और उभय सहित चैत्यवंदन आदि विधान पढ़कर उसके बाद शुभ तिथि, करण, मुहूर्त्त, नक्षत्र योग, लग्न और चन्द्रबल का योग हुआ हो उस समय यथाशक्ति जगद्गुरु तीर्थंकर भगवंत को पूजने लायक उपकरण इकट्ठे करके साधु भगवंत को प्रतिलाभी का भक्ति पूर्ण हृदयवाला रोमांचित बनकर पुलकित हुए

शरीरवाला, हर्षित हुए मुखारविंदवाला, श्रद्धा, संवेग, विवेक परम वैराग से और फिर जिसने गहरे राग, द्वेष, मोह, मिथ्यात्व समान मल कलंक को निर्मूलपन से विनाश किया है वैसी, सुविशुद्ध, अति निर्मल, विमल, शुभ, विशेष शुभ इस तरह के आनन्द पानेवाले, भुवनगुरु जिनेश्वर की प्रतिमा के लिए स्थापना किये हुए दृष्टि और मानसवाला, एकाग्र चित्तवाला वाकई में धन्य हूँ, पुण्यशाली हूँ । जिनेश्वर को वंदन करने से मैंने मेरा जन्म सफल किया है ।

ऐसा मानते हुए ललाट के ऊपर दो हाथ जोड़कर अंजलि की रचना करनेवाले सजीव वनस्पति बीज जन्तु आदि रहित भूमि के लिए दोनों जानुओं स्थापन करके अच्छी तरह से साफ हृदय से सुन्दर रीती से जाने हुए जिसने यथार्थ सूत्र अर्थ और तदुभव निःशंकित किए हैं ऐसा, पद-पद के अर्थ की भावना भाता हुआ, दृढ़ चारित्र, शास्त्र को जाननेवाला, अप्रमादातिशय आदि कईं गुण संपत्तिवाले गुरु के साथ, साधु, साध्वी, साधर्मिक बन्धुवर्ग परिवार सहित प्रथम उसको चैत्य को जुहारना चाहिए । उसके बाद यथाशक्ति साधर्मिक बन्धु को प्रणाम करने पूर्वक अति किंमती कोमल साफ वस्त्र की पहरामणी करके उसका महा आदर करना चाहिए उनका सुन्दर सम्मान करना । इस वक्त शास्त्र के सार जिन्होंने अच्छी तरह से समझा है । ऐसे गुरु महाराज को विस्तार से आक्षेपणी निक्षेपणी धर्मकथा कहकर संसार का निर्वेद उत्पाद श्रद्धा, संवेग वर्धक धर्मोपदेश देना चाहिए ।

सूत्र – ५९६-५९७

उसके बाद परम श्रद्धा संवेग तत्पर बना जानकर जीवन पर्यन्त के कुछ अभिग्रह देना । जैसे कि हे देवानुप्रिय ! तुने वाकई ऐसा सुन्दर मानवभव पाया उसे सफल किया । तुझे आज से लेकर जावज्जीव हंमेशा तीन काल जल्दबाझी किए बिना शान्त और एकाग्र चित्त से चैत्य का दर्शन, वंदन करना, अशुचि अशाश्वत क्षणभंगुर ऐसी मानवता का यही सार है । रोज सुबह चैत्य और साधु को वंदन न करु तब तक मुख में पानी न डालना । दोपहर के वक्त चैत्यालय में दर्शन न करूँ तब तक मध्याहन भोजन न करना । शाम को भी चैत्य के दर्शन किए बिना संध्याकाल का उल्लंघन न करना । इस तरह के अभिग्रह या नियम जीवनभर के करवाना । उसके बाद हे गौतम ! आगे बताएंगे उस (वर्धमान) विद्या से मंत्रीत करके गुरु को उसके मस्तक पर सात गंधचूर्ण की मुष्ठि ड़ालनी और ऐसे आशीर्वाद के वचन कहना कि–इस संसार समुद्र का निस्तार करके पार पानेवाला बन ।

वर्धमान विद्या–ॐ नमो भगवओ अरहओ सिज्झउ मे भगवती महाविज्जा वीरे महावीरे जयवीर सेणवीरे वद्धमाण वीरे जयंते अपराजिए स्वाहा ।

उपवास करके विधिवत् साधना करनी चाहिए । इस विद्या से हर एक धर्माराधना में तूं पार पानेवाला बन । बड़ी दीक्षा में, गणीपद की अनुज्ञा में सात बार इस विद्या का जप करना और निन्थारग पारगा होह ऐसा कहना । अंतिम साधना अनसन अंगीकार करे तब मंत्रीत करके वासक्षेप किया जाए तो आत्मा आराधक बनता है । इस विद्या के प्रभाव से विघ्न के समूह उपशान्त उत्पन्न होता है । शूरवीर पुरुष संग्राम में प्रवेश करे तो किसी से पराभव नहीं होता । कल्प की समाप्ति में मंगल और क्षेम करनेवाला होता है ।

सूत्र – ५९८

और फिर साधु-साध्वी श्रावक-श्राविका समग्र नजदीकी साधर्मिक भाई, चार तरह के श्रमण संघ के विघ्न उपशान्त होते हैं और धर्मकार्य में सफलता पाते हैं । और फिर उस महानुभाव को ऐसा कहना कि वाकई तुम धन्य हो, पुण्यवंत हो, ऐसा बोलते-बोलते वासक्षेप मंत्र करके ग्रहण करना चाहिए ।

उसके बाद जगद्गुरु जिनेन्द्र की आगे के स्थान में गंधयुक्त, न मुर्झाई हुई श्वेत माला ग्रहण करके गुरु महाराज अपने हस्त से दोनों खंभे पर आरोपण करते हुए निःसंदेह रूप से इस प्रकार कहना–कि–अरे महानुभाव ! जन्मान्तर में उपार्जित किए महापुण्य समूहवाले ! तुने तेरा पाया हुआ, अच्छी तरह से उपार्जित करनेवाला मानव जन्म सफल किया, हे देवानुप्रिय ! तुम्हारे नरकगति और तिर्यंचगति के द्वार बन्द हो गए । अब तुजे अपयश अपकीर्ति हल्के गौत्र कर्म का बँध नहीं होगा । भवान्तर में जाएगा वहाँ तुम्हे पंच नमस्कार अति दुर्लभ नहीं होगा ।

भावि जन्मान्तर में पंच नमस्कार के प्रभाव से जहाँ-जहाँ उत्पन्न होगा वहाँ वहाँ उत्तम जाति, उत्तम कुल, उत्तम पुरुष, सेहत, संपत्ति प्राप्त होगी । यह चीजें यकीनन तुम्हें मिलेगी ही ।

और फिर पंच नमस्कार के प्रभाव से तुम्हें दासपन, दारिद्र, बदनसीबी, हीनकुल में जन्म, विकलेन्द्रियपन नहीं मिलेगा । ज्यादा क्या कहना ? हे गौतम ! इस बताए हुए विधि से जो कोई पंच-नमस्कार आदि नित्य अनुष्ठान और अठ्ठारह हजार शीलांग के लिए रमणता करनेवाला हो, शायद वो सराग से संयम क्रिया का सेवन करे उस कारण से निर्वाण न पाए तो भी ग्रैवेयक अनुत्तर आदि उत्तम देवलोक में दीर्घकाल आनन्द पाकर यहाँ मानवलोक में उत्तमकुल में जन्म पाकर उत्कृष्ट सुन्दर लावण्य युक्त सर्वांग सुन्दर देह पाकर सर्व कला में पारंगत होकर लोगों के मन को आनन्द देनेवाला होता है, सुरेन्द्र समान ऋद्धि प्राप्त करके एकान्त दया और अनुकंपा करने में तत्पर, कामभोग से व्यथित यथार्थ धर्माचरण करके कर्मरज को छोड़कर सिद्धि पाता है ।

सूत्र – ५९९

हे भगवंत ! क्या जिस तरह पंच मंगल उपधान तप करके विधिवत् ग्रहण किया उसी तरह सामायिक आदि समग्र श्रुतज्ञान पढ़ना चाहिए ?

हे गौतम ! हा, उसी प्रकार विनय और उपधान तप करने लायक विधि से अध्ययन करना चाहिए । खास करके वो श्रुतज्ञान पढ़ाते वक्त अभिलाषावाले को सर्व कोशीश से आठ तरह के कालादिक आचार का रक्षण करना चाहिए । वरना श्रुतज्ञान की महा आशातना होती है । दूसरी बात यह भी ध्यान में रहे कि बारह अंग के श्रुतज्ञान के लिए प्रथम और अंतिम प्रहर पढ़ने के लिए और पढ़ाने के लिए हंमेशा कोशीश करनी और पंचमंगल नवकार पढ़ने के लिए – आठ पहोर बताए हैं । दूसरा यह भी ध्यान रखो कि पंच मंगल नवकार सामायिक में हो या सामायिक में न हो तो भी पढ़ सकते हैं । लेकिन सामायिक आदि सूत्र आरम्भ परिग्रह का त्याग करके और जावज्जीव सामायिक करके ही पढ़ा जाता है । आरम्भ-परिग्रह का त्याग किए बिना या जावज्जीव के सामायिक-सर्व विरती ग्रहण किए बिना पढ़े नहीं जा सकते । और पंचमंगल आलावे, आलापके-आलापके और फिर शक्रस्तवादिक और बारह अंग समान श्रुतज्ञान के उद्देशा । अध्ययन का (समुद्देश-अनुज्ञा विधि वक्त) आयंबिल करना ।

सूत्र – ६००

हे भगवंत ! यह पंचमंगल श्रुतस्कंध पढ़ने के लिए विनयोपधान की बड़ी नियंत्रणा-नियम बताए हैं । बच्चे ऐसी महान नियंत्रणा किस तरह कर सकते हैं ?

हे गौतम ! जो कोई ईस बताई हुई नियंत्रणा की ईच्छा न करे, अविनय से और उपधान किए बिना यह पंचमंगल आदि श्रुतज्ञान पढ़े-पढ़ाए या उपधान पूर्वक न पढ़े या पढ़ानेवाले को अच्छा माने उसे नवकार दे या वैसे सामायिकादि श्रुतज्ञान पढ़ाए तो प्रियधर्मवाला या दृढ़धर्मवाला नहीं माना जाता । श्रुतभक्तिवाला नहीं माना जाता ।

उस सूत्र की, अर्थ की, सूत्र, अर्थ, तदुभय भी हीलना करनेवाला होता है । गुरु की हीलना करनेवाला होता है । जो सूत्र, अर्थ और उभय एवं गुरु की अवहेलना करनेवाला हो वो अतीत, अनागत और वर्तमान तीर्थंकर की आशातना करनेवाला बने जिसने श्रुतज्ञान, अरिहंत, सिद्ध और साधु की आशातना की उस दीर्घकाल तक अनन्ता संसार सागर में अटका रहता है, उस तरह के गुप्त और प्रकट, शीत उष्ण, मिश्र और कईं ८४ लाख प्रमाणवाली योनि में बार-बार उत्पन्न होता है । और फिर गहरा अंधकार-बदबूवाले विष्ठा, प्रवाही, पिशाब, पित्त, बलखा, अशुचि चीज से परिपूर्ण चरबी ओर परु, उल्टी, मल, रुधिर के चीकने कीचड़वाले, देखने में अच्छा न लगे वैसे बिभत्स घोर गर्भवास में अपार दर्द सहना पड़ता है । कढ़-कढ़ करनेवाले, कठित, चलचल शब्द करके चलायमान होनेवाला टल-टल करते हुए टालनेवाला, रझड़ने वाला सर्व अंग इकट्ठे करके जैसे जोरसे गठरी में बाँधी हो वैसे लम्बे अरसे तक नियंत्रणा-वेदना गर्भावास में सहना पड़ता है ।

जो शास्त्र में बताई हुई विधि से इस सूत्रादिक को पढ़ते हैं जरा सा भी अतिचार नहीं लगाते । यथोक्त

विधान से पंचमंगल आदि श्रुतज्ञान का विनयोपधान करते हैं, वे हे गौतम ! उस सूत्र की हीलना नहीं करते । अर्थ की हीलना-आशातना नहीं करते, सूत्र-अर्थ, उभय की आशातना नहीं करते, तीन काल में होनेवाले तीर्थंकर की आशातना नहीं करता, तीन लोक की चोटी पर वास करनेवाले कर्मरज समान मैल को जिन्होंने दूर किया है । ऐसे सिद्ध की जो आशातना नहीं करते, आचार्य, उपाध्याय और साधु की आशातना नहीं करते । अति प्रियधर्मवाले दृढ़ धर्मवाले और एकान्त भक्तियुक्त होते हैं । सूत्र अर्थ में अति रंजित मानसवाला वो श्रद्धा और संवेग को पानेवाला होता है इस तरह का पुण्यशाली आत्मा यह भव रूपी कैदखाने में बारबार गर्भवास आदि नियंत्रण का दुःख भुगतनेवाला नहीं होता ।

सूत्र – ६०१

लेकिन हे गौतम ! जिसने अभी पाप-पुण्य का अर्थ न जाना हो, ऐसा बच्चा उस ''पंच मंगल'' के लिए एकान्ते अनुचित है । उसे पंचमंगल महाश्रुतस्कन्ध का एक भी आलावा मत देना । क्योंकि अनादि भवान्तर में उपार्जन किए कर्मराशी को बच्चे के लिए यह आलापक प्राप्त करके बच्चा सम्यक् तरह से आराधन न करे तो उनकी लघुता हो । उस बच्चे को पहले धर्मकथा से भक्ति करनी चाहिए । उसके बाद प्रियधर्म दृढ़धर्म और भक्तियुक्त बन गया है ऐसा जानने के बाद जितने पच्चक्खाण निर्वाह करने के लिए समर्थ हो उतने पच्चक्खाण उसको करवाना । रात्रि भोजन के दुविध, त्रिविध, चऊविह-ऐसे यथाशक्ति पच्चक्खाण करवाना ।

सूत्र – ६०२

हे गौतम ! ४५ नवकारशी करने से, २४ पोरिसी करने से, १२ पुरिमुड्ढ करने से, १० अवड्ढ करने से और चार एकासणा करने से (एक उपवास गिनती में ले सकते हैं ।) दो आयंबिल और एक शुद्ध, निर्मल, निर्दोष आयंबिल करने से भी एक उपवास गिना जाता है ।) हे गौतम ! व्यापार रहितता से रौद्रध्यान-आर्तध्यान, विकथा रहित स्वाध्याय करने में एकाग्र चित्तवाला हो तो केवल एक आयंबिल करे तो भी मासक्षमण से आगे नीकल जाता है । इसलिए विसामा सहित जितने प्रमाण में तप-उपधान करे उतने प्रमाण में उसी गिनती में बढ़ौती करके पंच-मंगल पढ़ने के लायक बने, तब उसे पंच-मंगल का आलावा पढ़वाना, वरना मत पढ़ाना ।

सूत्र – ६०३

हे भगवंत ! इस प्रकार करने से, दीर्घकाल बीत जाए और यदि शायद बीच में ही मर जाए तो नवकार रहित वो अंतिम आराधना किस तरह साध सके ? हे गौतम ! जिस वक्त सूत्रोपचार के निमित्त से अशठभाव से यथाशक्ति जो कोई तप की शुरूआत की उसी वक्त उसने उस सूत्र का, अर्थ का और तदुभय का अध्ययन पठन शुरू किया ऐसा समझना । क्योंकि वो आराधक आत्मा उस पंच नमस्कार के सूत्र, अर्थ और तदुभय को अविधि से ग्रहण नहीं करता । लेकिन वो उस तरह विधि से तपस्या करके ग्रहण करता है कि – जिससे भवान्तर में भी नष्ट न हो ऐसे शुभ-अध्यवसाय से वो आराधक होता है ।

सूत्र – ६०४

हे गौतम ! किसी दूसरे के पास पढ़ते हो और श्रुतज्ञानावरणीय के क्षयोपशम से कान से सूनकर दिया गया सूत्र ग्रहण करके पंचमंगल सूत्र पढ़कर किसी ने तैयार किया हो – क्या उसे भी तप उपधान करना चाहिए ?

हे गौतम ! हा, उसको भी तप कराके देना चाहिए ।

हे भगवंत ! किस कारण से तप करना चाहिए ? हे गौतम ! सुलभ बोधि के लाभ के लिए । इस प्रकार तप-विधान न करनेवाले को ज्ञान-कुशील समझना ।

सूत्र – ६०५

हे भगवंत ! जिस किसी को अति महान ज्ञानावरणीय कर्म का उदय हुआ हो, रात-दिन रटने के बाद भी एक साल के बाद केवल अर्धश्लोक ही स्थिर परीचित हो, वो क्या करे ? वैसे आत्मा को जावज्जीव तक अभिग्रह

ग्रहण करना या स्वाध्याय करनेवाले का वेयावच्च और प्रतिदिन ढ़ाई हजार प्रमाण पंचमंगल के सूत्र, अर्थ और तदुभय का स्मरण करते हुए एकाग्र मन से रटन करे । हे भगवंत ! किस कारण से ? (कहते हो ?) हे गौतम ! जो भिक्षु जावज्जीव अभिग्रह रहित चारों काल यथाशक्ति वाचनादि समान स्वाध्याय न करे उसे ज्ञानकुशील माना है ।

सूत्र – ६०६

दूसरा – जो किसी यावज्जीव तक के अभिग्रह पूर्वक अपूर्वज्ञान का बोध करे, उसकी अशक्ति में पूर्व ग्रहण किए ज्ञान का परावर्तन करे, उसकी भी अशक्ति में ढ़ाई हजार पंचमंगल नवकार का परावर्तन-जप करे, वो भी आत्मा आराधक है । अपने ज्ञानावरणीय कर्म खपाकर तीर्थंकर या गणधर होकर आराधकपन पाकर सिद्धि पाते हैं

सूत्र – ६०७-६१०

हे भगवंत ! किस कारण से ऐसा कहलाता है कि चार काल में स्वाध्याय करना चाहिए ? हे गौतम ! मन, वचन और काया से गुप्त होनेवाली आत्मा हर वक्त ज्ञानावरणीय कर्म खपाती है । स्वाध्याय ध्यान में रहता हो वो हर पल वैराग्य पानेवाला बनता है । स्वाध्याय करनेवाले को उर्ध्वलोक, अधोलोक, ज्योतिष लोक, वैमानिक लोक, सिद्धि, सर्वलोक और अलोक प्रत्यक्ष है । अभ्यंतर और बाह्य ऐसे बारह तरह के तप के लिए सम्यग्दृष्टि आत्मा को स्वाध्याय समान तप नहीं हुआ और होगा भी नहीं ।

सूत्र – ६११-६१५

एक, दो, तीन मासक्षमण करे, अरे ! संवत्सर तक खाए बिना रहे या लगातार उपवास करे लेकिन स्वाध्याय-ध्यान रहित हो वो एक उपवास का भी फल नहीं पाता । उद्गम उत्पादन एषणा से शुद्ध ऐसे आहार को हंमेशा करनेवाला यदि मन, वचन, काया के तीन योग में एकाग्र उपयोग रखनेवाला हो और हर वक्त स्वाध्याय करता हो तो उस एकाग्र मानसवाले को साल तक उपवास करनेवाले के साथ बराबरी नहीं कर सकते । क्योंकि एकाग्रता से स्वाध्याय करनेवाले को अनन्त निर्जरा होती है । पाँच समिति, तीन गुप्ति, सहनशील, इन्द्रिय को दमन करनेवाला, निर्जरा की अपेक्षा रखनेवाला ऐसा मुनि एकाग्र मन से निश्चल होकर स्वाध्याय करता है । जो कोई प्रशस्त ऐसे श्रुतज्ञान को समझाते हैं, जो किसी शुभ भाववाला उसे श्रवण करता है, वो दोनो हे गौतम ! तत्काल आश्रव द्वार बन्ध करते हैं ।

सूत्र – ६१६-६१९

दुःखी ऐसे एक जीव को जो प्रतिबोध देकर मोक्ष मार्ग में स्थापन करते हैं, वो देवता और असुर सहित इस जगत में अमारी पड़ह बजानेवाले होते हैं, जिस तरह दूसरी धातु की प्रधानता युक्त सुवर्ण क्रिया बिना कंचनभाव को नहीं पाता । उस तरह सर्व जीव जिनोपदेश बिना प्रतिबोध नहीं पाते । राग-द्वेष और मोह रहित होकर जो शास्त्र को जाननेवाले धर्मकथा करते हैं । जो यथार्थ तरह से सूत्र और अर्थ की व्याख्या श्रोता को वक्ता कहे तो कहनेवाले को एकान्ते निर्जरा हो और सूननेवाले का निर्जरा हो या न हो ।

सूत्र – ६२०

हे गौतम ! इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि–जावज्जीव अभिग्रह सहित चार काल स्वाध्याय करना । और फिर हे गौतम ! जो भिक्षु विधिवत् सुप्रशस्त ज्ञान पढ़कर फिर ज्ञानमद करे वो ज्ञानकुशील कहलाता है । उस तरह ज्ञान कुशील की कईं तरह प्रज्ञापना की जाती है ।

सूत्र – ६२१-६२२

हे भगवंत ! दर्शनकुशील कितने प्रकार के होते हैं ? हे गौतम ! दर्शनकुशील दो प्रकार के हैं–एक आगम से और दूसरा नोआगम से ।

उसमें आगम से सम्यग्दर्शन में शक करे, अन्य मत की अभिलाषा करे, साधु-साध्वी के मैले वस्त्र और

शरीर देखकर दुगंछा करे । घृणा करे, धर्म करने का फल मिलेगा या नहीं, सम्यक्त्व आदि गुणवंत की तारीफ न करना । धर्म की श्रद्धा चली जाना । साधुपन छोड़ने की अभिलाषावाले को स्थिर न करना । साधर्मिक का वात्सल्य न करना या शक्ति होते हुए शासनप्रभाव भक्ति न करना । इस आठ स्थानक से दर्शनकुशील समझना ।

नोआगम से दर्शनकुशील के कोई प्रकार के समजे, वो इस प्रकार–चक्षकुशील, घ्राणकुशील, श्रवणकुशील, जिह्वाकुशील, शरीरकुशील, वे चक्षुकुशील तीन तरह के हैं । वो इस प्रकार–प्रशस्तचक्षुकुशील, प्रशस्ताप्रशस्त चक्षुकुशील और अप्रशस्त चक्षुकुशील । उसमें जो किसी प्रशस्त ऐसे ऋषभादिक तीर्थंकर भगवंत के बिंब के आगे दृष्टि स्थिर करके रहा हो वो प्रशस्त चक्षुकुशील और प्रशस्ताप्रशस्त चक्षुकुशील उसे कहते हैं कि हृदय और नेत्र से तीर्थंकर भगवंत की प्रतिमा के दर्शन करते-करते दूसरी किसी भी चीज की ओर नजर करे वो प्रशस्ताप्रशस्त कुशील कहलाता है । और फिर प्रशस्ताप्रशस्त द्रव्य जैसे कि कौआ, बग, ढंक, तित्तर, मोर आदि या मनोहर लावण्य युक्त खूबसूरत स्त्री को देखकर उसकी ओर नेत्र से दृष्टि करे वो भी प्रशस्ताप्रशस्त चक्षुकुशील कहलाता है। और फिर अप्रशस्त चक्षुकुशील-तैंसठ तरह से अप्रशस्त सरागवाली चक्षु कहा है ।

हे भगवंत ! वो अप्रशस्त तैसठ चक्षुभेद कौन से हैं ? हे गौतम ! वो इस प्रकार – १. सभ्रुकटाक्षा, २. तारा, ३. मंदा, ४. मदलसा, ५. वंका, ६. विवंका, ७. कुशीला, ८. अर्ध इक्षिता, ९. काण-इक्षिता, १०. भ्रामिता, ११. उद्-भ्रामिता, १२. चलिता, १३. वलिता, १४. चलवलिता, १५. अर्धमिलिता, १६. मिलिमिला, १७. मनुष्य, १८. पशवा, १९. यक्षिका, २०. सरीसृपा, २१. अशान्ता, २२. अप्रशान्ता, २३. अस्थिरा, २४. बहुविकाशा, २५. सानुराग, २६. रागउदारणी, २७. रोगजा-राजगा, २८. आमय-उत्पादानी-मद उत्पादनी, २९. मदनी, ३०. मोहणी, ३१. व्या-मोहनी, ३२. भय-उदीरणी, ३३. भयजननी, ३४. भयंकरी, ३५. हृदयभेदनी, ३६. संशय-अपहरणी, ३७. चित्त-चमत्कार उत्पादनी, ३८. निबद्धा, ३९. अनिबद्धा, ४०. गता, ४१. आगता, ४२. गता गता, ४३. गतागत-पत्यागता, ४४. निर्धारनी, ४५. अभिलषणी, ४६. अरतिकरा, ४७. रतिकरा, ४८. दीना, ४९. दयामणी, ५०. शुरा, ५१. धीरा, ५२. हणणी, ५३. मारणी, ५४. तापणी, ५५. संतापणी, ५६. क्रुद्धा-प्रक्रुद्धा, ५७. धीरा महाधीरा, ५८. चंड़ी, ५९. रुद्रा-सुरुद्रा, ६०. हाहाभूतशरणा, ६१. रूक्षा, ६२. स्निग्धा, ६३. रूक्ष स्निग्धा (इस प्रकार कुशील दृष्टि यहाँ बताई है, उस नाम के अनुसार अर्थ-व्याख्या समज लेना ।)

स्त्रीयों के चरण अँगूठे, उसका अग्र हिस्सा, नाखून, हाथ जो अच्छी तरह से आलेखेल हो, लाल रंग या अलता से गात्र और नाखून रंगे हो, मणि कि किरणें इकट्ठे होने के कारण से जैसे मेघधनुष न हो वैसे नाखून को, कछुए की तरह उन्नत चरण को अच्छी तरह से गोल रखे गए गूढ़ जानुओ, जंघाओ, विशाल कटी तट के स्थान को, जघन, नीतम्ब, नाभि, स्तन, गुप्तस्थान के पास की जगह, कंठ, भुजालिष्ट, अधर, होठ, दंतपंक्ति, कान, नासिका, नेत्रयुगल, भ्रमर, मुख, ललाट, मस्तक, केश, सेथी, टेढ़ी केशलट, पीठ, तिलक, कुंड़ल, गाल, अंजन श्याम वर्णवाले तमाल के पत्र समान केश कलाप, कंदोरा, नुपूर, बाहु रक्षक मणि रत्न जड़ित कंगन, कंकण, मुद्रिका आदि मनोहर और झिलमिल रहे आभूषण, रेशमी पतले वस्त्र, सुतराउ वेश आदि से सजावट करके कामाग्नि को प्रदीप्त करनेवाली नारकी और तिर्यंचगति में अनन्त दुःख दिलानेवाली इन स्त्रीओं के अंग उपांग आभूषण आदि को अभिलाषा पूर्वक सराग नजर से देखना वो चक्षुकुशील कहलाता है ।

सूत्र – ६२३-६२४

घ्राणकुशील उसे कहते हैं जो अच्छी सुगंध लेने के लिए जाए और दुर्गंध आती हो तो नाक टेढ़ा करे, दुगंछा करे और श्रवणकुशील दो तरह के समझना, प्रशस्त और अप्रशस्त । उसमें जो भिक्षु अप्रशस्त कामराग को उत्पन्न करनेवाले, उद्दीपन करनेवाले, उज्जवल करनेवाले, गंधर्वनाटक, धनुर्वेद, हस्त शिक्षा, कामशास्त्र, रतिशास्त्र आदि श्रवण कर के उस की आलोचना न करे यावत् उसका प्रायश्चित्त आचरण न करे उसे अप्रशस्त श्रवण कुशील मानना

और जिह्वाकुशील कईं तरह के मानना, वो इस प्रकार–कटु, तीखे, स्वादहीन, मधुर, खट्टे, खारा रस का

स्वाद करना । न देखे, अनसूने, आलोक, परलोक, उभयलोक, विरुद्ध दोषवाले, मकार-जकार मम्मो चच्चो ऐसे अपशब्द उच्चारना । अपयश मिले ऐसे झूठे आरोप लगाना, अछत्ता कलंक चढ़ाना, शास्त्र जाने बिना धर्मदेशना करने की प्रवृत्ति करना । उसे जिह्वाकुशील मानना । हे भगवंत ! भाषा बोलने से भी क्या कुशीलपन हो जाता है ? हे गौतम ! हा, ऐसा होता है । हे भगवंत ! तो क्या धर्मदेशना न करे ? हे गौतम ! सावद्य-निरवद्य वचन के बीच जो फर्क नहीं जानता, उसे बोलने का भी अधिकार नहीं, तो फिर धर्मदेशना करने का तो अवकाश ही कहाँ है ?

सूत्र – ६२५

और शरीर कुशील दो तरह के जानना, कुशील चेष्टा और विभूषा-कुशील, उसमें जो भिक्षु इस कृमि समूह के आवास समान, पंछी और श्वान के लिए भोजन समान । सड़ना, गिरना, नष्ट होना, ऐसे स्वभाववाला, अशुचि, अशाश्वत, असार ऐसे शरीर को हंमेशा आहारादिक से पोषे और वैसे शरीर की चेष्टा करे, लेकिन सेंकड़ों भव में दुर्लभ ऐसे ज्ञान-दर्शन आदि सहित ऐसे शरीर से अति घोर वीर उग्र कष्टदायक घोर तप संयम के अनुष्ठान न आचरे उसे चेष्टा कुशील कहते हैं ।

और फीर जो विभूषा कुशील है वो भी कईं तरह के–वो इस प्रकार–तेल से शरीर को अभ्यंगन करना, मालिश करना, लेप लगाना, अंग पुरुषन करवाना, स्नान-विलेपन करना, मैल घिसकर दूर करना, तंबोक खाना, धूप देना, खुशबूदार चीज से शरीर को वस्त्र वासित करना, दाँत घीसना, मुलायम करना, चहेरा सुशोभित बनाना, पुष्प या उसकी माला पहनना, बाल बनाना, जूते-पावड़ी इस्तमाल करना, अभिमान से गति करना, बोलना, हँसना, बैठना, उठना, गिरना, खींचना, शरीर की विभूषा दिखे उस प्रकार वस्त्रों को पहनना, दंड़ ग्रहण करना, ये सब को शरीर विभूषा कुशील साधु समझना । यह कुशील साधु प्रवचन की उड़ाहणा-उपघात करवानेवाले, जिसका भावि परिणाम दुष्ट है वैसे अशुभ लक्षणवाला, न देखने लायक महापाप कर्म करनेवाला विभूषा-कुशील साधु होता है । इस प्रकार दर्शनकुशील प्रकरण पूरा हुआ ।

सूत्र – ६२६

अब मूलगुण और उत्तरगुण में चारित्रकुशल अनेक प्रकार के जानना । उसमें पाँच महाव्रत और रात्रि भोजन छठ्ठा-ऐसे मूलगुण बताए हैं । वो छ के लिए जो प्रमाद करे, उसमें प्राणातिपात यानि पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति रूप एकेन्द्रियजीव, दो, तीन, चार, पाँच इन्द्रियवाले जीव का संघट्टा करना, परिताप उत्पन्न करना, किलामणा करनी, उपद्रव करना ।

मृषावाद दो तरह का–सूक्ष्म और बादर उसमें ''पयलाउल्लामरुए''

किसी साधु दिन में सोते हुए-झोके खा रहा था, दूसरे साधु ने उसे कहा कि–दिन में क्यों सो रहे हो ? उसने उत्तर दिया कि मैं सो नहीं रहा । फीर से नींद आने लगी । झोका खाने लगा तब साधु ने कहा कि मत सो । तब प्रत्युत्तर मिला कि मैं सो नहीं रहा । तो यह सूक्ष्म मृषावाद ।

किसी साधु बारिस होने के बावजूद भी बाहर नीकले । दूसरे साधु ने कहा कि बारिस में क्यों जा रहे हो ? उसने कहा कि नहीं, मैं बारिस में नहीं जा रहा । ऐसा कहकर जाने लगा । यहाँ वासृधातु शब्द करना हो इसलिए शब्द होता हो तब मैं नहीं जाता । ऐसे छल के शब्द इस्तमाल करे वो सूक्ष्म मृषावाद ।

किसी साधु ने भोजन के वक्त कहा कि–भोजन कर लो । उसने उत्तर दिया कि मुजे पच्चक्खाण है–ऐसा कहकर तुरन्त खाने लगा, दूसरे साधु ने पूछा कि अभी-अभी पच्चक्खाण किया है, ऐसा कहता था और फीर भोजन करता है । तब उसने कहा कि क्या मैंने प्राणातिपात आदि पाँच महाव्रत की विरती का प्रत्याख्यान नहीं किया ? इस तरह से यह छलने के प्रयोग से सूक्ष्म मृषावाद लगे । सूक्ष्म मृषावाद और कन्यालीक आदि बादर मृषावाद कहलाता है ।

दिए बिना ग्रहण करना उसके दो भेद सूक्ष्म और बादर उसके तृण, पथ्थर, रक्षाकुंड़ी आदि ग्रहण करना वो

सूक्ष्म अदत्तादान । घड़े बिना और घड़ा हुआ सुवर्ण आदि ग्रहण करने समान बादर अदत्तादान समझना ।

और मैथुन दीव्य और औदारिक वो भी मन, वचन, काया, करण, करावण, अनुमोदन ऐसे भेद करते हुए अठ्ठारह भेदवाला जानना । और फीर हस्तकर्म सचित्त अचित्त भेदवाला या ब्रह्मचर्य की नवगुप्ति की विराधना करने द्वारा करके, शरीर वस्त्रादिक की विभूषा करने समान ।

मांड़ली में परिग्रह दो तरह से । सूक्ष्म और बादर । वस्त्रपात्र का ममत्वभाव से रक्षा करना । दूसरों को इस्तमाल करने के लिए न देना वो सूक्ष्म परिग्रह, हिरण्यादिक ग्रहण करना या धारण कर रखना । मालिकी रखनी, वो बादर परिग्रह । रात्रि-भोजन दिन में ग्रहण करना और रात को खाना, दिन में ग्रहण करके दूसरे दिन भोजन करना । रात को लेकर दिन में खाना । रात को लेकर रात में खाना । इत्यादि भेदयुक्त ।

सूत्र – ६२७-६३२

उत्तर गुण के लिए पिंड़ की जो विशुद्धि, समिति, भावना, दो तरह के तप, प्रतिमा धारण करना, अभिग्रह ग्रहण करना आदि उत्तर गुण जानना । उसमें पिंड़ विशुद्धि-सोलह उद्गम दोष, सोलह उत्पादना दोष, दस एषणा के दोष और संयोजनादिक पाँच दोष, उसमें उद्गम दोष इस प्रकार जानना । १. आधाकर्म, २. औद्देशिक, ३. पूति कर्म, ४. मिश्रजात, ५. स्थापना, ६. प्राभृतिका, ७. प्रादुष्करण, ८. क्रीत, ९. प्रामित्यक, १०. परावर्तित, ११. अभ्याहत, १२. उद्भिन्न, १३. मालोपहृत, १४. आछिद्य, १५. अतिसृष्ट, १६. अध्यव पूरक-ऐसे पिंड़ तैयार करने में सोलह दोष लगते हैं ।

सूत्र – ६३३-६३५

उत्पादन के सोलह दोष इस प्रकार बताए हैं । १. धात्रीदोष, २. दुतिदोष, ३. निमित्तदोष, ४. आजीवकदोष, ५. वनीपकदोष, ६. चिकित्सादोष, ७. क्रोधदोष, ८. मानदोष, ९. मायादोष, १०. लोभदोष, यह इस दोष और
११. पहले या बाद में होनेवाले परिचय का दोष, १२. विद्यादोष, १३. मंत्रदोष, १४. चूर्णदोष, १५. योगदोष और १६. मूलकर्मदोष-ऐसे उत्पादन के सोलह दोष लगते हैं ।

सूत्र – ६३६-६३७

एषणा के दस दोष इस प्रकार जानना – १. शक्ति, २. म्रक्षित, ३. निक्षिप्त, ४. पिहित, ५. संहृत, ६. दायक, ७. उन्मिश्र, ८. अपरिणत, ९. लिप्त, १०. छर्दित ।

सूत्र – ६३८

उसमें उद्गमदोष गृहस्थ से उत्पन्न होते हैं । उत्पादन के दोष साधु से उत्पन्न होनेवाले और एषणा दोष गृहस्थ और साधु दोनों से उत्पन्न होनेवाले हैं ।

मांड़ली के पाँच दोष इस प्रकार जानना–१. संयोजना, २. प्रमाण से अधिक खाना, ३. अंगार, ४. घुम, ५. कारण अभाव-ऐसे ग्रासेसणा के पाँच दोष होते हैं । उसमें संयोजना दोष दो तरह के–१. उपकरण सम्बन्धी और २. भोजन पानी सम्बन्धी । और फीर उन दोनों के भी अभ्यन्तर और बाह्य । ऐसे दो भेद हैं –

सूत्र – ६३९

प्रमाण-बत्तीस कवल प्रमाण । आहार कुक्षिपूरक माना जाता है । खाने में अच्छे लगनेवाले भोजनादिक राग से खाए तो उसमें ईंगाल दोष और अनचाहे में द्वेष हो तो धूम्र दोष लगता है ।

सूत्र – ६४०-६४३

कारणाभाव दोष

–क्षुधा वेदना सह न सके, कमझोर शरीर से वैयावच्च न हो सके, आँख की रोशनी कम हो जाए और इरियासमिति में क्षति हो । संयम पालन के लिए और जीव बचाने के लिए, धर्मध्यान करने के लिए, इस कारण के

लिए भोजन करना कल्पे । भूख समान कोई दर्द नहीं इसलिए उसकी शान्ति के लिए भोजन करना । भूख से कमजोर देहवाला वैयावच्च करने में समर्थ नहीं हो सकता । इसलिए भोजन करना । इरियासमिति अच्छी तरह से न खोजे, प्रेक्षादिक संयम न सँभाल सके, स्वाध्यायादिक करने की शक्ति कम हो जाए, बल कम होने लगे, धर्मध्यान न कर सके इसलिए साधु को इस कारण से भोजन करना चाहिए । इस प्रकार पिंड़ विशुद्धि जानना ।

सूत्र – ६४४

अब पाँच समिति इस प्रकार बताई है–ईयासमिति, भाषासमिति, एषणासमिति, आदानभंड़-मत्तनिक्षेपणा समिति और उच्चार-पासवण खेल सिंधाणजल्लपारिष्ठापनिका समिति और तीन गुप्ति, मन गुप्ति, वचन गुप्ति और कायगुप्ति और बारह भावना वो इस प्रकार–१. अनित्यभावना, २. अशरण भावना, ३. एकत्वभावना, ४. अन्यत्व-भावना, ५. अशुचिभावना, ६. विचित्र संसारभावना, ७. कर्म के आश्रव की भावना, ८. संवर भावना, ९. निर्जरा-भावना, १०. लोक विस्तार भावना, ११. तीर्थंकर ने अच्छी तरह से बताया हुआ और अच्छी तरह से प्ररूपा हुआ उत्तम धर्म की सोच समान भावना, १२. करोड़ जन्मान्तर में दुर्लभ ऐसी बोधि दुर्लभ भावना ।

यह आदि स्थानान्तर में जो प्रमाद करे उसे चारित्र कुशील जानना ।

सूत्र – ६४५

तप कुशील दो तरह के एक बाह्य तप कुशील और दूसरा अभ्यन्तर तप कुशील । उसमें जो कोई मुनि विचित्र इस तरह का दीर्घकाल का उपवासादिक तप, उणोदरिका, वृत्तिसंक्षेप, रसपरित्याग, काय-क्लेश, अंगोपांग सिकुड़े रखने समान संलीनता । इस छ तरह के बाह्य तप में शक्ति होने के बाद भी जो उद्यम नहीं करते, वो बाह्य तप कुशील कहलाते हैं ।

सूत्र – ६४६-६४७

बार तरह की भिक्षु प्रतिमा वो इस प्रकार–एक मासिकी, दो मासिकी, तीन मासिकी, चार मासिकी, पाँच मासिकी, छ मासिकी, सात मासिकी ऐसे सात प्रतिमा । आठवी सात अहोरात्र की, नौवी सात अहोरात्र की, दशवीं सात अहोरात्र की, ग्यारहवीं एक अहोरात्र की, बारहवीं एक रात्रि की ऐसी बारह भिक्षु प्रतिमा है ।

सूत्र – ६४८

अभिग्रह-द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से । उसमें द्रव्य अभिग्रह में ऊंबाले ऊंड़द आदि द्रव्य ग्रहण करना, क्षेत्र से गाँव में या गाँव के बाहर ग्रहण करना, काल से प्रथम आदि पोरिसी में ग्रहण करना, भाव से क्रोधादिक कषायवाला जो मुजे दे वो ग्रहण करूँगा इस प्रकार उत्तरगुण संक्षेप से समास किए । ऐसा करने से चारित्राचार भी संक्षेप से पूर्ण हुआ । तपाचार भी संक्षेप से उसमें आ गया । और फीर वीर्याचार उसे कहते हैं कि जो इस पाँच आचार में न्यून आचार का सेवन न करे ।

इन पाँच आचार में जो किसी अतिचार में जान-बूझकर अजयणा से, दर्प से, प्रमाद से, कल्प से, अजयणा से या जयणा से जिस मुताबिक पाप का सेवन किया हो उस मुताबिक गुरु के पास आलोचना करके मार्ग जाननेवाले गीतार्थ गुरु जो प्रायश्चित्त दे उसे अच्छी तरह आचरण करे । इस तरह अठ्ठारह हजार शील के अंग में जिस पद में प्रमाद सेवन किया हो, उसे उस प्रमाद दोष से कुशील समझना चाहिए ।

सूत्र – ६४९

उस प्रकार ओसन्ना के लिए जानना । वो यहाँ हम नहीं लिखते । ज्ञानादिक विषयक पासत्था, स्वच्छंद, उत्सूत्रमार्गगामी, शबल को यहाँ ग्रंथ विस्तार के भय से नहीं लिखते । यहाँ कहीं कहीं जो-जो दूसरी वाचना हो वो अच्छी तरह से शास्त्र का सार जिसने जाना है, वैसे गीतार्थवर्य को रिश्ता जोड़ना चाहिए । क्योंकि पहले आदर्श प्रतमें काफी ग्रन्थ विप्रनष्ट हुआ है । वहाँ जो-जो सम्बन्ध होनेके योग्य जुड़ने की जरुर हुई वहाँ कईं श्रुतधर ने इकट्ठे होकर अंग-उपांग सहित बारह अंग रूप श्रुत समुद्र में से बाकी अंग, उपांग, श्रुतस्कंध, अध्ययन, उद्देशामें से उचित

सम्बन्ध इकट्ठे करके जो किसी सम्बन्ध रखते थे, वो यहाँ लिखे हैं, लेकिन खुद कहा हुआ कुछ भी रखा नहीं है ।

सूत्र – ६५०-६५२

अति विशाल ऐसे यह पाँच पाप जिसे वर्जन नहीं किया, वो हे गौतम ! जिस तरह सुमति नाम के श्रावक ने कुशील आदि के साथ संलाप आदि पाप करके भव में भ्रमण किया वैसे वो भी भ्रमण करेंगे ।

भवस्थिति कायस्थितिवाले संसार से घोर दुःख में पड़े बोधि, अहिंसा आदि लक्षणयुक्त दश तरह का धर्म नहीं पा सकता । ऋषि के आश्रम में और भिल्ल के घर में रहे तोते की तरह संसर्ग के गुणदोष से एक मीठा बोलना शीख गया और दूसरा संसर्ग दोष से अपशब्द बोलना शीख गया । हे गौतम ! जिस तरह दोनों तोते को संसर्ग दोष का नतीजा मिला उसी तरह आत्महित की ईच्छावाले को इस पंछी की हकीकत जानकर सर्व उपाय से कुशील का संसर्ग सर्वथा त्याग करना चाहिए ।

अध्ययन-३ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

अध्ययन-४-कुशील संसर्ग

सूत्र - ६५४

हे भगवंत ! उस सुमति ने कुशील संसर्ग किस तरह किया था कि जिससे इस तरह के अति भयानक दुःख परीणामवाला भवस्थिति और कायस्थिति युक्त पार रहित भवसागर में दुःख संतप्त बेचारा वो भ्रमण करेगा । सर्वज्ञ-भगवंत के उपदेशीत अहिंसा लक्षणवाले क्षमा आदि दश प्रकार के धर्म को और सम्यक्त्व न पाएगा, हे गौतम ! वो बात यह है –

इस भारतवर्ष में मगध नाम का देश है । उसमें कुशस्थल नाम का नगर था, उसमें पुण्य-पाप समजनेवाले, जीव-अजीवादिक चीज का यथार्थ रूप जिन्होंने अच्छी तरह से पहचाना है, ऐसी विशाल ऋद्धिवाले सुमति और नागिल नाम के दो सगे भाई श्रावक धर्म का पालन करते थे । किसी समय अंतराय कर्म के उदय से उनका वैभव विलय हुआ । लेकिन सत्त्व और पराक्रम तो पहले से ही था । अचलित सत्त्व पराक्रमवाले, अत्यन्त परलोक भीरु, छल-कपट और झूठ से विरमित, भगवंत के बताए चार तरह के दान आदि धर्म का सेवन करते थे । श्रावक धर्म का पालन करते, किसी की बुराई न करते, नम्रता रखते, सरल स्वभाववाले, गुणरूप रत्न के निवास-स्थान समान, क्षमा के सागर, सज्जन की मैत्री रखनेवाले, कईं दिन तक जिसके गुणरत्न का वर्णन किया जाए वैसे गुण के भंड़ार समान श्रावक थे ।

उनको अशुभ कर्म का उदय हुआ और उनकी संपत्ति अब अष्टाह्निका महामहोत्सव आदि ईष्टदेवता की इच्छा अनुसार पूजा, सत्कार, साधर्मिक का सम्मान, बंधुवर्ग के व्यवहार आदि करने के लिए असमर्थ हुई ।

सूत्र – ६५५-६६०

अब किसी समय घर में महमान आते तो उसका सत्कार नहीं किया जा सकता । स्नेहीवर्ग के मनोरथ पूरे नहीं कर सकते, अपने मित्र, स्वजन, परिवार-जन, बन्धु, स्त्री, पुत्र, भतीजे, रिश्ते भूलकर दूर हट गए तब विषाद पानेवाले उस श्रावकों ने हे गौतम ! सोचा की, ''पुरुष के पास वैभव होता है तो वो लोग उसकी आज्ञा स्वीकारते हैं। जल रहित मेघ को बीजली भी दूर से त्याग करती है ।'' ऐसा सोचकर पहले सुमति ने नागिलभाई को कहा कि, मान, धन रहित बदनसीब पुरुष को ऐसे देश में चले जाए कि जहाँ अपने रिश्तेदार या आवास न मिले और दूसरे ने भी कहा कि, ''जिसके पास धन न हो, उसके पास लोग आते हैं, जिसके पास अर्थ हो उसके कईं बँधु होते हैं ।''

सूत्र - ६६१

इस प्रकार वो आपस में एकमत हुए और वैसे होकर हे गौतम ! उन्होंने देशत्याग करने का तय किया कि- हम किसी अनजान देश में चले जाए । वहाँ जाने के बाद भी दीर्घकाल से चिन्तवन किए मनोरथ पूर्ण न हो तो और देव अनुकूल हो तो दीक्षा अंगीकार करे । उसके बाद कुशस्थल नगर का त्याग करके विदेश गमन करने का तय किया ।

सूत्र - ६६२

अब देशान्तर की और प्रयाण करनेवाले ऐसे उन दोनों ने रास्ते में पाँच साधु और छट्ठा एक श्रमणोपासक– उन्हें दिखे । तब नागिल ने सुमति को कहा कि अरे सुमति ! भद्रमुख, देखो, इन साधुओं का साथ कैसा है तो हम भी इस साधु के समुदाय के साथ जाए । उसने कहा कि भले, वैसा करे । केवल एक मुकाम पर जाने के लिए प्रयाण करते थे तब नागिल ने सुमति को कहा कि हे भद्रमुख ! हरिवंश के तिलकभूत मरकत रत्न के समान श्याम कान्ति वाले अच्छी तरह से नाम ग्रहण करने के योग्य बाईसवे तीर्थंकर श्री अरिष्ठनेमि भगवंत के चरण कमल में सुख से बैठा था, तब इस प्रकार सुनकर अवधारण किया था कि इस तरह के अगणार रूप को धारण करनेवाले कुशील माने जाते हैं । और जो कुशील होते हैं उन्हें दृष्टि से भी देखना न कल्पे, इसलिए उनके साथ गमन संसर्ग थोड़ा सा भी करना न कल्पे, इसलिए उन्हें जाने दो, हम किसी छोटे साथे के साथ जाएंगे । क्योंकि तीर्थंकर के

वचन का उल्लंघन नहीं करना चाहिए । देव और असुरवाले इस जगत को भी तीर्थंकर की वाणी उल्लंघन करने के लायक नहीं है । दूसरी बात यह कि–जब तक उनके साथ चले तब तक उनके दर्शन की बात तो जाने दो लेकिन आलाप-संलाप आदि भी नियमा करना पड़े; तो क्या हम तीर्थंकर की वाणी का उल्लंघन करके गमन करे ? उस प्रकार सोचकर सुमति का हाथ पकड़कर नागिल साधु के साथ में से नीकल गया ।

सूत्र – ६६३-६६९

नेत्र से देखकर, शुद्ध और निर्जीव भूमि पर बैठा । उसके बाद सुमति ने कहा कि ज्ञान देनेवाले गुरु, माँ-बाप, बुज़ुर्ग और बहन या जहाँ प्रत्युत्तर न दे सकते हो वहाँ हे देव ! मैं क्या कहूँ ? उनकी आज्ञा के अनुसार तहत्ति ऐसा करके अपनानी ही हो । यह मेरे लिए इष्ट है या अनिष्ट यह सोचने का अवकाश ही नहीं है । लेकिन आज तो इस विषय में आर्य को इसका उत्तर देना ही पड़ेगा और वो भी कठिन, कर्कश, अनिष्ट, दुष्ट, निष्ठुर शब्द से ही । या तो बड़े भाई के आगे यह मेरी ज़बान कैसे उठती है कि जिसकी गोद में मैं वस्त्र बिना अशुचि से खरड़ित अंगवाला कईं बार खेला है । या तो वो खुद ऐसा अनचाहा बोलने से क्यों नहीं शरमाते ? कि यह कुशील है । और आँख से उन साधुओं को देखना भी नहीं चाहिए । जितने में खुद ने सोचा हुआ अभी तक नहीं बोलता । उतनें में इंगित आकार जानने में कुशल बड़े भाई नागिल उसका हृदयगत भाव पहचान गए कि यह सुमति फिझूल में झूठे कषायवाला है । तो कौन-सा प्रत्युत्तर देना ऐसे सोचने लगा ।

सूत्र – ६७०-६७६

बिना कारण बिना अवसर पर क्रोधायमान हुए भले अभी वैसे ही रहे, अभी शायद उसे समज न दी जाए तो भी वो बहुमान्य नहीं करेंगे । तो क्या अभी उसे समजाए कि हाल कालक्षेप करे ? काल पसार होगा तो उसे कषाय शान्त होंगे और फिर मेरी बताई सारी बातों का स्वीकार होगा । या तो हाल का यह अवसर ऐसा है कि उसके संशय को दूर कर सकूँगा । जब तक विशेष समज न दी जाए तब तक इस भद्रिक भाई की समज में कुछ न आएगा । ऐसा सोचकर नागिल छोटे भाई सुमति को कहने लगा–कि हे बन्धु ! मैं तुजे दोष नहीं दे रहा, मैं इसमें अपना ही दोष मानता हूँ कि–हित बुद्धि से सगे भाई को भी कहा जाए तो वो कोपायमान होता है । आँठ कर्म की जाल में फँसे जीव को ही यहाँ दोष है कि चार दोष में से बाहर नीकालनेवाले हितोपदेश उन्हें असर नहीं करता सज्जड़ राग, द्वेष, कदाग्रह, अज्ञान, मिथ्यात्व के दोष से खाए हुए मनवाले आत्मा को हितोपदेश समान अमृत भी कालकूट विष लगता है ।

सूत्र - ६७७

ऐसा सुनकर सुमति ने कहा–तुम ही सत्यवादी हो और इस प्रकार बोल सकते हो । लेकिन साधु के अवर्णवाद बोलना जरा भी उचित नहीं है । वो महानुभाव के दूसरे व्यवहार पर नजर क्यों नहीं करते ? छट्ठ, अट्ठम, चार-पाँच उपवास मासक्षमण आदि तप करके आहार ग्रहण करनेवाले ग्रीष्म काल में आतापना लेते है । और फिर विरासन उत्कटुकासन अलग-अलग तरह के अभिग्रह धारण करना, कष्टवाले तप करना इत्यादी धर्मानुष्ठान आचरण करके माँस और लहूँ जिन्होंने सूखा दिए हैं, इस तरह के गुणयुक्त महानुभाव साधुओं को तुम जैसे महान् भाषा समितिवाले बड़े श्रावक होकर यह साधु कुशीलवाले ऐसा संकल्प करना युक्त नहीं है ।

उसके बाद नागिल ने कहा कि–हे वत्स ! यह उसके धर्मअनुष्ठान से तु संतोष मत कर । जैसे कि आज में–अविश्वास से लूँट चूका हूँ, बिना इच्छा से आए हुए पराधीनता से भुगतने के दुःख से, अकाम निर्जरा से भी कर्म का क्षय होता है तो फिर बालतप से कर्मक्षय क्यों न हो ? इन सबको बालतपस्वी मानना । क्या तुम्हें उतका उत्सूत्रमार्ग का अल्प सेवनपन नहीं दिखता ? और फिर हे वत्स सुमति ! मुजे यह साधु पर मन से भी सूक्ष्म प्रद्वेष नहीं कि जिससे मैं उनका दोष ग्रहण करूँ । लेकिन तीर्थंकर भगवंत के पास से उस प्रकार अवधारण किया है कि कुशील को मत देखना ।

तब सुमति ने उसे कहा कि, जिस तरह का तू निर्बुद्धि है उसी तरह के वो तीर्थंकर होंगे जिसने तुम्हें इस प्रकार कहा । उसके बाद इस प्रकार बोलनेवाले सुमति के मुख रूपी छिद्र को अपने हस्त से बंध करके नागिल ने उसे कहा कि – जगत के महान गुरु, तीर्थंकर भगवंत की आशातना मत कर । मुझे तुम्हें जो कहना है वो कहो, मैं तुम्हें कोई प्रत्युत्तर नहीं दूँगा । तब सुमति ने उसे कहा कि इस जगत में यह साधु भी यदि कुशील हो तो फिर सुशील साधु कहीं नहीं मिलेंगे । तब नागिल ने कहा कि–सुमति ! यहाँ जगत में अलंघनीय वचनयुक्त भगवंत का वचन मान सहित ग्रहण करना चाहिए । आस्तिक आत्मा को उसके वचन में किसी दिन विसंवाद नहीं होता और फिर बाल तपस्वी की चेष्टा में आदर मत करना क्योंकि जिनेन्द्र वचन अनुसार यकीनन वो कुशील दिखते हैं ।

उनकी प्रव्रज्या के लिए गंध भी नहीं दिखती । क्योंकि यदि इस साधु के पास दूसरी मुँहपोतिका दिखती है। इसलिए यह साधु ज्यादा परिग्रहता दोष से कुशील है । भगवंत ने हस्त में ज्यादा परिग्रह धारण करने के लिए साधु को आज्ञा नहीं दी । इसलिए हे वत्स ! हीन सत्त्ववाला भी मन से ऐसा अध्यवसाय न करे कि शायद मेरी यह मुँहपोतिका फटकर-तूटकर नष्ट होगी तो दूसरी कहाँ से मिलेगी ? वो हीनसत्त्व ऐसा नहीं सोचता कि–अधिक और अनुपयोग से उपधि धारण करने से मेरे परिग्रह व्रत का भंग होगा या क्या संयम में रंगी आत्मा संयम में जरुरी धर्म के उपकरण समान मुँहपत्ति जैसे साधन में सिदाय सही ? जरुर वैसी आत्मा उसमें विषाद न पाए । सचमुच वैसी आत्मा खुद को मैं हीन सत्त्ववाला हूँ, ऐसा प्रगट करता है, उन्मार्ग के आचरण की प्रशंसा करता है । और प्रवचन मलिन करता है । यह सामान्य हकीकत तुम नहीं देख सकते ?

इस साधु ने कल बिना वस्त्र की स्त्री के शरीर को रागपूर्वक देखकर उसका चिन्तवन करके उसकी आलोचना प्रतिक्रमण नहीं किए, वो तुम्हें मालूम नहीं क्या ? इस साधु के शरीर पर फोल्ले हुए हैं, उस कारण से विस्मय पानेवाले मुखवाला नहीं देखता । अभी-अभी उसे लोच करने के लिए अपने हाथ से ही बिना दिए भस्म ग्रहण की, तुने भी प्रत्यक्ष वैसा करते हुए उन्हें देखा है । कल संघाटक को सूर्योदय होने से पहले ऐसा कहा कि–उठो और चलो, हम विहार करें । सूर्योदय हो गया है । वो खुद तुने नहीं सुना ? इसमें जो बड़ा नवदिक्षित है वो बिना उपयोग के सो गया और बिजली अग्निकाय से स्पर्श किया उसे तुने देखा था । उसने संथारा ग्रहण न किया तब सुबह को हरे घास के पहनने के कपड़े के छोर से संघट्टा किया, तब बाहर खूले में पानी का परिभोग किया । बीज-वनस्पतिकाय पर पग चाँपकर चलता था । अविधि से खारी ज़मीन पर चलकर मधुर ज़मीन पर संक्रमण किया । और रास्ते में चलने के बाद साधु ने सौ कदम चलने के बाद इरियावहियं प्रतिक्रमना चाहिए ।

उस तरह चलना चाहिए, उस तरह चेष्टा करनी चाहिए, उस तरह बोलना चाहिए, उस तरह शयन करना चाहिए कि जिससे छ काय के जीव को सूक्ष्म या बादर, पर्याप्ता या अपर्याप्ता, आते-जाते सर्व जीव प्राणभूत या सत्त्व को संघट्ट परितापन किलामणा या उपद्रव न हो । इन साधुओं में बताए इन सर्व में से एक भी यहाँ नहीं दिखता । और फिर मुहपतिका पड़िलेहण करते हुए उस साधु को मैंने प्रेरणा दी कि वायुकाय का संघट्टा हो वैसे फडफडाट आवाज़ करते हुए पड़िलेहणा करते हो । पड़िलेहण करने का कारण याद करवाया । जिसका इस तरह के उपयोगवाला जयणायुक्त संयम है । और वो तुम काफी पालन करते हो तो बिना संदेह की बात है कि उसमें तुम ऐसा उपयोग रखते हो ? इस समय तुमने मुजे रोका कि मौन रखो, साधुओं को हमें कुछ कहना न कल्पे । यह हकीकत क्या तूं भूल गया ? इसने सम्यक् स्थानक में से एक भी स्थानक सम्यक् तरह से रक्षण नहीं किया, जिसमें इस तरह का प्रमाद हो उसे साधु किस तरह कह सकते हैं ? जिनमें इस तरह का निर्ध्वंसपन हो वो साधु नहीं है । हे भद्रमुख ! देख, श्वान समान निर्दय छ काय जीव का यह विराधन करनेवाला हो, तो उसके लिए मुझे क्यों अनुराग हो? या तो श्वान भी अच्छा है कि जिसे अति सूक्ष्म भी नियम व्रत का भंग नहीं होता |

इस नियम का भंग करनेवाला होने से किसके साथ उसकी तुलना कर सके ? इसलिए हे वत्स ! सुमति ! इस तरह के कृत्रिम आचरण से साधु नहीं बन सकते । उनको तीर्थंकर के वचन का स्मरण करनेवाला कौन वंदन करे ? दूसरी बात यह भी ध्यान में रखनी है कि उनके संसर्ग से हमें भी चरण-करण में शिथिलता आ जाए कि

जिससे बार-बार घोर भव-परम्परा में हमारा भ्रमण हो ।

तब सुमति ने कहा कि वो कुशील हो या सुशील हो तो भी मैं तो उनके पास ही प्रव्रज्या अपनाऊंगा और फिर तुम कहते हो वही धर्म है लेकिन उसे करने के लिए आज कौन समर्थ है ? इसलिए मेरा हाथ छोड़ दो, मुजे उनके साथ जाना है वो दूर चले जाएंगे तो फिर मिलन होना मुश्किल है । तब नागिल ने कहा कि–हे भद्रमुख ! उनके साथ जाने में तुम्हारा कल्याण नहीं, मैं तुम्हें हित का वचन देता हूँ । यह हालात होने से ज्यादा गुणकारक हो उसका ही सेवन कर । मैं कहीं तुम्हें बलात्कार से नहीं पकड़ रहा ।

अब बहोत समय कईं उपाय करके निवारण करने के बावजूद भी न रूका और मंद भाग्यशाली उस सुमति ने हे गौतम ! प्रव्रज्या अंगीकार करके उस के बाद समय आने पर विहार करते करते पाँच महिने के बाद महा भयानक बारह साल का अकाल पड़ा, तब वो साधु उस काल के दोष से, दोष की आलोचना प्रतिक्रमण किए बिना मौत पाकर भूत, यक्ष, राक्षस, पिशाच आदि व्यंतर देव के वाहनरूप से पेदा हुए । बाद में म्लेच्छ जाति में माँसाहार करनेवाले क्रूर आचरण करनेवाले हुए । क्रूर परीणामवाले होने से साँतवी नारकी में पैदा हुए वहाँ से नीकलकर तीसरी चौबीसी में सम्यक्त्व पाएंगे । उसके बाद सम्यक्त्व प्राप्त हुए भव से तीसरे भव में चार लोग सिद्धि पाएंगे, लेकिन जो सर्वथा बड़े पाँचवे थे वो एक सिद्धि नहीं पाएंगे । क्योंकि वो एकान्त मिथ्यादृष्टि और अभव्य हैं । हे भगवंत ! जो सुमति है वो भव्य या अभव्य ? हे गौतम, वो भव्य हैं । हे भगवंत ! वो भव्य हैं तो मरके कहाँ उत्पन्न होंगे ? हे गौतम ! परमधार्मिक असुरों में उत्पन्न होगा ।

सूत्र - ६७८

हे भगवन् ! भव्य जीव परमाधार्मिक असुर में पैदा होते हैं क्या ? हे गौतम ! जो किसी सज्जड़ राग, द्वेष, मोह और मिथ्यात्व के उदय से अच्छी तरह से कहने के बावजूद भी उत्तम हितोपदेश की अवगणना करते हैं । बारह तरह के अंग और श्रुतज्ञान को अप्रमाण करते हैं और शास्त्र के सद्भाव और भेद को नहीं जानते, अनाचार की प्रशंसा करते हैं, उसकी प्रभावना करते हैं, जिस प्रकार सुमति ने उन साधुओं की प्रशंसा और प्रभावना की–वो कुशील साधु नहीं है, यदि यह साधु भी कुशील है तो इस जगत में कोई सुशील साधु नहीं । उन साधुओं के साथ जाकर मुजे प्रव्रज्या अंगीकार करने का तय है और जिस तरह के तुम निर्बुद्धि हो उस तरह के वो तीर्थंकर भी होंगे उस प्रकार बोलने से हे गौतम ! वो काफी बड़ा तपस्वी होने के बाद भी परमाधामी असुरों में उत्पन्न होंगे ।

हे भगवंत ! परमाधार्मिक देव वहाँ से मरके कहाँ उत्पन्न होते हैं ? हे भगवंत ! परमाधार्मिक असुर देवता में से बाहर नीकलकर उस सुमति का जीव कहाँ जाएगा ? हे गौतम ! मंदभागी ऐसे उसने अनाचार की प्रशंसा और अभ्युदय करने के लिए पूरे सन्मार्ग के नाश को अनुमोदन किया, उस कर्म के दोष से अनन्त संसार उपार्जन किया। उसके कितने भव की उत्पत्ति कहे ? कईं पुद्गल परावर्तन काल तक चार गति समान संसार में से जिसका नीकलने का कोइ चारा नहीं तो भी संक्षेप से कुछ भव कहता हूँ वो सुन –

इसी जम्बूद्वीप को चोतरफ धीरे हुए वर्तुलाकार लवण समुद्र हैं । उसमें जो जगह पर सिंधु महानदी प्रवेश करती है उस प्रदेश के दक्षिण दिशा में ५५ योजन प्रमाणवाली वेदीका के बीच में साड़े बारह योजन प्रमाण हाथी के कुंभस्थल के आकार समान प्रति संतापदायक नाम की एक जगह है । वो जगह लवण समुद्र के जल से साड़े सात योजन जितना ऊंचा है । वहाँ अति घोर गाढ़ अंधेरेवाली घड़ी संस्थान के आकाशवाली छियालीस गुफा है । उस गुफा में दो-दो के बीच जलचारी मानव रहते हैं । जो वज्रऋषभनारच संघयणवाले, महाबल और पराक्रमवाले साड़े बारह वेंत प्रमाण कायावाले, संख्याता साल के, आयुवाले, जिन्हे मद्य, माँस प्रिय है । वैसे स्वभाव से स्त्री लोलुप, अति बूरे वर्णवाले, सुकुमार, अनिष्ट, कठिन, पथरीले देहवाले, चंड़ाल के नेता समान भयानक मुखवाले, सींह की तरह घोर नजरवाले, यमराजा समान भयानक, किसीको पीठ न दिखानेवाले, बीजली की तरह निष्ठुर प्रहार करनेवाले, अभिमान से मांधाता होनेवाले ऐसे वो अंड़गोलिक मानव होते हैं ।

उनके शरीर में जो अंतरंग गोलिका होती है उसे ग्रहण करके चमरी गाय के श्वेत पूँछ के बाल से वो

गोलिकाएं बुनती हैं । उसके बाद वो बाँधी हुई गोलिकाओं को दोनों कान के साथ बाँधकर अनमोल उत्तम जातिवंत रत्न ग्रहण करने की इच्छावाले समुद्र के भीतर प्रवेश करते हैं । समुद्र में रहे जल, हाथी, भेंस, गोधा, मगरमच्छ, बड़े मत्स्य, तंतु सुसुमार आदि दुष्ट श्वापद उसे कोई उपद्रव नहीं करते । उस गोलिका के प्रभाव से भयभीत हुए बिना सर्व समुद्रजल में भ्रमण करके इच्छा के अनुसार उत्तम तरह के जातिवंत रत्न का संग्रह करके अखंड़ शरीरवाला बाहर नीकल आता है । उन्हें जो अंतरंग गोलिका होती है उनके सम्बन्ध से वो बेचारे हे गौतम ! अनुपम अति घोर भयानक दुःख पूर्वभव में उपार्जित अति रौद्र कर्म के आधीन बने वो अहेसास करते हैं ।

हे भगवंत ! किस कारण से ? हे गौतम ! वो जिन्दा हो तब तक उनकी गोलिका ग्रहण करने के लिए कौन समर्थ हो सके ? जब उनके देह में से गोलिका ग्रहण करते हैं तब कईं तरह के बड़े साहस करके नियंत्रणा करनी पड़ती है । बख्तर पहन के, तलवार, भाला, चक्र, हथियार सजाए ऐसे कईं शूरवीर पुरुष बुद्धि के प्रयोग से उनको जिन्दा ही पकड़ते हैं । जब उन्हें पकड़ते हैं तब जिस तरह के शारीरिक-मानसिक दुःख होते हैं वो सब नारक के दुःख के साथ तुलना की जाती है ।

हे भगवंत ! वो अंतरंग गोलिका कौन ग्रहण करते हैं ? हे गौतम ! उस लवण समुद्र में रत्नद्वीप नाम का अंतर्द्वीप है, प्रतिसंतापदायक स्थल से वो द्वीप ३१०० योजन दूर है वो रत्नद्वीप मानव उसे ग्रहण करते हैं । हे भगवंत ! किस प्रयोग से ग्रहण करते हैं ? क्षेत्र के स्वभाव से सिद्ध होनेवाले पूर्व पुरुषों की परम्परा अनुसार प्राप्त किए विधान से उन्हें पकड़ते हैं । हे भगवंत ! उनका पूर्व पुरुष ने सिद्ध किया हुवा विधि किस तरह का होता है ? हे गौतम ! उस रत्नद्वीप में २०, १९, १८, १०, ८, ७ धनुष्य प्रमाणवाले चक्की के आकार के श्रेष्ठ वज्रशिला के संपुट होते हैं । उसे अलग करके वो रत्नद्वीपवासी मानव पूर्व के पुरुष से सिद्ध क्षेत्र-स्वभाव से सिद्ध-तैयार किए गए योग से कईं मत्स्य-मधु इकट्ठे करके अति रसवाले करके उसके बाद उसमें पकाए हुए माँस के टुकड़े और उत्तम मद्य, मदीरा आदि चीजें ड़ालते हैं । ऐसे उनके खाने के लायक उचित मिश्रण तैयार करके विशाल लम्बे बड़े पेड़ के काष्ट से बनाए यान में बैठकर स्वादिष्ट पुराने मदीरा, माँस, मत्स्य, मध आदि से परिपूर्ण कईं तुंबड़ा ग्रहण करके प्रति संतापदायक नाम की जगह के पास आते हैं । जब गुफावासी अंड़गोलिक मानव को एक तुंबड़ा देकर और अभ्यर्थना-बिनती का प्रयोग करके लायक उस काष्ठयान को अति वेगवान् चलाकर रत्नद्वीप की और दौड़ जाते हैं।

अंड़गोलिक मानव उस तुंब में से मध, माँस आदि मिश्रण-भक्षण करते हैं और अति-स्वादिष्ट लगने से फिर पाने के लिए उनके पीछे अलग-अलग होकर दौड़ते हैं । तब गौतम ! जितने में अभी काफी नजदीक न आए उतने में सुन्दर स्वादवाले मधु और खुशबूवाले द्रव्य से संस्कारित पुराणा मदिरा का एक तुंब रास्ते में रखकर फिर से भी अति त्वरित गति से रत्नद्वीप की और चले जाते हैं । और फिर अंड़गोलिक मानव वो अति स्वादिष्ट, मधु और खुशबूवाले द्रव्य से संस्कारित तैयार किए पुराने मदिरा माँस आदि पाने के लिए अतिदक्षता से उसकी पीठ पीछे दौड़ते हैं । उन्हें देने के लिए मधु से भरे एक तुंब को रखते हैं । उस प्रकार हे गौतम ! मद्य, मदिरा के लोलुपी बने उनको तुंब के मद्य, मदिरा आदि से फाँसते तब तक ले जात हैं कि जहाँ पहले बताए चक्की आकार के वज्र की शीला के संपुट हैं । जितने में खाद्य की लालच से वो जितनी भूमि तक आते हैं उतने में ही जो पास के वज्रशीला के संपुट का अग्र हिस्सा जो बगासा खाते पुरुष के आकार समान छूटा पहले से ही रखा होता है । वहीं मद्य, मदिरा से भरे बाकी रहे कईं तुंब उनकी आँख के सामने हो वहाँ रखकर अपनी-अपनी जगह में चले जाते हैं । वो मद्य-मदिरा खाने के लोलुपी जितने में चक्की के पास पहुँचे और उस पर प्रवेश करे उस समय हे गौतम ! जो पहले पकाए हुए माँस के टुकड़े वहाँ रखे हों और जो मद्य-मदिरा से भरे भोजन वहाँ रखे हो और फिर मध से लीपित शीला के पड़ हो उसे देखकर उन्हें काफी संतोष, आनन्द, बड़ी तुष्टि, महाप्रमोद होता है ।

इस प्रकार मद्य-मदिरा पकाए हुए माँस खाते-खाते साँत-आँठ, पंद्रह दिन जितने में पसार होते हैं, उतने में रत्नद्वीप निवासी लोग इकट्ठे होकर कुछ लोगों ने बख्तर, कुछ लोगों ने आयुध धारण किए हों, वो उस वज्रशीला को चीपककर साँत-आँठ पंक्ति में घैर लेते हैं । और फिर रत्नद्वीपवासी दूसरे कुछ मनुष्य उस शिला पड़ को घंटाल

पर इकट्ठा हो वैसे रखते हैं । जब दो पड़ इकट्ठे किए जाए तब हे गौतम ! एक चपटी बजाकर उसके तीसरे हिस्से के काल में उसके भीतर फँसे मनुष्यमें से एक या दो बाहर नीकल जाते हैं । उसके बाद वो रत्नद्वीपवासी पेड़ सहित मंदिर और महल वहाँ बनाते हैं । उसी समय उसके हाड़ का-शरीर का विनाशकाल पैदा होता है, उस प्रकार हे गौतम ! उस वज्रशीला के चक्की के दो पड़ के बीच पीसकर पीसते-पीसते जब तक सारी हड्डियाँ दबकर अच्छी तरह न पीसे और चूर्ण न हो तब तक वो अंड़गोलिक के प्राण अलग नहीं होते । उसके अस्थि वज्ररत्न की तरह मुश्किल से पीस सके वैसे मजबूत होते हैं । वहाँ उसको वज्रशीला के दो पड़ के बीच रखकर काले बैल जुड़कर काफी कोशीश के बाद रेंट की तरह गोल भमाड़ाते हैं ।

एक साल तक पीसने की कोशीश चालू होने के बाद भी उसकी मजबूत अस्थि के टुकड़े नहीं होते । उस समय उस तरह के अति घोर दारुण शारीरिक और मानसिक महादुःख के दर्द का कठिन अहेसास करने के बाद भी प्राण भी चले गए होने के बाद भी जिसके अस्थिभंग नहीं होते, दो हिस्से नहीं होते, पीसते नहीं, घिसते नहीं लेकिन जो किसी संधिस्थान जोड़ों का और बँधन का स्थान है वो सब अलग होकर जर्जरीभूत होते हैं । उसके बाद दूसरी सामान्य पत्थर की चक्की की तरह फिसलनेवाले आँटे की तरह कुछ ऊंगली आदि अग्रावयव के अस्थिखंड़ देखकर वो रत्नद्वीपवासी लोग आनन्द पाकर शीला के पड़ ऊपर उठाकर उसकी अंड़गोलिका ग्रहण करके उसमें जो शुष्क-नीरस हिस्सा हो वो कईं धनसमूह ग्रहण करके बेच डालते हैं । इस प्रकार से वो रत्नद्वीप निवासी मानव अंतरंड़ गोलिका ग्रहण करते हैं ।

हे भगवंत ! वो बेचारे उस तरह का अति घोर दारूण तीक्ष्ण दुःस्सह दुःखसमूह को सहते हुए आहार-जल बिना एक साल तक किस तरह प्राण धारण करते होंगे ? हे गौतम ! खुद के किए कर्म के अनुभव से इसका विशेष अधिकार जानने की इच्छावाले को प्रश्न व्याकरण सूत्र के वृद्ध विवरण से जान लेना ।

सूत्र - ६७९

हे भगवंत ! वहाँ मरकर उस सुमति का जीव कहाँ उत्पन्न होगा ? हे गौतम ! वहीं वो प्रतिसंताप दायक नाम की जगह में, उसी क्रम से साँत भव तक अंड़गोलिक मानव रूप से पैदा होगा । उसके बाद दुष्ट श्वान के भव, उसके बाद काले श्वान में, उसके बाद वाणव्यंतर में, उसके बाद नीम की वनस्पति में, उसके बाद स्त्री-रत्न के रूपमें, उसके बाद छट्ठी नारकी में, फिर कुष्ठि मानव, फिर वाण-व्यंतर, फिर महाकायवाला युथाधिपति हाथी, वहाँ मैथुन में अति आसक्ति होने से अनन्तकाय वनस्पति में वहाँ अनन्त काल जन्म-मरण के दुःख सहकर मानव बनेगा। फिर मानवपन में महानिमिति को फिर साँतवी में, फिर स्वयं-भूरमण समुद्र में बड़ा मत्स्य बनेगा । कईं जीव का मत्स्याहार करके मरकर साँतवी में जाएगा ।

उसके बाद आँखला, फिर मानव में, फिर पेड़ पर कोकिला, फिर जलो, फिर महा मत्स्य, फिर तंदुल मत्स्य, फिर साँतवी में, फिर गधा, फिर कुत्ता, फिर कृमिजीव, फिर मेढ़क, फिर अग्निकाय में, फिर कुंथु, फिर मधुमक्खी, फिर चीड़िया, फिर उधइ, फिर वनस्पति में ऐसे अनन्तकाल करके मानव में स्त्रीरत्न, फिर छट्ठी में, फिर ऊंट, फिर वेषामंकित नाम के पट्टण में उपाध्याय के गृह के पास नीम की वनस्पति में, फिर मानव में छोटी कुब्जा स्त्री, फिर नामर्द, फिर दुःखी मानव, फिर भीख माँगनेवाले, फिर पृथ्वीकाय आदि काय में भवदशा और कायदशा हरएक में भुगतनेवाले, फिर मानव, फिर अज्ञान तप करनेवाले, फिर वाणव्यंतर, फिर पुरोहित, फिर साँतवी में तंदुल मत्स्य, फिर साँतवी नारकी में, फिर बैल, फिर मानव में महासम्यग्दृष्टि अविरति चक्रवर्ती, फिर प्रथम नारकी में, फिर श्रीमंत शेठ, फिर श्रमण अणगारपन में, वहाँ से अनुत्तर देवलोक में, फिर चक्रवर्ती महासंघयणवाले होकर कामभोग से वैराग पाकर तीर्थंकर भगवंत कथित संपूर्ण संयम को साधकर उसका निर्वाण होगा ।

सूत्र - ६८०

और फिर जो भिक्षु या भिक्षुणी परपाखंड़ी की प्रशंसा करे या निह्नवों की प्रशंसा करे, जिन्हें अनुकूल हो

वैसे वचन बोले, निह्नवों के मंदिर-मकान में प्रवेश करे, जो निह्नवों के ग्रंथ, शास्त्र, पद या अक्षर को प्ररूपे, जो निह्नवों के प्ररूपित कायक्लेश आदि तप करे, संयम करे । उस के ज्ञान का अभ्यास करे, विशेष तरह से पहचाने, श्रवण करे, पांडित्य करे, उसकी तरफदारी करके, विद्वान की पर्षदा में उस की या उस के शास्त्र की प्रशंसा करे वो भी सुमति की तरह परमाधार्मिक असुर में उत्पन्न होता है ।

सूत्र - ६८१

हे भगवंत ! उस सुमति के जीव ने उस समय श्रमणपन अंगीकार किया तो भी इस तरह के नारक तिर्यंच मानव असुरादिवाली गति में अलग-अलग भव में इतने काल तक संसार भ्रमण क्यों करना पड़ा ? हे गौतम ! जो आगम को बाधा पहुँचे उस तरह के लिंग वेश आदि ग्रहण किए जाए तो वो केवल दिखावा ही है और काफी लम्बे संसार का कारण समान वो माने जाते हैं । उसकी कितनी लम्बी हद है, वो बता नहीं सकते, उसी कारण से (आगम –अनुसार) संयम दुष्कर माना गया है ।

तो दूसरी बात यह ध्यान में रखे कि श्रमणपन के लिए संयम स्थान में कुशील संसर्गी का त्याग करना है । यदि उसका त्याग न करे तो संयम ही टिकता नहीं । तो सुन्दर मतिवाले साधु को वही आचरण करना, उसकी ही प्रशंसा करना, उसकी ही प्रभावना-उन्नति करना, उसकी ही सलाह देना, वो ही आचरण करना कि जो भगवंत ने बताए आगम-शास्त्र में हो, इस प्रकार सूत्र का अतिक्रमण करके जिस तरह सुमति लम्बे संसार में भटका उसी तरह दूसरे भी सुन्दर, विदुर, सुदर्शन, शेखर, निलभद्र, सभोमेय, खग्गधारी, स्तेनश्रमण, दुर्दान्तदेव, रक्षित मुनि आदि हो चूके उसकी कितनी गिनती बताए ? इसलिए इस विषय का परमार्थ जानकर कुशील संसर्ग सर्वथा वर्जन करे ।

सूत्र - ६८२

हे भगवंत ! क्या वो पाँच साधु को कुशील रूप में नागिल श्रावक ने बताया वो अपनी स्वेच्छा से या आगम शास्त्र के उपाय से ? हे गौतम ! बेचारे श्रावक को वैसा कहने का कौन-सा सामर्थ्य होगा ? जो किसी अपनी स्वच्छन्द मति से महानुभाव सुसाधु के अवर्णवाद बोले वो श्रावक जब हरिवंश के कुलतिलक मरकत रत्न समान श्याम कान्तिवाले बाईसवें धर्म तीर्थंकर अरिष्टनेमि नाम के थे । उनके पास वंदन के निमित्त से गए थे । वो हकीकत आचारांग सूत्र में अनन्तगमपर्यव के जानकार केवली भगवंत ने प्ररूपी थी । उसे यथार्थ रूप से हृदय में अवधारण किया था । वहाँ छत्तीस आचार की प्रज्ञापना की थी । उन आचार में से जो किसी साधु या साध्वी किसी भी आचार का उल्लंघन करे वो गृहस्थ के साथ तुलना करने के उचित माना जाता है । यदि आगम के खिलाफ व्यवहार करे, आचरण करे या प्ररूपे तो वो अनन्त अंसारी होता है ।

इसलिए हे गौतम ! जिसने एकमुखवस्त्रिका का अधिक परिग्रह किया तो उसके पाँचवें महाव्रत का भंग हुआ । जिसने स्त्री के अंगोपांग देखे, चिंतवन किया फिर उसने आलोचना की नहीं तो उसने ब्रह्मचर्य की गुप्ति की विराधना की उस विराधना से जैसे एक हिस्से में जले हुए वस्त्र को जला हुआ वस्त्र कहते हैं उसी तरह यहाँ चौथे महाव्रत का भंग कहते हैं, जिसने अपने हाथों से भस्म उठा ली, बिना दिए ग्रहण किया उसके तीसरे महाव्रत का भंग हुआ । जिसने सूर्योदय होने से पहले सूर्योदय हुआ ऐसा कहा उसके दूसरे महाव्रत का भंग हुआ । जिस साधु ने सजीव जल से आँख साफ की और अविधि से मार्ग की भूमि में से दूसरी भूमि में संक्रमण किया । बीजकाय को चांपे वस्त्र की किनार से वनस्पतिकाय का संघट्टा हुआ । बीजली का स्पर्श हुआ । अजयणा से फड़फड़ आवाज करने से मुहपति से वायुकाय की विराधना की । उन सबके पहले महाव्रत का भंग हुआ । उनके भंग से पाँच महाव्रतों का भंग हुआ । इसलिए हे गौतम ! आगम युक्ति से इन साधुओं को कुशील कहा है । क्योंकि उत्तरगुण का भंग भी इष्ट नहीं है तो फिर मूलगुण का भंग तो सर्वथा अनिष्ट होता है ।

हे भगवंत ! तो क्या इस दृष्टांत को सोचकर ही महाव्रत ग्रहण करें ? हे गौतम ! यह बात यथार्थ है, हे

भगवंत ! किस कारण से ? हे गौतम ! सुश्रमण या सुश्रावक यह दो भेद ही बताए हैं । तीसरा भेद नहीं बताया । या तो भगवंत ने शास्त्र में जिस प्रकार उपदेश दिया है, उस प्रकार सुश्रमणपन पालन करो । उसी प्रकार सुश्रावकपन यथार्थ तरह से पालन करना चाहिए । लेकिन श्रमण को अपने श्रमणपन में अतिचार नहीं लगने देने चाहिए या श्रावक को श्रावकपन के व्रत में अतिचार नहीं लगाने चाहिए । निरतिचार व्रत प्रशंसा के लायक है । वैसे निरतिचार व्रत का पालन करना चाहिए । जो इस श्रमणधर्म सर्वविरति स्वरूप होने से निर्विकार छूटछाट बिना सुविचार और पूर्ण सोचयुक्त है । जिस प्रकार महाव्रत का पालन शास्त्रमें बताया है । उस प्रकार यथार्थ पालन करना चाहिए । जब कि श्रावक के लिए तो हजार तरह के विधान हैं । वो व्रत पालन करे और उसमें अतिचार न लगे उस प्रकार श्रावक अणुव्रत ग्रहण करे ।

सूत्र - ६८३

हे भगवंत ! वो नागिल श्रावक कहाँ पैदा हुआ ? हे गौतम ! वो सिद्धिगति में गया । हे भगवंत ! किस तरह? हे गौतम ! महानुभाव नागिल ने उस कुशील साधु के पास से अलग होकर कईं श्रावक और पेड़ से व्याप्त घोर भयानक अटवी में सर्व पाप कलिमल के कलंक रहित चरम हितकारी सेंकड़ों भव में भी अति दुर्लभ तीर्थंकर भगवंत का वचन है ऐसा मानकर निर्जीव प्रदेश में जिसमें शरीर की परवा टाप-टीप न करना पड़े वैसा निरतिचार पादपोपगमन अनशन अंगीकार किया । अब किसी समय उसी प्रदेश में विचरते अरिष्टनेमि तीर्थंकर भगवान अचलित सत्त्ववाले इस भव्यात्मा के पास उसके अहेसान के लिए आ पहुँचे । उत्तमार्थ समाधिमरण साधनेवाले अतिशयवाली देशना कही । जलवाले मेघ के समान गम्भीर और देव दुंदुभि समान सुन्दर स्वरवाली तीर्थंकर की वाणी श्रवण करते करते शुभ अध्यावसाय करने से अपूर्वकरण से क्षपक श्रेणी में आरूढ़ हुआ । अंतकृत् केवली बना । उसने सिद्धि पाई । इसलिए हे गौतम ! कुशील संसर्गी का त्याग करनेवाले को इतना अंतर होता है ।

अध्ययन-४-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

इस चौथे अध्ययन में सिद्धांतज्ञाता कुछ आलापक की सम्यग् श्रद्धा नहीं करते । वो अश्रद्धा करते रहते हैं इसलिए हम भी सम्यग् श्रद्धा नहीं करते ऐसा आचार्य हरिभद्रसूरिजी का कथन है । पूरा चौथा अध्ययन अकेला ही नहीं, दूसरे अध्ययन भी इस चौथे अध्ययन के कुछ परिमित आलापक का अश्रद्धान् करते हैं ऐसा भाव समजो । क्योंकि स्थान, समवाय, जीवाभिगम, प्रज्ञापना आदि सूत्र में वो कोई भी हकीकत बताई नहीं है कि प्रति संतापक जगह है । उसकी गुफा में वास करनेवाले मानव है । उसमें परमाधार्मिक असुर का साँत-आँठ बार उत्पात् होता है, उन्हें दारूण वज्रशीला की चक्की पटल के बीच पीसना पड़ता है । अति पिले जाने से दर्द का अहेसास होने के बाद भी एक साल तक उनके प्राण नष्ट नहीं होते । (लेकिन) वृद्धवाद ऐसे है कि यह आर्षसूत्र है, उसमें विकृति का प्रवेश नहीं हुआ । इस श्रुतस्कन्ध में काफी अर्थपूर्णता है । सुंदर अतिशय सहित सातिशय युक्त कहे यह गणधर के वचन है । ऐसा होने से सहज भी यहाँ शंका मत करना ।

अध्ययन-५-नवनीतसार

सूत्र – ६८४-६८५

इस तरह कुशील संसर्गी का सर्वोपाय से त्याग करके उन्मार्ग प्रवेश किए हुए गच्छ में जो वेश से आजीविका करनेवाले हो और वैसे गच्छ में वास करे उसे निर्विघ्नपन के कारण, क्लेश रहित श्रमणपन, संयम, तप और सुन्दर भाव की प्राप्ति नही होती, इतना ही नहीं ले, मोक्षभी उस से काफी दूर रहता है ।

सूत्र – ६८६-६९१

हे गौतम ! ऐसे प्राणी है कि जो उन्मार्ग में प्रवेश किए हुए गच्छ में वास करके भव की परम्परा में भ्रमणा करते हैं । अर्ध पहोर, एक पहोर, एक दिन, एक पक्ष, एक मास या एक साल तक सन्मार्ग में प्रवेश किए हुए गच्छ में गुरुकुल वास में रहनेवाले साधु हे गौतम ! मौज-मजे करनेवाला या आलसी, निरुत्साही बुद्धि या मन से रहता हो लेकिन महानुभाव ऐसे उत्तम साधु के पक्ष को देखकर मंद उत्साहवाले साधु भी सर्व पराक्रम करने के लिए उत्सुक होते हैं । और फिर साक्षी, शंका, भय, शर्म उसका वीर्य उल्लसीत होता है । हे गौतम ! जीव की वीर्य शक्ति उल्लसीत होते जन्मान्तर में किये कर्मों को हृदय के भाव से जला देते हैं । इसलिए निपुणता से सन्मार्ग में प्रवेश किए गच्छ को जाँचकर उसमें संयत मुनि को जीवन पर्यन्त वास करना ।

सूत्र – ६९२

हे भगवंत ! ऐसे कौन-से गच्छ हैं, जिसमें वास कर सकते हैं ? हे गौतम ! जिसमें शत्रु और मित्र पक्ष की तरफ समान भाव वर्तता हो । अति सुनिर्मल विशुद्ध अंतःकरणवाले साधु हो, आशातना करने में भय रखनेवाले हो, खुद के और दूसरों के आत्मा का अहेसान करने में उद्यमवाले हों, छ जीव निकाय के जीव पर अति वात्सल्य करनेवाले हो, सर्व प्रमाद के आलम्बन से विप्रमुक्त हो, अति अप्रमादी विशेष तरह से पहचाने हुए, शास्त्र के सद्भाव वाले, रौद्र और आर्तध्यान रहित, सर्वथा बल, वीर्य, पुरुषकार, पराक्रम को न गोपनेवाले एकान्त में साध्वी के पात्रा, कपड़े आदि वहोरे हों, उसका भोग न करनेवाले, एकान्त धर्म का अंतराय करने में भय रखनेवाले, तत्त्व की ओर रूचि करनेवाले, पराक्रम करने की रूचिवाले, एकान्त में स्त्रीकथा, भोजनकथा, चोरकथा, राजकथा, देशकथा, आचार से परिभ्रष्ट होनेवाले की कथा न करनेवाला, उसी तरह विचित्र अप्रमेय और सर्व तरह की विकथा करने से विप्रमुक्त एकान्त में यथाशक्ति १८ हजार शीलांग का आराधक समग्र रात-दिन तत्परता से शास्त्र के अनुसार मोक्षमार्ग की प्ररूपणा करनेवाले, कईं गुण से युक्त मार्ग में रहे, अस्खलित, अखंड़ित शीलगुण के धारक होने से महायशवाले, महास्तववाले, महानुभाव ज्ञान, दर्शन और चारित्र के गुणयुक्त ऐसे गुण को धारण करनेवाले आचार्य होते हैं । वैसे गुणवाले आचार्य की निश्रा में ज्ञानादिक मोक्षमार्ग की आराधना करनेवाले को गच्छ कहा है ।

सूत्र – ६९३

हे भगवंत ! क्या उसमें रहकर इस गुरुवास का सेवन होता है ? हे गौतम ! हा, किसी साधु यकीनन उसमें रहकर गुरुकुल वास सेवन करते हैं और कुछ ऐसे भी होते हैं कि जो वैसे गच्छ में वास न करे । हे भगवंत ! ऐसा किस कारण से कहा जाता है कि–कोई वास करे और कोई वास नहीं करते ? हे गौतम ! एक आत्मा आज्ञा का आराधक है और एक आज्ञा का विराधक है । जो गुरु की आज्ञा में रहा है वो–सम्यग्दर्शन-ज्ञान चारित्र का आराधक है, और वो हे गौतम ! अत्यंत ज्ञानी कईं प्रकार के मोक्षमार्ग में उद्यम करनेवाले हैं, जो गुरु की आज्ञा के अनुसार नहीं चलता, आज्ञा की विराधना करता है, वे अनन्तानुबन्धी क्रोध, माया, मान, लोभवाले चार कषाय युक्त होते है, वे राग, द्वेष, मोह और मिथ्यात्व के पूँजवाले होते हैं, जो गहरे राग, द्वेष, मोह मिथ्यात्व के ढ़गवाले होते हैं वो उपमा न दे सके वैसे घोर संसार सागर में भटकते रहते हैं । अनुत्तर घोर संसार सागर में भटकनेवाले की फिर से जन्म, जरा, मोत फिर जन्म, बुढ़ापा, मौत पाकर कईं भव का परावर्तन करना पड़ता है । और फिर उसमें ८४ लाख योनि में बार-बार पैदा होना पड़ता है ।

और फिर बार-बार अति दुःसह घोर गहरे काले अंधकारवाले, लहूँ से लथपथ चरबी, परु, उल्टी, पित्त, कफ के कीचड़वाले, बदबूवाले, अशुचि बहनेवाले गर्भ की चारों ओर लीपटनेवाले ओर फेफड़े, विष्ठा, पेशाब आदि से भरे अनिष्ट, उद्वेग करनेवाले, अति घोर, चंड़, रौद्र दुःख से भयानक ऐसे गर्भ की परम्परा में प्रवेश करना वाकई में दुःख है, क्लेश है, वो रोग और आतंक है, वो शोक, संताप और उद्वेग करनेवाले हैं, वो अशान्ति करवानेवाले हैं, अशान्ति करवानेवाले होने से यथास्थिति इष्ट मनोरथ की अप्राप्ति करवानेवाले हैं, यथास्थिति इष्ट मनोरथ की प्राप्ति न होने से उसको पाँच तरह के अंतराय कर्म का उदय होता है ।

जहाँ पाँच तरह के कर्म का उदय होता है, उसमें सर्व दुःख के अग्रभूत ऐसा प्रथम दारिद्र्य पैदा होता है, जिसे दारिद्र होता है वहाँ अपयश, झूठे आरोप लगाना, अपकीर्ति कलंक आदि कईं दुःखों के ढ़ग इकट्ठे होते हैं । उस तरह के दुःख का योग हो तब सकल लोगों से शर्मींदा करनेवाले, निंदनीय, गर्हणीय, अवर्णवाद करवानेवाले, दुर्गंछा करवानेवाले, सर्व से पराभव पाए वैसे जीवितवाला होता है तब सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र आदि गुण उनसे काफी दूर होते हैं, और मानव जन्म व्यर्थ जाता है या धर्म से सर्वथा हार जाता है ।

तो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र आदि गुण से अति विप्रमुक्त होते हैं यानि वो आश्रव द्वार को रोक नहीं सकता । वो आश्रव द्वार को बन्द नहीं कर सकता, वो काफी बड़े पाप कर्म का निवासभूत बनता है । जो काफी बड़े पापकर्म का निवासभूत बनता है, वो कर्म का बँधक बनता है । बँधक हुआ यानि कैदखाने में कैदी की तरह पराधीन होता है, यानि सर्व अकल्याण अमंगल की झाल में फँसता है, यहाँ से छूटना काफी मुश्किल होता है क्योंकि कईं कर्कश गहरे बद्ध स्पृष्ट निकाचित सेवन कर्म की ग्रंथि तोड़ नहीं सकते, उस कारण से एकेन्द्रियपन में बेइन्द्रियपन में, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, पंचेन्द्रियपन में, नारकी, तिर्यंच कुमानवपन आदि में कईं तरह के शारीरिक, मानसिक दुःख भुगतने पड़ते हैं । अशाता भुगतनी पड़ती है । इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि– ऐसी कुछ आत्माएं होती है कि जो वैसे गीतार्थ के गच्छ में रहकर गुरुकुलवास सेवन करते हैं और कुछ सेवन नहीं करते ।

सूत्र – ६९४

हे भगवंत! मिथ्यात्व के आचरणवाले कुछ गच्छ होते है क्या ? हे गौतम ! जो कोई अज्ञानी, विराधना करने वाले गच्छ हो वो यकीनन मिथ्यात्व के आचरण युक्त होते हैं । हे भगवंत ! ऐसी कौन-सी आज्ञा है कि जिसमें रहा गच्छ आराधक होता है ? हे गौतम ! संख्यातीत स्थानांतर से गच्छ की आज्ञा बताई है । जिसमें आराधक होता है ।

सूत्र – ६९५

हे भगवंत ! क्या उस संख्यातीत गच्छ मर्यादा के स्थानांतर में ऐसा कोई स्थानान्तर है कि जो उत्सर्ग या अपवाद से किसी भी तरह से प्रमाद दोष से बार-बार मर्यादा या आज्ञा का उल्लंघन करे तो भी आराधक हो ? गौतम ! यकीनन वो आराधक नहीं है । हे भगवंत ! किस कारण से आप ऐसा कहते हो ? हे गौतम ! तीर्थंकर उस तीर्थ को करनेवाले हैं और फिर तीर्थ चार वर्णवाला उस श्रमणसंघ गच्छ में प्रतिष्ठित होते हैं । गच्छ में भी सम्यग्-दर्शन, ज्ञान, चारित्र, प्रतिष्ठित हुए हैं । यह सम्यग्दर्शन ज्ञान, चारित्र परम पूज्य में भी ज्यादा शरण करने के लायक हैं । ज्यादा सेवन करने में भी यह तीन विशेष सेवन के लिए उचित हैं । ऐसे शरण्य, पूज्य, सेव्य, दर्शनादिक को जो किसी गच्छ में किसी भी स्थान में किसी भी तरह विराधना करे वो गच्छ सम्यग्मार्ग को नष्ट करनेवाला, उन्मार्ग की देशना करनेवाला होता है । जिस गच्छ में सम्यग्मार्ग का विनाश होता है, उन्मार्ग का देशक होता है यकीनन आज्ञा का विराधक होता है । इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहते हैं कि, संख्यातीत गच्छमें मर्यादा का स्थानांतर होता है। गच्छ में जो कोई किसी भी एक या ज्यादा स्थान मर्यादा आज्ञा का उल्लंघन करे वो एकान्त आज्ञा का विराधक है ।

सूत्र – ६९६

हे भगवंत ! कितने काल तक गच्छ की मर्यादा है ? कितने काल तक गच्छ मर्यादा का उल्लंघन न करे ? हे गौतम ! जब तक महायशवाले महासत्त्ववाले महानुभाव दुप्पसहअणगार होंगे तब तक गच्छ की मर्यादा सँभालने के लिए आज्ञा की है । यानि कि पाँचवे आरे के अन्त तक गच्छ मर्यादा का उल्लंघन न करना ।

सूत्र – ६९७

हे भगवंत ! किन निशानीओं से मर्यादा का उल्लंघन बताया है ? काफी आशातना बताई है और गच्छ ने उन्मार्ग में प्रवेश किया है–ऐसा माने ? हे गौतम ! जो बार-बार गच्छ बदलता हो, एक गच्छ में स्थिर न रहता हो, अपनी मरजी के अनुसार व्यवहार करनेवाला, खाट-पाटला, पटरी आदि ममता रखनेवाला, अप्रासुक बाह्य प्राणवाले सचित्त जल का भोग करनेवाले, मांड़ली के पाँच दोष से अनजान और उन दोष का सेवन करनेवाले, सर्व आवश्यक क्रियाओं के काल का उल्लंघन करनेवाले, आवश्यक प्रतिक्रमण न करनेवाले, कम या ज्यादा आवश्यक करनेवाले गण के प्रमाण से कम या ज्यादा रजोहरण, पात्र, दंड, मुहपत्ति आदि उपकरण धारण करनेवाले, गुरु के उपकरण का परिभोगी, उत्तरगुण का विराधक, गृहस्थ की इच्छा के अनुसार प्रवृत्ति करनेवाला, उसके सन्मान में प्रवर्तीत, पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति, बीजकाय, त्रसकाय दो, तीन, चार, पाँच इन्द्रियवाले जीव को कारण से या कारणरहित प्रमाद दोष से संघट्टन आदि में दोष को न देखते हुए आरम्भ परिग्रह में प्रवृत्ति करके, गुरु के पास आलोचना न करे, विकथा करे, बिना समय के कहीं भी घुमनेवाला, अविधि से संग्रह करनेवाला, कसौटी किए बिना प्रव्रज्या दे, बड़ी दीक्षा दे, दश तरह की विनय सामाचारी न शीखलाए । ऋद्धि, रस, शाता गारव करनेवाला, मति आदि आँठ मद, चार कषाय, ममत्त्वभाव, अहंकार, कंकास, क्लेश, झगड़े, लड़ाई, तुफान, रौद्र-आर्तध्यानयुक्त स्थापन नहीं किया, बुजुर्ग को जिसने हाथ से तिरस्कारयुक्त 'हे-दो' ऐसा कहना, दीर्घकाल के बाद लोच करनेवाले, विद्या, मंत्र, तंत्र, योग, अंजन आदि शीखकर उसमें ही एकान्त कोशिश करनेवाले, मूलसूत्र के योग और गणी पदवी के योग वहन न करनेवाला, अकाल आदि के आलम्बन ग्रहण करके अकल्प्य खरीद किए हुए पकाए हुए आदि का परिभोग करने के स्वभाववाले, थोड़ी बीमारी हुई हो तो उसका कारण आगे करके चिकित्सा करवाने के लिए तैयार हो, वैसे काम को खुशी से आमंत्रित करे, जो किसी रोग आदि हुए हो तो दिन में शयन करने के स्वभाववाले, कुशील के साथ बोलने और अनुकरण करनेवाले, अगीतार्थ के मुख में से नीकले कईं दोष प्रवर्तानेवाले वचन और अनुष्ठान को अनुसरने के स्वभाववाले, तलवार, धनुष, खड्ग, तीर, भाला, चक्र आदि शस्त्र ग्रहण करके चलने के स्वभाववाले, साधु वेश छोड़कर अन्य वेश धारण करके भटकनेवाले, इस तरह साड़े तीन पद कोटि तक हे गौतम ! गच्छ को असंस्थित कहना और दूसरे कईं तरह के लिंगवालों निशानीवाले गच्छ को संक्षेप से कह सकते हैं ।

सूत्र – ६९८

इस तरह के बड़े गुणवाले गच्छ पहचानना वो इस प्रकार- गुरु तो सर्व जगत के जीव, प्राणी, भूत सत्त्व के लिए वात्सल्य भाव रखनेवाली माँ समान हो, फिर गच्छ के लिए वात्सल्य की बात कहाँ अधूरी है ? और फिर शिष्य और समुदाय के एकान्त में हित करना, प्रमाणवाले, पथ्य आलोक और परलोक के सुख को देनेवाले ऐसे आगमानुसारी हितोपदेश को देनेवाले होते हैं । देवेन्द्र और नरेन्द्र की समृद्धि की प्राप्ति से भी श्रेष्ठ और उत्तम गुरु महाराज का उपदेश है । गुरु महाराज संसार के दुःखी आत्मा की भाव अनुकंपा से जन्म, जरा, मरण आदि दुःख से यह भव्य जीव काफी दुःख भुगत रहे हैं । वो कब शाश्वत का शिव-सुख पाएंगे ऐसा करुणापूर्वक गुरु महाराज उपदेश दे लेकिन व्यसन या संकट से पराभवित बनकर नहीं । जैसे कि ग्रह का वलगण लगा हो, उन्मत्त हुआ हो, किसी तरह के बदले की आशा से जैसे कि इस हितोपदेश देने से मुजे कुछ फायदा होगा-ऐसी लालच पैदा हो, तो हे गौतम ! गुरु शिष्य की निश्रा में संसार का पार नहीं पाते और दूसरों ने किए हुए सर्व शुभाशुभ कर्म के रिश्ते

किसी को नहीं होते ।

सूत्र – ६९९-७००

तो हे गौतम ! यहाँ इस तरह के हालात होने से यदि दृढ़ चारित्रवाले गीतार्थ बड़े गुण से युक्त ऐसे गुरु हों और वो बार-बार इस प्रकार वचन कहे कि इस सर्प के मुख में ऊंगली डालकर उसका नाप बताए या उसके चोकठे में कितने दाँत हैं ? वो गिनकर कहे तो उसी के अनुसार ही करे वो ही कार्य को जानते हैं ।

सूत्र – ७०१-७०२

आगम के ज्ञाता कभी भी श्वेत कौआ कहे तो भी आचार्य जो कहे उस प्रकार भरोसा करना । ऐसा कहेने में भी कुछ कारण होगा । जो कोइ प्रसन्न गमनवाले भाव से गुरु ने बताया हुआ वचन ग्रहण करते हैं, वो उसे पीने के औषध की तरह सुखाकारी होती है ।

सूत्र – ७०३

पूर्व किए हुए पुण्य के उदयवाले भव्य सत्त्व ज्ञानादिक लक्ष्मी के भाजन बनते हैं । भावि में जिसका कल्याण होना है वो देवता की तरह गुरु की पर्युपासना करते हैं ।

सूत्र – ७०४-७०६

कईं लाख प्रमाण सुख देनेवाले, सेंकड़ो दुःख से मुक्त करनेवाले, आचार्य भगवंत हैं, उस के प्रकट दृष्टान्त रूप से केशी गणधर और प्रदेशी राजा हैं । प्रदेशी राजा ने नरक गमन की पूरी तैयारी कर दी थी । लेकिन आचार्य के प्रभाव से देव विमान प्राप्त किया । आचार्य भगवंत धर्ममतिवाले, सुंदर, मधुर, कारण, कार्य, उपमा सहित इस प्रकार के वचन के द्वारा, शिष्य के हृदय को प्रसन्न करते-करते प्रेरणा देते हैं ।

सूत्र – ७०७-७०८

पचपन क्रोड़, पचपन लाख, पचपन हजार पाँच सो पचपन क्रोड़ संख्या प्रमाण यहाँ आचार्य हैं उसमें से बड़े गुणवाले गुणसमूह युक्त ऐसे होते हैं कि जो सर्व तरह के उत्तम भेदों द्वारा तीर्थंकर समान गुरु-आचार्य होते हैं ।

सूत्र – ७०९

वो भी हे गौतम ! देवता के वचन समान है । उस सूर्य समान अन्य आचार्य की भी चौबीस तीर्थंकर की आराधना समान आराधना करनी चाहिए ।

सूत्र – ७१०

इस आचार्य पद के लिए द्वादशांग का श्रुत पढ़ना पड़ता है । तथापि अब यह बात संक्षेप में सार के रूप में करता हूँ वो ईस प्रकार है –

सूत्र – ७११-७१२

मुनि, संघ, तीर्थ, गण, प्रवचन, मोक्षमार्ग यह समान अर्थ कहनेवाले शब्द हैं । दर्शन, ज्ञान, चारित्र, घोर, उग्र तप यह सब गच्छ के पर्याय नाम जानना, जिस गच्छ में गुरु, राग, द्वेष या अशुभ आशय से शिष्य को सारणादिक प्रेरणा देते हो, धमकते हो तो हे गौतम ! वो गच्छ नहीं है ।

सूत्र – ७१३-७२०

महानुभाग ऐसे गच्छ में गुरुकुलवास करनेवाले साधुओं को काफी निर्जरा होती है । और सारणा, वायणा, चोयणा आदि से दोष की निवृत्ति होती है । गुरु के मन को अनुसरनेवाले, अतिशय विनीत, परिषह जीतनेवाले, धैर्य रखनेवाले, स्तब्ध न होनेवाले, लुब्ध न होनेवाले, गारव न करनेवाले, विकथा न करनेवाले, क्षमा रखनेवाले, इन्द्रिय

का दमन करनेवाले, संतोष रखनेवाले, छ काय का रक्षण करनेवाले, वैराग के मार्ग में लीन, दश तरह की समाचारी का सेवन करनेवाले, आवश्यक को आचरनेवाले, संयम में उद्यम करनेवाले, सेंकड़ों बार कठोर, कड़े, कर्कश अनिष्ट दुष्ट निष्ठुर वचन से अपमान किया जाए । अगर वैसा व्यवहार किया जाए तो भी जो रोषायमान नहीं होते, जो अपकीर्ति करनेवाले, अपयश करनेवाले या अकार्य करनेवाले नहीं होते । गले में जान अटक जाए तो भी प्रवचन की अपभ्राजना हो वैसा व्यवहार नहीं करते । निरंतर स्वाध्याय और ध्यान में लीन मनवाले, घोर तप और चरण से शोषे हुए शरीरवाले, जिसमें से क्रोध, मान, माया चले गए हैं और राग, द्वेष जिन्होंने दूर से सर्वथा त्याग किया है विनयोपचार करने में कुशल, सोलह तरह के वचन शुद्धिपूर्वक बोलने में कुशल, निरवद्य वचन बोलनेवाले ज्यादा न बोलने के स्वभाववाला, बार-बार न बोलनेवाले, गुरु ने सकारण या बिना कारण कठोर, कठिन, कर्कश, निष्ठुर, अनिष्ट शब्द कहे हो तब भी 'तहत्ति' करनेवाला 'इच्छं' उत्तर देनेवाला इस तरह के गुणवाले जो गच्छ में शिष्य हों उसे गच्छ कहते हैं ।

सूत्र – ७२१-७२३

भ्रमणस्थान-यात्रादि में ममत्वभाव का सर्वथा त्याग करके, अपने शरीर के लिए भी निःस्पृह भाववाली, संयम के निर्वाह तक केवल आहार ग्रहण करनेवाले, वो आहार भी ४२ दोष रहित हो, शरीर के रूपक से इन्द्रिय के रस के पोषण के लिए नहीं, भोजन करते-करते भी अनुकूल आहार खुद को मिलने के बदले अभिमान न करनेवाला हो, केवल संयमभोग वहन करने के लिए, इर्यासमिति के पालन के लिए, वैयावच्च के लिए, आहार करनेवाला होता है । क्षुधा-वेदना न सह सके, इर्यासमिति पालन के लिए, पडिलेहणादिक संयम के लिए, आहार ग्रहण करनेवाला होता है ।

सूत्र – ७२४-७२५

अपूर्व ज्ञान ग्रहण करने के लिए, धारणा करने में अति उद्यम करनेवाले शिष्य जिसमें हो, सूत्र, अर्थ और उभय को जो जानते हैं और वो हंमेशा उद्यम करते हैं, ज्ञानाचार के आँठ, दर्शनाचार के आँठ, चारित्राचार के आँठ (तपाचार के बारह) और वीर्याचार के छत्तीस आचार, उसमें बल और वीर्य छिपाए बिना अग्लानि से काफी एकाग्र मन, वचन, काया के योग से उद्यम करनेवाला हो । इस तरह के शिष्य जिसमें हो वो गच्छ हैं ।

सूत्र – ७२६

गुरु महाराज कठोर, कड़ी, निष्ठुर वाणी से सेंकड़ों बार ठपका दे तो भी शिष्य जिस गच्छ में प्रत्युत्तर न दे तो उसे गच्छ कहते हैं ।

सूत्र – ७२७

तप प्रभाव से अचिन्त्य पैदा हुई लब्धि और अतिशयवाली ऋद्धि पाई हो तो भी जिस गच्छ में गुरु की अवहेलना शिष्य न करे उसे गच्छ कहते हैं ।

सूत्र – ७२८

एक बार कठिन पाखंड़ीओं के साथ वाद करके विजय प्राप्त किया हो, यश समूह उपार्जन किया हो ऐसे शिष्य भी जिस गच्छ में गुरु की हेलना-अवहेलना नहीं करता उसे गच्छ कहते हैं ।

सूत्र – ७२९

जिसमें अस्खलित, एक दुजे में अक्षर न मिल जाए उस तरह आड़े-टेढ़े अक्षर जीसमें बोले न जाए वैसे अक्षरवाले, पद और अक्षर से विशुद्ध, विनय और उपधान पूर्वक पाए हुए बारह अंग के सूत्र और श्रुतज्ञान जिसमें पाए जाते हों वो गच्छ हैं ।

सूत्र – ७३०

गुरु के चरण की भक्ति समूह से और उसकी प्रसन्नता से जिन्होंने आलावा को प्राप्त किए है ऐसे सुशिष्य एकाग्रमन से जिसमें अध्ययन करता हो उसे गच्छ कहते हैं ।

सूत्र – ७३१

ग्लान, नवदीक्षित, बालक आदि से युक्त गच्छ की दश तरह की विधिपूर्वक जिसमें गुरु की आज्ञा से वैयावच्च हो रही हो उसे गच्छ कहते हैं ।

सूत्र – ७३२, ७३३

जिसमें दश तरह की सामाचारी खंड़ीत नहीं होती, जिसमें रहे भव्य सत्त्व के जीव का समुदाय सिद्धि पाता है, बोध पाता है वो गच्छ है ।

१. इच्छाकार, २. मिच्छाकार, ३. तथाकार, ४. आवश्यिकी, ५. नैषेधिकी, ६. पृच्छा, ७. प्रतिपृच्छा, ८. छंदना, ९. निमंत्रणा, १०. उपसंपदा, यह दश तरह की समाचारी जिस समय करनी हो तब करे वो गच्छ हैं ।

सूत्र – ७३४

जिसमें छोटे साधु बड़ों का विनय करे, छोटे-बड़े का फर्क मालूम हो । एक दिन भी जो दीक्षा-पर्याय में बड़ा हो । उसकी अवगणना न हो वो गच्छ है ।

सूत्र – ७३५

चाहे कैसा भी भयानक अकाल हो, प्राण परित्याग करना पड़े वैसा अवसर प्राप्त हो तो भी सहसात्कारे हे गौतम ! साध्वीने वहोरकर लाई हुई चीज इस्तमाल न करे उसे गच्छ कहते हैं ।

सूत्र – ७३६

जिसके दाँत गिर गए हों वैसे बुढ्ढे स्थविर भी साध्वी के साथ बात नहीं करते । स्त्री के अंग या उपांग का निरीक्षण जिसमें नहीं किया जाता उसे गच्छ कहते हैं ।

सूत्र – ७३७

जिस गच्छ में रूप सन्निधि-उपभोग के लिए स्थापित चीज रखी नहीं जाती, तैयार किए गए भोजनादिक, सामने लाकर आहारादि न ग्रहण करे और पूतिकर्म दोषवाले आहार से भयभीत, पातरा बार-बार धोने पड़ेंगे ऐसे भय से, दोष लगने के भय से, उपयोगवंत साधु जीसमें हो वो गच्छ है ।

सूत्र – ७३८

जिसमें पाँच अंग जिस के काम प्रदिप्त करनेवाले हैं, दुर्जय जीवन खीला है, बड़ा अहंकार है ऐसे कामदेव से पीड़ित मुनि हो तो भी सामने तिलोत्तमा देवांगना आकर खड़ी रहे तो भी सामने नजर नहीं करता वो गच्छ।

सूत्र – ७३९

काफी लब्धिवाले ऐसे शीलभ्रष्ट शिष्य को जिस गच्छ में गुरु विधि से वचन कहकर शिक्षा करे वो गच्छ ।

सूत्र – ७४०-७४१

नम्र होकर स्थिर स्वभाववाला हँसी और जल्द गति को छोड़कर, विकथा न करनेवाला, अघटित कार्य न करनेवाला, आँठ तरह की गोचरी की गवेषणा करे यानि वहोरने के लिए जाए । जिसमें मुनिओं के अलग-अलग तरह के दुष्कर अभिग्रह, प्रायश्चित् आचरण करते देखकर देवेन्द्र के चित्त चमत्कार पाए वो गच्छ ।

सूत्र – ७४२

जिस गच्छ में छोटे-बड़े का आपसी वंदनविधि सँभाला जाता हो, प्रतिक्रमण आदि मंड़ली के विधान को निपुण रूपसे जाननेवाले हो । अस्खलित शीलवाले गुरु हो, जिसमें उग्र तप करने में नित्य उद्यमी साधु हो वो गच्छ।

सूत्र – ७४३

जिसमें सुरेन्द्र-पुजीत आँठ कर्म रहित, ऋषभादिक तीर्थंकर भगवंत की आज्ञा का स्खलन नहीं किया जाता वो गच्छ ।

सूत्र – ७४४

हे गौतम ! तीर्थ की स्थापना करनेवाले तीर्थंकर भगवंत और फिर उनका शासन, उसे हे गौतम ! संघ मानना । और संघ में रहे गच्छ, गच्छ में रहे ज्ञान-दर्शन और चारित्र तीर्थ हैं ।

सूत्र – ७४५

सम्यग्दर्शन बिना ज्ञान नहीं हो सकता । ज्ञान है तो दर्शन सर्वत्र होता है । दर्शन ज्ञान में चारित्र की भजना होती है । यानि चारित्र हो या न भी हो ।

सूत्र – ७४६

दर्शन या चारित्ररहित ज्ञानी पूरे संसार में घूमता है । लेकिन जो चारित्रयुक्त हो वो यकीनन सिद्धि पाता है उसमें संदेह नहीं ।

सूत्र – ७४७

ज्ञान पदार्थ को प्रकाशित करके पहचाने जाता है । तप आत्मा को कर्म से शुद्ध करनेवाला होता है । संयम मन, वचन, काया की शुद्ध प्रवृत्ति करवानेवाला होता है । तीन में से एक की भी न्यूनता हो तो मोक्ष नहीं होता ।

सूत्र – ७४८

उस ज्ञानादि त्रिपुटी के अपने अंग स्वरूप हो तो क्षमा आदि दश तरह के यति धर्म हैं । उसमें से एक-एक पद जिसमें आचरण किया जाए वो गच्छ ।

सूत्र – ७४९

जिसमें पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति और तरह-तरह के त्रस जीव को मरण के अवसर पर भी जो मन से पीड़ित नहीं करते वो गच्छ ।

सूत्र – ७५०

जिसमें सचित्त जल की एक बुँद भी गर्मी में चाहे कैसा भी गला सूख रहा हो, तीव्र तृषा लगी हो, मरने का समय हो तो भी मुनि सचित्त पानी की बुँद को भी न चाहे ।

सूत्र – ७५१

जिस गच्छ में शूलरोग, दस्त, उल्टी या दूसरे किसी तरह के विचित्र मरणांत बिमारी पैदा होती हो तो भी अग्नि प्रकट करने के लिए किसी को प्रेरणा नहीं देते वो गच्छ ।

सूत्र – ७५२

जिस गच्छ में ज्ञान धारण करनेवाले ऐसे आचार्यादिक आर्य को तेरह हाथ दूर से त्याग करते हैं ।

श्रुतदेवता की तरह हर एक स्त्री का मन से त्याग करे वो गच्छ ।

सूत्र – ७५३-७५४

रतिक्रीड़ा, हाँस्यक्रीड़ा, कंदर्प, नाथवाद जहाँ नहीं किया जाता, दौड़ना, गड्ढे का उल्लंघन करना, मम्माच-च्चावाले अपशब्द जिसमें नहीं बोले जाते, जिसमें कारण पैदा हो तो भी वस्त्र का आंतरा रखकर स्त्री के हाथ का स्पर्श भी दृष्टिविष सर्प या प्रदिप्त अग्नि और झहर की तरह वर्जन किया जाता हो वो गच्छ ।

सूत्र – ७५५

लिंग यानि वेश धारण करनेवाला या अरिहंत खुद भी स्त्री के हाथ को छू ले तो हे गौतम ! उसे यकीनन मूलगुण से बाहर जानना ।

सूत्र – ७५६

उत्तम कुल में पैदा होनेवाला और गुण सम्पन्न, लब्धियुक्त हो लेकिन जिन्हें मूलगुण में स्खलना होती हो उनको जिसमें से नीकाला जाए वो गच्छ ।

सूत्र – ७५७

जिसमें हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य, काँस आदि धातु, गद्दी शयन, आसन आदि गृहस्थ के इस्तमाल करने के लायक चीजों का उपभोग नहीं होता वो गच्छ ।

सूत्र – ७५८

जिसमें किसी कारण से समर्पण किया हो ऐसा पराया सुवर्ण आया हो तो पलभर या आँख के अर्धनिमेष समय जितने पल भी जिसको छूआ नहीं जाता वो गच्छ ।

सूत्र – ७५९

चपल चित्तवाली आर्या के दुर्धर ब्रह्मचर्य व्रतपालन के लिए साँत हजार परिहार स्थानक जहाँ है वो गच्छ ।

सूत्र – ७६०

जिसमें उत्तर-प्रत्युत्तर से आर्या साधु के साथ अति क्रोध पाकर प्रलाप करती हो तो हे गौतम ! वैसे गच्छ का क्या काम ?

सूत्र – ७६१

हे गौतम ! जहाँ कई तरह के विकल्प के कल्लोल और चंचल मनवाली आर्या के वचन के अनुसार व्यवहार किया जाए उसे गच्छ क्यों कहते हैं ?

सूत्र – ७६२-७६३

जहाँ एक अंगवाला केवल अकेला साधु, साध्वी के साथ बाहर एक सौ हाथ ऊपर आगे चले, हे गौतम ! उस गच्छ में कौन-सी मर्यादा ? हे गौतम ! जहाँ धर्मोपदेश के सिवा साध्वी के साथ आलाप-संलाप बार-बार वार्तालाप आदि व्यवहार वर्तता हो उस गच्छ को कैसा गिनना ?

सूत्र – ७६४-७६६

हे भगवंत ! साधुओं को अनियत विहार या नियत विहार नहीं होते, तो फिर कारण से नित्यवास, स्थिरवास जो सेवन करे उसकी क्या हकीकत समजे ? हे गौतम ! ममत्वभाव रहित होकर निरंहकारपन से ज्ञान, दर्शन, चारित्र में उद्यम करनेवाला हो, समग्र आरम्भ से सर्वथा मुक्त और अपने देह पर भी ममत्वभाव रहित हो,

मुनिपन के आचार का आचरण करके एक क्षेत्र में भी गीतार्थ सौ साल तक रहे तो वो आराधक हैं ।

सूत्र – ७६७

जिसमें भोजन के समय साधु की मांडली में पात्र स्थापन करनेवाली हो तो वो स्त्री राज्य है, लेकिन वो गच्छ नहीं है ।

सूत्र – ७६८

जिस गच्छ में रात को सौ हाथ ऊपर साध्वी को जाना हो तो चार से कम नहीं और उत्कृष्ट से दश । ऐसे साध्वी विचरण न करे तो वो गच्छ नहीं है ।

सूत्र – ७६९-७७०

अपवाद से और कारण हो तो चार से कम साध्वी एक गाऊं भी जिसमें चलते हो वो गच्छ किस तरह का ? हे गौतम! जिस गच्छमें आँठ से कम साधु मार्गमें साध्वी के साथ अपवाद से भी चले तो उस गच्छ में मर्यादा कहां ?

सूत्र – ७७१

जिसमें ६३ भेदवाले चक्षुरागाग्नि की उदीरणा हो उस तरह से साधु-साध्वी की ओर दृष्टि करे तो गच्छ के लिए कौन-सी मर्यादा सँभाली जाए ?

सूत्र – ७७२

जिसमें आर्या के वहोरे हुए पात्रा दंड़ आदि तरह-तरह के उपकरण का साधु परिभोग करे हे गौतम ! उसे गच्छ कैसे कहें ?

सूत्र – ७७३, ७७४

अति दुर्लभ बल-बुद्धि वृद्धि करनेवाले शरीर की पुष्टि करनेवाले औषध साध्वी ने पाए हो और साधु उसका इस्तमाल करे तो उस गच्छ में कैसे मर्यादा रहे ?

शशक, भसक ही बहन सुकुमालिका की गति सुनकर श्रेयार्थी धार्मिक पुरुष को सहज भी (मोहनीयकर्म का) भरोसा मत करना ।

सूत्र – ७७५

दृढ़ चरित्रवाले गुण समूह ऐसे आचार्य और गच्छ के वडील के सिवा जो किसी साधु या साध्वी को हुकुम करे तो वो गच्छ नहीं है ।

सूत्र – ७७६

मेघ गर्जना, दौड़ते अश्व के उदर में पैदा हुए वायु जिसे कुहुक बोला जाता है, बिजली जैसे पहचान नहीं सकते, उसके समान गूढ़ हृदयवाली आर्या के चंचल और गहरे मन को पहचान नहीं सकते । उनको अकृत्य करते, गच्छ नायक की ओर से निवारण न किया जाए तो – वो स्त्री राज्य है लेकिन गच्छ नहीं है ।

सूत्र – ७७७

तपोलब्धियुक्त इन्द्र से अनुसरण की गई प्रत्यक्षा श्रुतदेवी समान साध्वी जिस गच्छ में कार्य करती हो वो स्त्री राज है लेकिन गच्छ नहीं है ।

सूत्र – ७७८

हे गौतम ! पाँच महाव्रत, तीन गुप्ति, पाँच समिति, दश तरह का साधुधर्म उन सब में से किसी भी तरह से एक की भी स्खलना हो तो वो गच्छ नहीं है ।

सूत्र – ७७९-७८०

एक ही दिन के दीक्षित द्रमक साधु की सन्मुख चिरदीक्षित आर्या चंदनबाला साध्वी खड़ी होकर उसका सन्मान विनय करे और आसन पर न बैठे वो सब आर्या का विनय है । सौ साल के पर्यायवाले दीक्षित साध्वी हो और साधु आज से एक दिन का दीक्षित हो तो भी भक्ति पूर्ण हृदययुक्त विनय से साधु साध्वी को पूज्य है ।

सूत्र – ७८१-७८४

जो साधु-साध्वी के प्रतिलाभित चीजों में गृद्धि करनेवाले हैं और खुद प्रतिलाभित में असंतुष्ट हैं । भिक्षाचर्या से भग्न होनेवाले ऐसे वो अर्णिकापुत्र आचार्य का दृष्टांत आगे करते हैं । अकाल के समय शिष्य-समुदाय को सूखे प्रदेश में भेज दिए थे, खुद बुढ़ापे के कारण से भिक्षाचर्या करने के लिए समर्थ न थे वो बात वो पापी को पता नहीं थी । और आर्या का लाभ ढूँढ़ते हैं । वो पापी उसमें से जो गुण ग्रहण करने के लायक है उसे ग्रहण नहीं करते । जैसे कि अकाल के समय शिष्य को विहार-प्रवास करवाया । शिष्य पर की ममता का त्याग किया, वहाँ स्थिरवास किया । वो सोचने की बजाय एक क्षेत्र में स्थिरवास रहने की बात आगे करते हैं । इस लोक में कईं पड़ने के आलम्बन भरे हैं, प्रमादी अजयणावाले जीव लोक में ऐसा आलम्बन देखते हैं, वैसा करते हैं ।

सूत्र – ७८५

जहाँ मुनिओं को बड़े कषाय से धिक्कार-परेशान किया जाए तो भी जैसे अच्छी तरह से बैठा हुआ लंगड़ा पुरुष हो तो वो उठता नहीं । उसी तरह जीसके कषाय खड़े नहीं होते उसे गच्छ कहते हैं ।

सूत्र – ७८६

धर्म के अंतराय से भयभीत, संसार के गर्भावास से डरे हुए मुनि अन्य मुनि को कषाय की उदीरणा न करे, वो गच्छ ।

सूत्र – ७८७

दान, शील, तप, भावना रूप चार तरह के धर्म के अंतराय से और भव से भयभीत ऐसे कईं गीतार्थ जो गच्छ में हो वैसे गच्छ में वास करना चाहिए ।

सूत्र – ७८८

जिसमें चार गति के जीव कर्म के विपाक भुगतते देखकर और पहचानकर मुनि अपराध करनेवाले पर भी क्रोधित न हो वो गच्छ ।

सूत्र – ७८९-७९०

हे गौतम ! जिस गच्छ में पाँच वधस्थान (चक्की-साँबिला-चूल्हा-पनिहारु-झाडु) में से एक भी हो उस गच्छ को त्रिविध से वोसिरा के दूसरे गच्छ में चले जाना, वधस्थान और आरम्भ-से प्रवृत्त ऐसे उज्जवल केशवाले गच्छ में वास न करना, चारित्र गुण से उज्ज्वल ऐसे गच्छ में वास करना ।

सूत्र – ७९१

दुर्जय आँठ कर्मरूपी मल्ल को जीतनेवाला प्रतिमल्ल और तीर्थंकर समान आचार्य की आज्ञा का जो उल्लंघन करते हैं वो कापुरुष है, लेकिन सत्पुरुष नहीं है ।

सूत्र – ७९२-७९३

भ्रष्टाचार करनेवाले, भ्रष्टाचार की उपेक्षा करनेवाले और उन्मार्ग में रहे आचार्य तीन मार्ग को नष्ट करनेवाले हैं । यदि आचार्य झूठे मार्ग में रहे हो, उन्मार्ग की प्ररूपणा करते हो, तो यकीनन भव्य जीव का समूह उस झूठे मार्ग का अनुसरण करते है, इसलिए उन्मार्गी आचार्य की परछाई भी मत लेना ।

सूत्र – ७९४-७९५

इस संसार में दुःख भुगतनेवाले एक जीव को प्रतिबोध करके उसे मार्ग के लिए स्थापन करते हैं, उसने देव और असुरवाले जगत में अमारी पड़ह की उद्घोषणा करवाई है ऐसा समझना । भूत, वर्तमान और भावि में ऐसे कुछ महापुरुष थे, है और होंगे कि जिनके चरणयुगल जगत के जीव को वंदन करने के लायक हैं, और परहित करने के लिए एकान्त कोशीष करने में जिनका काल पसार होता है, हे गौतम ! अनादिकाल से भूतकाल में हुआ है। भावि में भी होगा कि जिन के नामस्मरण करने से यकीनन प्रायश्चित्त होता है ।

सूत्र – ७९६-७९९

इस तरह की गच्छ की व्यवस्था दुप्पसह सुरि तक चलेगी मगर उसमें बीच के काल में जो कोई उसका खंडन करे तो उस को यकीनन अनन्त संसारी जानना । समग्र जगत के जीव के मंगल और एक कल्याण स्वरूप उत्तम निरुपद्रव सिद्धिपद विच्छेद करनेवाले को जो प्रायश्चित्त लगे वो प्रायश्चित्त गच्छ व्यवस्था खंडन करनेवाले को लगे । इसलिए शत्रु और मित्र में समान मनवाले, परहित करने में उत्सुक, कल्याण की इच्छावाले को और खुद को आचार्य की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए ।

सूत्र – ८००-८०३

तीन गारव में आसक्त ऐसे कईं आचार्य गच्छ की व्यवस्था का उल्लंघन करके आज भी बोधि-सच्चा मार्ग नहीं पा सकते । दूसरे भी अनन्त बार चार गति रूप भव में और संसार में परिभ्रमण करेंगे लेकिन बोधि की प्राप्ति नहीं करेंगे । और लम्बे अरसे तक काफी दुःखपूर्ण संसार में रहेंगे । हे गौतम ! चौदराज प्रमाण लोक के बारे में बाल के अग्रभाग जितना भी प्रदेश नहीं है कि जहाँ इस जीव ने अनन्तबार मरण प्राप्त न किए हो । चौराशी लाख जीव को पैदा होने की जगह है, उसमें एक भी योनि नहीं है कि हे गौतम ! जिसमें अनन्ती बार सर्व जीव पैदा न हुए हो ।

सूत्र – ८०४-८०६

तपाए हुए लाल वर्णवाले अग्नि समान सूई पास-पास शरीर में लगाई जाए और जो दर्द हो उससे ज्यादा-गर्भ में आँठ गुना दर्द होता है । गर्भ में से जब जन्म हो और बाहर नीकले तब योनियंत्र में पिले जाने से जो दर्द हो (उस से) करोड़ या क्रोड़ाक्रोड़ गुना दर्द हो जब पैदा हो रहा हो और मौत के समय का जो दुःख होता है, उस समय तो उसके दुःखानुभव में अपनी जात भी भूल जाता है ।

सूत्र – ८०७-८१०

हे गौतम ! अलग-अलग तरह की योनि में परिभ्रमण करने से यदि उस दुःखविपाक का स्मरण किया जाए तो जी नहीं सकते । अरे ! जन्म, जरा, मरण, दुर्भाग्य, व्याधि की बात एक ओर रख दे । लेकिन कौन महामतिवाला गर्भावास से लज्जा न पाए और प्रतिबोधित न हो । काफी रुधिर परु से गंदकीवाले, अशुचि बदबूवाले, मल से पूर्ण, देखने में भी अच्छा न लगे ऐसे दुरभिगंधवाले गर्भ में कौन धृति पा सके ? तो जिसमें एकान्त दुःख बिखर जाना है, एकान्त सुख प्राप्त होना है वैसी आज्ञा का भंग न करना । आज्ञा भंग करनेवाले को सुख कहाँ से मिले ?

सूत्र – ८११

हे भगवंत ! उत्सर्ग से आँठ साधु की कमी में या अपवाद से चार साधु के साथ (साध्वी का) गमनागमन निषेध किया है । और उत्सर्ग से दस संयति से कम और अपवाद से चार संयति की कमी में एक सौ हाथ से उपर जाने के लिए भगवंत ने निषेध किया है । तो फिर पाँचवें आरे के अन्तिम समय में अकेले सहाय बिना दुप्पसह अणगार होंगे और विष्णु श्री साध्वी भी सहाय बिना अकेली होगी तो वो किस तरह आराधक होंगे ? हे गौतम ! दुषमकाल के अन्तिम समय वे चारो, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व ज्ञान-दर्शन-चारित्र युक्त होंगे । उसमें जो महायशवाले महानुभावी दुप्पसह अणगार होंगे उनका अति विशुद्ध दर्शन ज्ञान चारित्र आदि गुणयुक्त, जिसने अच्छी तरह से सद्गति का मार्ग देखा है वैसे आशातना भीरु, अति परमश्रद्धा संवेग, वैराग और सम्यग् मार्ग में रहे, बादल रहित निर्मल गगन में शरदपूनम के विमल चंद्रकिरन समान उज्ज्वल उत्तम यशवाले, वंदन लायक में भी विशेष वंदनीय, पूज्य में भी परमपूज्य होंगे ।

और वो साध्वी भी सम्यक्त्वज्ञानचारित्र के लिए पताका समान, महायशवाले, महासत्त्ववाले, महानुभाग इस तरह के गुणयुक्त होने से अच्छी तरह से जिनके नाम का स्मरण कर सके वैसे विष्णुश्री साध्वी होंगे । और फिर जिनदत्त और फाल्गुश्री नाम के श्रावक-श्राविका का होंगे कि कईं दिन तक बयाँ किया जाए वैसे गुणवाला युगल होगा । उन सबकी सोलह साल की अधिक आयु होगी । आँठ साल का चारित्र पर्याय पालन करके फिर पाप की

आलोचना करके निःशल्य होकर नमस्कार स्मरण में परायण होकर एक उपवास भक्त भोजन प्रत्याख्यान करके सौधर्मकल्प में उपपात होगा । फिर नीचे मानव लोक में आगमन होगा । तो भी वो गच्छ की व्यवस्था नहीं तोड़ेंगे ।

सूत्र – ८१२-८१३

हे भगवंत ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है, तो भी गच्छ व्यवस्था का उल्लंघन नहीं होगा । हे गौतम ! यहाँ नजदीकी काल में महायशवाले महासत्त्ववाले महानुभाग शय्यंभव नाम के महा तपस्वी महामतिवाले बारह अंग समान श्रुतज्ञान को धारण करनेवाले ऐसे अणगार होंगे वो पक्षपात रहित अल्प आयुवाले भव्य सत्त्व को ज्ञान के अतिशय के द्वारा ११ अंग और १४ पूर्व के परमसार और नवनीत समान अति प्रकर्षगुणयुक्त सिद्धि के मार्ग समान दशवैकालिक नाम के श्रुतस्कंध की निर्युहणा करेंगे ।

हे भगवंत ! वो किसके निमित्त से ? हे गौतम ! मनक के निमित्त से । ऐसा मानकर कि इस मनक परम्परा से अल्पकाल में बड़े घोर दुःख सागर समान यह चार गति स्वरूप संसार सागर में से किस तरह पार पाए ? वो भी सर्वज्ञ के उपदेश बिना तो हो ही नहीं सकता । इस सर्वज्ञ का उपदेश पार रहित और दुःख से करके अवगाहन किया जाए वैसा है । अनन्तगमपर्याय से युक्त है । अल्पकाल में इस सर्वज्ञ ने बताए सर्व शास्त्र में अवगाहन नहीं किया जाता । इसलिए हे गौतम ! अतिशय ज्ञानवाले शय्यंभव ऐसा चिन्तवन करेंगे कि, ज्ञानसागर का अन्त नहीं, काल अल्प है, विघ्न कईं हैं, इसलिए जो सारभूत हो वो जिस तरह खारे जल में से हंस मीठा जल ग्रहण करवाता है उस तरह ग्रहण कर लेना ।

सूत्र – ८१४

उन्होंने इस भव्यात्मा मनक को तत्त्व का परिज्ञान हो ऐसा जानकर पूर्व में से – बड़े शास्त्र में से दशवैकालिक श्रुतस्कंध की निर्युहणा की । उस समय जब बारह अंग और उसके अर्थ का विच्छेद होगा तब दुष्मकाल के अन्तकाल तक दुप्पसह अणगार तक दशवैकालिक सूत्र और अर्थ से पढ़ेंगे, समग्र आगम के सार समान दशवैकालिक श्रुतस्कंध सूत्र से पढ़ेंगे । हे गौतम ! यह दुप्पसह अणगार भी उस दशवैकालिक सूत्र में रहे अर्थ के अनुसार प्रतवेंगे लेकिन अपनी मतिकल्पना करके कैसे भी स्वच्छंद आचार में नहीं प्रवर्तेंगे । उस दशवैकालिक

श्रुतस्कंध में उस समय बारह अंग रूप श्रुतस्कंध की प्रतिष्ठा होगी । हे गौतम ! इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि सरल लगे उस तरीके से जैसे भी गच्छ की व्यवस्था की मर्यादा का उल्लंघन मत करना ।

सूत्र – ८१५

हे भगवंत ! अति विशुद्ध परिणामवाले गणनायक की भी किसी वैसे दुःशील शिष्य स्वच्छंदता से, गारव कारण से या जातिमद आदि आज्ञा न माने या उल्लंघन करे तो वो आराधक होता है क्या ? शत्रु और मित्र प्रति समभाववाले गुरु के गुण में वर्तते हुए और हंमेशा सूत्रानुसार विशुद्धाशय से विचरते हो वैसे गणी की आज्ञा का उल्लंघन करनेवाले चार सौ निन्नानवे साधु जिस तरह अनाराधक हुए वैसे अनाराधक होते हैं ।

सूत्र – ८१६

हे भगवंत ! एक रहित ऐसे ५०० साधु जिन्होंने वैसे गुणयुक्त महानुभाव गुरु महाराज की आज्ञा का उल्लंघन करके आराधक न हुए, वे कौन थे ? हे गौतम ! यह ऋषभदेव परमात्मा की चोवीसी के पहले हुई तेईस चौवीसी और उस चौवीसी के चौवीसवे तीर्थंकर निर्वाण पाने के बाद कुछ काल गुण से पैदा हुए कर्म समान पर्वत का चूरा करनेवाला, महायशवाले, महासत्त्ववाले महानुभाव सुबह में नाम ग्रहण करने लायक ''वईर'' नाम के गच्छाधिपति बने, साध्वी रहित उनका पाँच सौ शिष्य के परिवारवाला गच्छ था । साध्वी के साथ गिना जाए तो दो हजार की संख्या थी ।

हे गौतम ! वो साध्वी अति परलोक भीरु थी । अति निर्मल अंतःकरणवाली, क्षमा धारण करनेवाली, विनयवती, इन्द्रिय का दमन करनेवाली, ममत्व रहित, अति अभ्यास करनेवाले, अपने शरीर से भी ज्यादा छ काय के जीव पर वात्सल्य करनेवाली, भगवंत ने शास्त्र में बताने के अनुसार अति घोर वीर तप और चरण का सेवन करके शोषित शरीरवाली जिस प्रकार तीर्थंकर भगवंत ने प्ररूपेल है उसी प्रकार दीन मन से, माया, मद, अहंकार, ममत्व, रति, हँसी, क्रीड़ा, कंदर्प, नाथवादरहित, स्वामीभाव आदि दोष से मुक्त साध्वी आचार्य के पास श्रामण्य का अनुपालन करती थी ।

हे गौतम ! वो साधु थे वैसे मनोहर न थे, हे गौतम ! किसी समय वो साधु आचार्य को कहने लगे कि हे भगवंत ! यदि आप आज्ञा दो तो हम तीर्थयात्रा करके चन्द्रप्रभुस्वामी के धर्मचक्र को वंदन करके वापस आए । तब हे गौतम ! मन में दिनता लाए बिना, उतावले हुए बिना गम्भीर मधुर वाणी से उन आचार्य ने उन्हें प्रत्युत्तर दिया कि–शिष्य को 'इच्छाकारेण' ऐसे सुन्दर शब्द का प्रयोग करके 'सुविहितो की तीर्थयात्रा के लिए जाना न कल्पे' तो जब वापस आएंगे तब मैं तुम्हें यात्रा और चन्द्रप्रभु स्वामी को वंदन करवाऊंगा । दूसरी बात यह कि यात्रा करने में असंयम करने का मन होता है । इस कारण से तीर्थयात्रा का निषेध किया जाता है ।

तब शिष्य ने पूछा कि तीर्थयात्रा जानेवाले साधु को किस तरह असंयम होता है ? तब फिर 'इच्छाकारेण' – ऐसा दूसरी बार बुलाकर काफी लोगों के बीच व्याकुल होकर आक्रोश से उत्तर देंगे, लेकिन हे गौतम ! उस समय आचार्य ने चिन्तवन किया कि मेरा वचन उल्लंघन करके भी यकीनन वह शिष्य जाएंगे ही । उस कारण से ही मीठे मीठे वचन बोलते हैं । अब किसी दिन मन से बहुत सोचकर उस आचार्य ने कहा कि तुम सहज भी सूत्र अर्थ जानते हो क्या ? यदि जानते हो तो जिस तरह के असंयम तीर्थ यात्रामें होता है, उस तरह के असंयम खुद जान सकते हैं । इस विषय में ज्यादा कहने से क्या फायदा ? दूसरा तुमने संसार का स्वरूप, जीवादिक चीज उसका यथायोग्य तत्त्व पहचाना है । अब किसी दिन कईं उपाय समजाए । यात्रा जाते रोके तो भी आचार्य को छोड़कर क्रोध समान यम के साथ तीर्थयात्रा के लिए निकल पड़े ।

वो जाते-जाते कहीं आहार गवेषणा का दोष, किसी जगह हरी वनस्पतिकाय का संघट्ट करते, बीज काय चाँपते थे । कोई चींटी आदि विकलेन्द्रिय जीव, त्रसकाय के संघट्टन, परितापन, उपद्रव से होनेवाले असंयम दोष लगाते थे । बैठे-बैठे (भी) प्रतिक्रमण न करते थे । किसी बड़े पात्र छोटे पात्र उपकरण आदि दोनों काल विधिवत्

प्रेक्षण प्रमार्जन नहीं कर सकते थे । पड़िलेहण करते वायुकाय के जीव की विराधना हो वैसे वस्त्र सूखाते थे कितना कहना ? हे गौतम ! उसका वर्णन कितना करे ?

अठ्ठारह हजार शीलांग, सत्तरह तरह के संयम बाह्य और अभ्यंतर बारह प्रकार के तप, क्षमा, आदि और अहिंसा लक्षण युक्त दश प्रकार के श्रमण धर्म को आदि के एक एक पद को कईं बार लम्बे अरसे तक पढ़कर याद करके दोनों अंग रूप महाश्रुतस्कंध जिन्होंने स्थिर-परिचित किए हैं । कईं भाँगाओं और सैकड़ों जोड़ाण दुःख से करके जिन्होंने सिखे हैं, निरतिचार चारित्रधर्म का पालन किया है । यह सब जिस प्रकार कहा है वो निरतिचारपन से पालन करते थे । वो सब सुनकर उस गच्छाधिपति ने सोचा कि, मेरे परोक्ष में, गेरमोजुदगी में उस दुष्ट शीलवाले शिष्य अज्ञानपन की कारण से अति असंयम सेवन करेंगे वो सर्व असंयम मुझे लगेंगे, क्योंकि मैं उनका गुरु हूँ । इसलिए मैं उनके पीछे जाकर उन्हें प्रेरणा देता हूँ कि जिससे इस असंयम के विषय में मैं प्रायश्चित्त का अधिकारी न बनूँ । ऐसा विकल्प करके वो आचार्य उनके पीछे जितने में गए उतने में तो उन्हें असंयम से और बूरी तरह अविधि से जाते देखा । तब हे गौतम ! अति सुन्दर, मधुर शब्द के आलापपूर्वक गच्छाधिपति ने कहा कि–अरे, उत्तम कुल और निर्मल वंश के आभूषण समान कुछ-कुछ महासत्त्ववाले साधु ! तुमने उन्मार्ग पाया है, पाँच महाव्रत अंगीकार किए गए देहवाले महाभागशाली साधु-साध्वी के लिए सत्ताईस हजार स्थंड़ील स्थान सर्वज्ञ भगवंत ने प्ररूपे हैं । श्रुत के उपयोगवाले को उसकी विशुद्धि जाँचनी चाहिए, लेकिन अन्य में उपयोगवाला न बनना चाहिए । तो तुम शून्याशून्य चित्त से अनुपयोग से क्यों चल रहे हो ? तुम्हारी ईच्छा से तुम उसमें उपयोग दो ।

दूसरा यह कि तुम यह सूत्र और उसका अर्थ भूल गए हो क्या ? सर्व परम तत्त्व के परमसारभूत तरह का यह सूत्र है । एक साधु एक दो इन्द्रियवाले जानवर को खुद ही हाथ से या पाँव से या दूसरों के पास या शलाका आदि अधिकरण से किसी भी पदार्थभूत उपकरण से संघट्टा करे, करवाए या संघट्टा करनेवाले को सही माने, उससे बाँधा गया कर्म जब उदय में आए तब जैसे यंत्र में इख पीसते हैं वैसे उस कर्म का क्षय हो, यदि गहरे परिणाम से कर्म बाँधा हो तो पापकर्म बारह साल तक भुगते तब वो कर्म खपाए, गहरा परितापन करे तो दश हजार साल तक, उस प्रकार आगाढ़ कीलामणा करे तो दश लाख साल के बाद वो पाप कर्म खपाए और उपद्रव करे यानि मौत के अलावा सारे दुःख दे । वैसा करने से करोड़ साल दुःख भुगतकर पाप-कर्म क्षय कर सकते हैं । उसी प्रकार तीन इन्द्रियवाले जीव के बारे में भी समझना । तुम इतना समझ सकते हो इसलिए घबराना मत ।

हे गौतम ! उसी प्रकार सूत्रानुसार आचार्य सारणा करने के बावजूद भी महा पापकर्मी, चलने की व्याकुलता में एक साथ सब उतावले होकर वो सर्व पाप कर्म ऐसे आँठ कर्म के दुःख से मुक्त करनेवाला ऐसा आचार्य का वचन बहुमान्य नहीं करते । तब हे गौतम ! वो आचार्य समज गए की जरुर यह शिष्य उन्मार्ग में प्रयाण कर रहे हैं, सर्व तरह से पापजातिवाले और मेरे दुष्ट शिष्य हैं, तो अब मुझे उनके पीछे क्यों खुशामत के शब्द बोलते –बोलते अनुसरण करूँ ? यह तो जल रहित सुखी नदी के प्रवाह में बहना जैसा है । यह सब भले ही दश द्वार से चले जाए, मैं तो अब मेरे आत्म के हित की साधना करूँगा । दूसरे किए हुए काफी बड़े पुण्य के समूह से मेरा अल्प भी रक्षण होगा क्या ? आगम में बताए तप और अनुष्ठान के द्वारा अपने पराक्रम से ही भवसागर पार कर सकेंगे । तीर्थंकर भगवंत का यही आदेश है ।

सूत्र – ८१७

या आत्महित करना और यदि मुमकीन हो तो परहित भी जरुर करना । आत्महित और परहित दोनों करने का समय हो तो पहले आत्महित की साधना करनी चाहिए ।

सूत्र – ८१८

दूसरा यह शिष्य शायद तप और संयम की क्रिया का आचरण करेंगे तो उससे उनका ही श्रेय होगा और यदि नहीं करेंगे तो उन्हें ही अनुत्तर दुर्गति गमन करना पड़ेगा । फिर भी मुझे गच्छ समर्पण हुआ है, मैं गच्छाधिपति

हूँ, मुझे उनको सही रास्ता दिखाना चाहिए । और फिर दूसरी बात यह ध्यान में रखनी है कि – तीर्थंकर भगवंत ने आचार्य के छत्तीस गुण बताए हैं उसमें से मैं एक का भी अतिक्रमण नहीं करूँगा । शायद मेरी जान भी वैसा करने से चली जाएगी तो भी मैं आराधक बनूँगा । आगम में कहा है कि यह लोक या परलोक के खिलाफ कार्य हो उसके लिए आचरण न करना, न करवाना या आचरण करनेवाले को अच्छा न मानना, तो ऐसे गुणयुक्त तीर्थंकर का कहा भी वो नहीं करते तो मैं उनके वेस लूँट लूँ । शास्त्र में इस प्रकार प्ररूपणा की है कि–जो कोई साधु या साध्वी केवल वचन से भी झूठा व्यवहार करे तो उसे गलती सुधारने के लिए सारना, वारणा, चोयणा, प्रतिचोयणा करनी चाहिए, उस प्रकार सारणा, वारणा, चोयणा, परिचोयणा करने के बावजूद भी जो बुजुर्ग के वचन को ठुकराकर आलस कर रहा हो, कहने के मुताबिक वैसे अप्कार्य में से पीछे हठ न करता है उनका वेष ग्रहण करके नीकाल देना चाहिए । उस प्रकार आगम में बताए न्याय से हे गौतम ! उस आचार्य ने जितने में एक शिष्य का वेश (ग्रहण करके) झूँटवा लिया। उतने में बाकी शिष्य हर एक दिशा में भाग गए ।

उसके बाद हे गौतम ! वो आचार्य जितने में धीरे-धीरे उनके पीछे जाने लगे, लेकिन जल्दी नहीं जाते थे । हे गौतम ! जल्दी चले तो खारी भूमि में से मधुर भूमि में संक्रमण करना पड़े । मधुर भूमि में से खारी भूमि में चलना पड़े । काली भूमि में से पीली भूमि में, पीली भूमि में से काली भूमि में, जल में से स्थल में, स्थल में से जल में, संक्रमण करके जाना पड़े उस कारण से विधि से पाँव की प्रमार्जना करके संक्रमण करना चाहिए । यदि पाँव की प्रमार्जना न की जाए तो बारह साल का प्रायश्चित्त मिले । इस कारण, हे गौतम! वो आचार्य उतावले नहीं चल रहे थे

अब किसी समय सूत्र में बताई विधि से स्थान का संक्रमण करते थे तब हे गौतम ! उस आचार्य के पास कईं दिन की क्षुधा से कमजोर बने शरीरवाला, प्रकट दाढ़ा से भयानक यमराज समान भयभीत करते हुए प्रलयकाल की तरह घोर रूपवाला केसरी सिंह आ पहुँचा । महानुभाग गच्छाधिपति ने चिन्तवन किया कि यदि तेजी से उतावले होकर चलूँ तो इस शेर के पंजे में से बच शके, लेकिन नष्ट हो जाना अच्छा है मगर असंयम में काम करना अच्छा नहीं है । ऐसा चिन्तवन करके विधि से वापस आए शिष्य को जिसका वेष लूँट लिया है वो वेश उसे देकर निष्पत्तिकर्म शरीरवाले वो गच्छाधिपति पदापोपगमन अनशन अपनाकर वहाँ खड़े रहे । वो शिष्य भी उसी के अनुसार रहा । अब उस समय अति विशुद्ध अंतःकरणवाले पंचमंगल का स्मरण करते शुभ अध्यवसायपन के योग से वो दोनों को हे गौतम ! सिंह ने मार डाला । इसलिए वो दोनों अंतकृत् केवली बन गए । आँठ तरह के कर्ममल-कलंक रहित वो सिद्ध हुए । अब वो ४९९ साधु उस कर्म के दोष से जिस तरह के दुःख का अहेसास करते थे और फिर से अहेसास करेंगे और अनन्त संसार सागर में परिभ्रमण करेंगे वो सर्व वृत्तान्त काल से भी कहने के लिए कौन समर्थ है ? हे गौतम ! वो ४९९ या जिन्होंने गुणयुक्त महानुभाग गुरु की आज्ञा का उल्लंघन करके आराधना नहीं की वो अनन्त संसारी बने ।

सूत्र – ८१९

हे भगवंत ! क्या तीर्थंकर की आज्ञा का उल्लंघन न करे या आचार्य की आज्ञा का ? हे गौतम ! आचार्य चार तरह के बताए हैं । वो इस प्रकार – नाम आचार्य, स्थापना आचार्य, द्रव्य आचार्य और भाव आचार्य । उसमें जो भावाचार्य हैं उन्हें तीर्थंकर समान मानना । उनकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए ।

सूत्र – ८२०

हे भगवंत ! वो भावाचार्य कब-से कहलाएंगे ? हे गौतम ! आज दीक्षित हुआ हो फिर भी आगमविधि से पद को अनुसरण करके व्यवहार करे वो भावाचार्य कहलाते हैं । जो सो साल के दीक्षित होने के बावजूद भी केवल वचन से भी आगम की बाधा करते हैं उनके नाम और स्थापना आचार्य में नियोग करना ।

हे भगवंत ! आचार्य को कितना प्रायश्चित्त लगता है ? जो प्रायश्चित्त एक साधु को मिले वो प्रायश्चित्त

आचार्य या गच्छ के नायक, प्रवर्तनी को सत्तरह गुना मिलता है । यदि शील का खंडन हो तो तीन लाख गुना । क्योंकि वो काफी दुष्कर है लेकिन सरल नहीं है । इसलिए आचार्य को और गच्छ के नायक को प्रवर्तिनी को अपने पच्चक्खाण का अच्छी तरह से रक्षण करना चाहिए । अस्खलित शीलवाला बनना चाहिए ।

हे भगवंत ! जो गुरु अचानक किसी कारण से, किसी वैसे स्थान में गलती करे, स्खलना पाए उसे आराधक माने कि नहीं ? हे गौतम ! बड़े गुण में व्यवहार रखते हो वैसे गुरु अस्खलित शीलयुक्त अप्रमादी आलस बिना सर्व तरह के आलम्बन रहित, शत्रु और मित्र पक्ष में समान भाववाले, सन्मार्ग के पक्षपाती धर्मोपदेश देनेवाला, सद्धर्मयुक्त हो इससे वो उन्मार्ग के देशक अभिमान करने में रक्त न बने । सर्वथा सर्व तरह से गुरु को अप्रमत्त बनना चाहिए, लेकिन प्रमत्त नहीं बनना चाहिए । यदि कोई प्रमादी बने तो वो काफी बूरे भावी और असुंदर लक्षणवाले समझना, इतना ही नहीं लेकिन न देखनेलायक महापापी है, ऐसा समझना ।

यदि वो सम्यक्त्व के बीजवाले हो तो वो खुद को दुश्चरित्र को जिस प्रकार हुआ हो उस प्रकार अपने या दूसरों के शिष्य समुदाय को कहे कि–मैं वाकई दुरंत पंत लक्षणवाला, न देखने लायक, महापाप कर्म करनेवाला हूँ। मैं सम्यग् मार्ग को नष्ट करनेवाला हूँ । ऐसे खुद की बुराई करके गुरु के सामने गर्हा करके उनकी आलोचना करके जिस प्रकार शास्त्र में कहा हो उस प्रकार प्रायश्चित्त का सेवन कर दे तो वो कुछ आराधक बने । यदि वो शल्य रहित, माया कपट रहित हो तो, वैसी आत्मा सन्मार्ग से चूकती नहीं । शायद सन्मार्ग से भ्रष्ट हो तो वो आराधक नहीं होती

सूत्र – ८२१

हे भगवंत ! कैसे गुणयुक्त गुरु हो तो उसके लिए गच्छ का निक्षेप कर सकते हैं ? हे गौतम ! जो अच्छे व्रतवाले, सुन्दर शीलवाले, दृढ़ व्रतवाले, दृढ़ चारित्रवाले, आनन्दित शरीर के अवयववाले, पूजने के लायक, राग रहित, द्वेष रहित, बड़े मिथ्यात्व के मल के कलंक जिसके चले गए हैं वैसे, जो उपशान्त हैं, जगत की दशा को अच्छी तरह से पहचानते हो, काफी महान वैराग में लीन हो, जो स्त्रीकथा के खिलाफ हो, जो भोजन विषयक कथा के प्रत्यनीक हो, जो चोर विषयक कथा के खिलाफ हो, जो काफी अनुकम्पा करने के स्वभाववाले हो, जो परलोक का नुकसान करनेवाले ऐसे पापकार्य करने से डरनेवाले, जो कुशील के खिलाफ हो, शास्त्र के रहस्य के जानकार हो, ग्रहण किए गए शास्त्र में सारवाले, रात-दिन हर एक समय क्षमा आदि अहिंसा लक्षणवाले दश तरह के श्रमण धर्म में रहे हो, बारह तरह के तप में उद्यमवाले हो, हंमेशा पाँच समिति और तीन गुप्ति में उपयोगवाले हो, जो अपनी शक्ति के अनुसार अठ्ठारह हजार शीलांग की आराधना करते हो, १७ तरह के संयम की विराधना न करते हो, जो उत्सर्ग मार्ग की रुचिवाले हो, तत्त्व की रूचिवाले हो, जो शत्रु और मित्र दोनों पक्ष के प्रति समान भाववाले हो, जो इहलोक-परलोक आदि साँत तरह के भयस्थान से विप्रमुक्त हो, आँठ तरह के मदस्थान का जिन्होंने सर्वथा त्याग किया हो, नौ तरह की ब्रह्मचर्य की गुप्ति की विराधना से भयमुक्त, बहुश्रुत ज्ञान के धारक, आर्य कुल में जन्मे हुए, किसी भी प्रसंग में दीनताभाव रहित, क्रोध न करनेवाले, आलस रहित, अप्रमादी, संयती वर्ग के आवागमन के विरोधी, निरंतर सतत धर्मोपदेश के दाता, सतत ओघ सामाचारी के प्ररूपक, साधुत्व की मर्यादा में रहने वाले, असामाचारी के भयमुक्त, आलोचना योग्य प्रायश्चित्त दान में समर्थ, वन्दनादि आदि सातों मांडली के विराधना के ज्ञाता, बडी दीक्षा-उपस्थापना योगादि क्रिया के उद्देश-समुद्देश की विराधना के ज्ञाता हो ।

जो काल-क्षेत्र-द्रव्य-भाव और अन्य भावान्तरो के ज्ञाता हो, जो कालादि आलंबन कारणों से मुक्त हो, जो बालसाधु, वृद्धसाधु, ग्लान, नवदीक्षित आदि को संयम में प्रवर्ताने में कुशल हो, जो ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि गुणों की प्ररूपणा करते हो, उनका पालन और धारण करते हो, प्रभावक हो, दृढ सम्यक्त्ववाले हो, जो खेदरहित हो, धीरजवाले हो, गंभीर हो, अतीशय सौम्यलेश्यायुक्त हो, किसी से पराभाव पाने वाले न हो, छ काय जीव समारंभ से सर्वथा मुक्त हो, धर्म में अन्तराय करने से भयभीत हो, सर्व आशातना से डरने वाले हो, जो ऋद्धि आदि गारव

और रौद्र एवं आर्त्तध्यान से मुक्त हो, जो सर्व आवश्यक क्रिया करने में उद्यमी एवं वशेष प्रकार से लब्धियुक्त हो ।

जो अकस्मात् प्रसंग में भी, किसी की प्रेरणा हो या कोई निमंत्रण करे तो भी अकार्य आचरण न करे, ज्यादा निद्रा या ज्यादा भोजन न करते हो, सर्व आवश्यक, स्वाध्याय, ध्यान, प्रतिमा, अभिग्रह, घोर परीषह-उपसर्ग को जीतनेवाले हो, उत्तम पात्र के संग्रही, अपाज्ञ को परठने की विधि के ज्ञाता, अखंडीत देहयुक्त, परमत एवं स्वमत के ज्ञाता, क्रोधादि कषाय, अहंकार, ममत्व, क्रीडा, कंदर्प आदि से सर्वथा मुक्त, धर्मकथा कहनेवाले, विषयाभिलास आदि में वैराग्य उत्पन्न करनेवाले, भव्यात्मा को प्रतिबोध करनेवाले एवं-गच्छ के भार को स्थापन करने के योग्य, दो गण के स्वामी हैं ।

गण को धारण करनेवाले, तीर्थ स्वरूप, तीर्थ करनेवाले, अर्हन्त, केवली, जिन, तीर्थ की प्रभावना करनेवाले, वंदनीय, पूजनीय, नमंसरणीय (नमस्कार करने के लायक) है । दर्शनीय है । परम पवित्र, परम कल्याण स्वरूप हैं, वो परम मंगल रूप है, वो सिद्धि (की कारण) है, मुक्ति है, मोक्ष है । शिव है । रक्षण करनेवाले है, सिद्ध है, मुक्त है, पार पाए हुए है, देव है, देव के भी देव है, हे गौतम ! इस तरह के गुणवाले हो, उसके लिए गण की स्थापना करना, करवाना और निक्षेप करण की अनुमोदना करना, अन्यथा हे गौतम ! आज्ञा का भंग होता है ।

सूत्र – ८२२

हे भगवंत ! कितने अरसे तक यह आज्ञा प्रवेदन की है ? हे गौतम ! जब तक महायशवाले, महासत्त्ववाले, महागुणभाग, श्री प्रभुनाम के अणगार होंगे तब तक आज्ञा का प्रवर्तन होगा । हे भगवन् ! कितने समय के बाद श्री प्रभ नाम के अणगार होंगे ? हे गौतम ! दुरन्त प्रान्त-तुच्छ लक्षणवाला न देखने के लायक रौद्र, क्रोधी, प्रचंड, कठिन, उग्रभारी, दंड़ करनेवाले, मर्यादा रहित, निष्करुण, निर्दय, क्रूर, महाक्रूर, पाप मतिवाला, अनार्य मिथ्यादृष्टि, ऐसा कल्कि राजा होगा । वो राजा भिक्षाभ्रमण करने की इच्छावाले 'श्री श्रमण संघ' को कदर्थना पहुँचाएंगे, परेशान करेंगे तब हे गौतम ! जो कोई वहाँ शीलयुक्त महानुभाव अचलित सत्त्ववाले तपस्वी अणगार होंगे । उनका, वज्र जिनके हाथमें है वैसे, ऐरावत हाथी पर बैठकर गमन करनेवाले सौधर्म इन्द्र महाराजा सान्निध्य करेंगे ।

उसी तरह हे गौतम ! देवेन्द्र से वंदित प्रत्यक्ष देखे हुए प्रमाणवाला श्री श्रमणसंघ प्राण अर्पण करने के लिए तैयार होते हैं । लेकिन पाखंड़ धर्म के लिए तैयार नहीं होते । जितने में हे गौतम ! जिनको एक दूसरे का सहारा नहीं है, अहिंसा लक्षणवाले, क्षमादि दश तरह का जो एक ही धर्म है, अकेले देवाधिदेव अरिहंत भगवंत ही, एक जिनालय, एक वंदनीय, पूजनीय, सत्कार करने के लायक, सन्मान करने के लायक, महायश-महासत्त्ववाले, महानुभाग जिन्हें है ऐसे, दृढ़ शील, व्रत, नियम को धारण करनेवाले तपोधन साधु थे । वो साधु चन्द्र समान सौम्य-शीतल लेश्यावाले, सूरज की तरह चमकती तप की तेज राशि समान, पृथ्वी की तरह परिषह-उपसर्ग सहने के लिए समर्थ, मेरु पर्वत की तरह अड़ोल अहिंसा आदि लक्षणवाले क्षमादि दश तरह के धर्म के लिए रहे, मुनिवर अच्छे श्रमण के समुदाय से परीवरित थे, बादल रहित साफ आकाश हो, उसमें शरद पूर्णिमा के निर्मल चन्द्र की तरह कईं ग्रह-नक्षत्र से परीवरित हो वैसा ग्रहपति चन्द्र जैसे काफी शोभा पाता है वैसे यह श्रीप्रभ नाम के अणगार गण समुदाय के बीच अधिक शोभा पाते थे । हे गौतम !श्री प्रभ अणगार ने इतने समय तक इस आज्ञा का प्रवेदन किया

सूत्र – ८२३-८२४

हे भगवंत ! उसके बाद के काल में क्या हुआ ? हे गौतम ! उसके बाद के काल समय में जो कोई आत्मा छ काय जीव के समारम्भ का त्याग करनेवाला हो, वो धन्य, पूज्य, वंदनीय, नमस्करणीय, सुंदर जीवन जीनेवाले माने जाते हैं । हे भगवंत ! सामान्य पृच्छा में इस प्रकार यावत् क्या कहना ? हे गौतम ! अपेक्षा से कैसी आत्मा उचित है । और (प्रव्रज्या के लिए) कोई उचित नहीं है । हे भगवंत ! किस कारण से ऐसा कहते हैं ? हे गौतम ! सामान्य से जिनको प्रतिषेध किया हो और जिन्हें प्रतिषेध न किया हो, इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि एक

उचित है और एक उचित नहीं है । तो हे भगवंत ! ऐसे कौन-कितने हैं कि जिन्हें सामान्य तोर पर प्रतिषेध किया है? और प्रतिषेध नहीं किया है । हे गौतम ! एक ऐसे है कि जो खिलाफ हैं और एक खिलाफ नहीं हैं । जो खिलाफ है उसका प्रतिषेध किया जाता है । और जो खिलाफ नहीं है उसका प्रतिषेध नहीं किया जाता । हे भगवंत ! कौन खिलाफ है और कौन नहीं ?

हे गौतम ! जो जिस देश में दुगंछा करने के लायक हो, जिन-जिन देश में दुगंछित हो, जिस देश में प्रतिषेध किया हो उस देश में खिलाफ है । जो किसी देश में दुगुंछनीय नहीं है उस देश में प्रतिषेध्य नहीं है उस देश में खिलाफ नहीं है । हे गौतम ! वहाँ, जिस-जिस देश में खिलाफ माना जाता हो तो उसे प्रव्रज्या मत देना । जो कोई जिस देश में खिलाफ न माने जाते हो तो उन्हें प्रव्रज्या देनी चाहिए ।

हे भगवंत ! किस देश में कौन खिलाफ और कौन खिलाफ न माना जाए ? हे गौतम ! यदि कोई पुरुष या स्त्री राग से या द्वेष से, पश्चात्ताप से, क्रोध से, लालच से, श्रमण को, श्रावक को, माता-पिता को, भाई को, बहन को, भाणेज को, पुत्र को, पौत्र को, पुत्री को, भतीजे को, पुत्रवधू को, जमाईराज को, बीबी को, भागीदार को, गोत्रीय को, सजाति को, विजाति को, स्वजनवाले को, ऋद्धिरहित को, स्वदेशी को, परदेशी को, आर्य को, म्लेच्छ को मार डाले या मरवा डाले, उपद्रव करे या उपद्रव करवाए, वो प्रव्रज्या के लिए अनुचित हैं । वो पापी है, निन्दित है । गर्हणीय है । दुगुंछा करने के लायक हैं । वो दीक्षा के लिए प्रतिषेधित है । वो आपत्ति है । विघ्न है । अपयश करवानेवाला है । अपकीर्ति हृदयानेवाला है, उन्मार्ग पाया हुआ है, अनाचारी है, राज्य में भी जो दुष्ट हो, ऐसे ही दूसरे किसी व्यसन से पराभवित, अतिसंकिलिष्ट नतीजेवाला हो, और अति क्षुधालु हो, देवादार हो, जाति, कुल, शील और स्वभाव जिसके अनजान हो, कईं व्याधि वेदना से व्याप्त शरीरवाले और रस में लोलुपी हो, कईं निद्रा करनेवाले हो, कथा करनेवाले – हँसी क्रीडा कंदर्प नाहवाद-स्वामीत्व का भाव हुकुम करनेवाला और काफी कुतूहली स्वभाववाला हो, काफी निम्न कक्षा या प्रेष्य जात का हो, मिथ्यादृष्टि या शासन के खिलाफ कुल में पैदा हुआ हो, वैसे किसी को यदि कोई आचार्य, गच्छनायक, गीतार्थ या अगीतार्थ, आचार्य के गुणयुक्त या गच्छ के नायक के गुणयुक्त हो, भावि के आचार्य या भावि के गच्छ-नायक होनेवाले हो उस (शिष्य) लालच से गारव से दो सौ जोजन भीतर प्रव्रज्या दे तो वो हे गौतम ! प्रवचन की मर्यादा का उल्लंघन करनेवाला, प्रवचन का विच्छेद करनेवाला, तीर्थ का विच्छेद करनेवाला, संघ का विच्छेद करनेवाला होता है ।

और फिर वो व्यसन से पराभवित समान है, परलोक के नुकसान को न देखनेवाला, अनाचार प्रवर्तक, अकार्य करनेवाला है । वो पापी, अति पापी, महा पापी में भी उच्च है । हे गौतम ! वाकई उसे अभिगृहीत, चंड़, रौद्र, क्रूर, मिथ्यादृष्टि समझना ।

सूत्र – ८२५

हे भगवंत ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है ? हे गौतम ! आचार में मोक्षमार्ग है लेकिन अनाचार में मोक्षमार्ग नहीं है । किस कारण से ऐसा कहा जाता है । हे भगवंत ! कौन-से आचार हैं और कौन-से अनाचार हैं ? हे गौतम ! प्रभु की आज्ञा के मुताबिक व्यवहार करना वो आचार, उस के प्रतिपक्षभूत आज्ञा के अनुसार व्यवहार न करना उसे अनाचार कहते हैं । उसमें जो आज्ञा के प्रतिपक्षभूत हो वो एकान्त में सर्व तरह से सर्वथा वर्जन के लायक है । और फिर जो आज्ञा के प्रतिपक्षभूत नहीं है वो एकान्त में सर्व तरह से सर्वथा आचरण के योग्य है । और हे गौतम ! यदि कोई ऐसा मिले कि इस श्रमणपन की विराधना करेंगे तो उसका सर्वथा त्याग करना ।

सूत्र – ८२६

हे भगवंत ! उसकी परीक्षा किस तरह करे ? हे गौतम ! जो कोई पुरुष या स्त्री श्रमणपन अंगीकार करने की अभिलाषावाले (इस दीक्षा के कष्ट से) कंपन या ध्रुजने लगे, बैठने लगे, वमन करे, खुद के या दूसरों के समुदाय की आशातना करे, अवर्णवाद बोले, सम्बन्ध करे, उसकी ओर चलने लगे या अवलोकन करे, उनके सामने देखा

करे, वेश खींच लेने के लिए हाजिर हो, किसी अशुभ उत्पात या बूरे निमित्त अपसगुन हो, वैसे को गीतार्थ आचार्य, गच्छाधिपति या दूसरे किसी नायक काफी निपुणता से निरूपण करके समजाए कि ऐसे ऐसे निमित्त जिसके लिए हो तो उसे प्रव्रज्या नहीं दे सकते । यदि शायद प्रव्रज्या दे तो बड़ा विपरीत आचरण करनेवाला-खिलाफ बनता है । सर्वथा निर्धर्म चारित्र को दूषित करता है । वो सभी तरह से एकान्त में अकार्य करने के लिए उद्यत माने जाए । उस तरह का वो चाहे जैसे भी श्रुत या विज्ञान का अभिमान करता है । कईं रूप बदलता है ।

सूत्र – ८२७-८३०

हे भगवंत ! वो बहुरुप किसे कहते हैं ? जो शिथिल आचारवाला हो ऐसा ओसन्न या कठिन आचार पालनेवाला उद्यत विहारी बनकर वैसा नाटक करे । धर्म रहित या चारित्र में दूषण लगानेवाले हो ऐसा नाटक भूमि में तरह तरह के वेश धारण करे, उसकी तरह चारण या नाटक हो, पल में राम, पल में लक्ष्मण, पल में दश मस्तक-वाला रावण बने और फिर भयानक कान, आगे दाँत नीकल आए हो, बुढ़ापे युक्त गात्रवाला, निस्तेज फिके नेत्रवाला, काफी प्रपंच भरा विदूषक हो वैसे वेश बदलनेवाला, पलभर में तिर्यंच जाति के बंदर, हनुमान या केसरी सिंह बने । ऐसे बहुरुपी, विदूषक करे वैसे बहुरुप करनेवाला हो । इस तरह हे गौतम ! शायद स्खलना से किसी असति को दीक्षा दी गई हो तो फिर उसे दूर-दूर के मार्ग के बीच आंतरा रखना । पास-पास साथ न चलना । उसके साथ सम्मान से बात-चीत न करना । पात्र मात्रक या उपकरण पडिलेहण न कराए उसे ग्रन्थ शास्त्र के उद्देश न करवाना, अनुज्ञा न देना, गुप्त रहस्य की मंत्रणा न करना ।

हे गौतम ! बताए गए दोष रहित हो उसे प्रव्रज्या देना । और फिर हे गौतम ! म्लेच्छ देश में पैदा होनेवाले अनार्य को दीक्षा न देना । उस प्रकार वेश्यापुत्र को दीक्षा न देना और फिर गणिका को दीक्षा न देना ओर नेत्र रहित को, हाथ-पाँव कटे हुए हो, खंड़ित हो उसे और छेदित कान नासिकावाले हो, कोढ़ रोगवाले को, शरीर से परु नीकल रहा हो, शरीर सड़ा हुआ हो । पाँव से लूला हो, चल न सकता हो, गूँगा, बहरा, अति उत्कट कषायवाले को और कईं पाखंड़ी का संसर्ग करनेवाले को, उस प्रकार सज्जड़ राग-द्वेष मोह मिथ्यात्व के मल से लिप्त, पुत्र का त्याग करनेवाला, पुराने-खोखले गुरु और जिनालय कईं देव देवी के स्थानक की आवक को भुगतनेवाले, कुम्हार हो और नट, नाटकीय, मल्ल, चारण, श्रुत पढ़ने में जड़, पाँव और हाथ काम न करते हो, स्थूल शरीरवाला हो उसे प्रव्रज्या न देनी ।

उस तरह के नाम रहित, बलहीन, जातिहीन, निंदीत कुलहीन, बुद्धिहीन, प्रज्ञाहीन, अन्य प्रकार के अधम जातिवाले, जिसके कुल और स्वभाव पहचाने हो ऐसे को प्रव्रज्या न देना । यह पद या इसके अलावा दूसरे पद में स्खलना हो । जल्दबाझी हो तो देश के पूर्व क्रोड़ साल के तप से उस दोष की शुद्धि हो या न भी हो ।

सूत्र – ८३१-८३२

जिस प्रकार शास्त्र में किया है उस प्रकार गच्छ की व्यवस्था का यथार्थ पालन करके कर्मरूप रज के मैल और क्लेश से मुक्त हुए अनन्त आत्मा ने मुक्ति पद पाया है । देव, असुर और जगत के मानव से नमन किए हुए, इस भुवन में जिनका अपूर्व प्रकट यश गाया गया है, केवली तीर्थंकर भगवंत ने बताए अनुसार गण में रहे, आत्म पराक्रम करनेवाले, गच्छाधिपति काफी मोक्ष पाते हैं और पाएंगे ।

सूत्र – ८३३

हे भगवंत ! जो कोई न जाने हुए शास्त्र के सद्भाववाले हो, वह विधि से या अविधि से किसी गच्छ के आचार या मंड़ली धर्म के मूल या छत्तीस तरह के भेदवाले ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य के आचार को मन से वचन से या काया से किसी भी तरह कोई भी आचार स्थान में किसी गच्छाधिपति या आचार्य के जितने अंतःकरण में विशुद्ध परिणाम होने के बाद भी बार-बार चूक जाए । स्खलना पाए या प्ररूपणा करे या व्यवहार करे तो वो

आराधक या अनाराधक गिना जाता है ? हे गौतम ! अनाराधक माना जाता है ।

हे भगवंत ! किस कारण से ऐसा कहा जाता है ? हे गौतम ! जो इस बारह अंग रूप श्रुतज्ञान महाप्रमाण और अंत रहित है । जिसकी आदि नहीं या नाश नहीं, सद्भुत चीज की सिद्धि कर देनेवाले, अनादि से अच्छी तरह से सिद्ध हुआ है । देवेन्द्र को भी वंदनीय है ऐसे अतुल बल, वीर्य, असामान्य सत्त्व, पराक्रम, महापुरुषार्थ, कांति, तेज, लावण्य, रूप, सौभाग्य, अति कला के समूह से समृद्धि से शोभित, अनन्त ज्ञानी, अपने आप प्रतिबोध पाए हुए जिनवर और अनन्त अनादि सिद्ध वर्तमान समय में सिद्ध होनेवाले, दूसरे नजदीकी काल में सिद्धि पानेवाले ऐसे अनन्ता जिनके नाम सुबह को ग्रहण करने के लायक हैं, महासत्त्ववाले, महानुभाग, तीन भुवन में एक तिलक समान, जगत में श्रेष्ठ, जगत के एक बंधु, जगत के गुरु, सर्वज्ञ सर्व जाननेवाले, सर्व देखनेवाले, श्रेष्ठ उत्तम धर्मतीर्थ प्रवर्तानेवाले, अरिहंत भगवंत भूत, भावि आदि अनागत वर्तमान निखिल समग्र गुण पर्याय सर्व चीज का सद्भाव जिसने पहचाना है, किसी की भी सहाय न लेनेवाले, सर्वश्रेष्ठ, अकेले, जिनका एक ही मार्ग है ऐसे तीर्थंकर भगवंत उन्होंने सूत्र से, अर्थ से, ग्रंथ से, यथार्थ उसकी प्ररूपणा की है, यथास्थिति अनुसेवन किया है । कहने के लायक, वाचना देने के लायक, प्ररूपणा करने के लायक, बोलने के लायक, कथन करने के लायक, ऐसे यह बारह अंग और उसके अर्थ स्वरूप गणिपिटक हैं ।

वो बारह अंग और उसके अर्थ तीर्थंकर भगवंत कि जो देवेन्द्र को भी वंदनीय है, समग्र जगत के सर्व द्रव्य और सर्व पर्याय सहित गति आगति इतिहास बुद्धि जीवादिक तत्त्व चीज के स्वभाव के सम्पूर्ण ज्ञाता हैं । उन्हें भी अलंघनीय हैं । अतिक्रमणीय नहीं है, आशातना न करने के लायक हैं । और फिर यह बारह अंगरूप श्रुतज्ञान सर्व जगत के जीव, प्राण, भूत और सत्त्व को एकान्त में हितकारी, सुखकारी कर्मनाश करने में समर्थ निःश्रेयस यानि मोक्ष के कारण समान है । भवोभव साथ में अनुसरण करनेवाले हैं । संसार का पार बतानेवाले हैं । प्रशस्त, महाअर्थ से भरपूर है, उसमें फलस्वरूप आद बताए होने से महागुण युक्त, महाप्रभावशाली है, महापुरुष ने जिसका अनुसरण किया है । परम महर्षि ने तीर्थंकर भगवंत ने उपदेश दिया है ।

जो द्वादशांगी दुःख का क्षय करने के लिए ज्ञानावरणीय आदि कर्म का क्षय करने के लिए, राग, द्वेष, आदि के बंधन से मुक्त होने के लिए, संसार-समुद्र से पार उतरने के लिए समर्थ है । ऐसा होने से वो द्वादशांगी को अंगीकार करके विचरण करूँगा । उसके अलावा मेरा कोई प्रयोजन नहीं है । इसलिए जिस किसी ने शास्त्र का सद् भाव न पहचाना हो, या शास्त्र का सार जाना हो वो, गच्छा-धिपति या आचार्य जिसके परिणाम भीतर से विशुद्ध हो तो भी गच्छ के आचार, मंड़ली के धर्म, छत्तीस तरह के ज्ञानादिक के आचार यावत् आवश्यकादिक करणीय या प्रवचन के सार को बार-बार चूके, स्खलना पाए या इस बारह अंगरूप श्रुतज्ञान के भीतर गूँथे हुए या भीतर ही एक पद या अक्षर को विपरीत रूप से प्रचार करे, आचरण करे उसे उन्मार्ग दिखानेवाला समझना । जो उन्मार्ग दिखाए वो अनाराधक बने, इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि वो एकान्ते अनाराधक हैं ।

सूत्र – ८३४

हे भगवंत ! ऐसा कोई (आत्मा) होगा कि जो इस परम गुरु का अलंघनीय परम शरण करने के लायक स्फुट-प्रकट, अति प्रकट, परम कल्याण रूप, समग्र आँठ कर्म और दुःख का अन्त करनेवाला जो प्रवचन-द्वादशांगी रूप श्रुतज्ञान उसे अतिक्रम या प्रकर्षपन से अतिक्रमण करे, लंघन करे, खंड़ित करे, विराधना करे, आशातना करे, मन से, वचन से या काया से अतिक्रमण आदि करके अनाराधक हो सकते है क्या ?

हे गौतम ! अनन्ता काल वर्तते अब दश अच्छेरा होंगे । उतने में असंख्याता अभव्यो, असंख्याता मिथ्या-दृष्टि, असंख्याता आशातना करनेवाले, द्रव्यलिंग में रहकर स्वच्छंदता से अपनी मति कल्पना के अनुसार से सत्कार करवाएंगे, सत्कार की अभिलाषा रखेंगे यह धार्मिक है–ऐसा करके कल्याण न समजनेवाले जिनेश्वर का प्रवचन अपनाएंगे, उसे अपनाकर जिह्वा रस की लोलुपता से, विषय की लोलुपता से दुःख से करके दमन कर सके

वैसी इन्द्रिय के दोष से हंमेशा यथार्थ मार्ग को नष्ट करते हैं और उन्मार्ग का फैलावा करते हैं । उस समय वो सर्व तीर्थंकर परमात्मा का अलंघनीय प्रवचन है, उसकी भी आशातना करने तक के पाप करते हैं ।

सूत्र – ८३५

हे भगवंत ! अनन्ता काल कौन-से दश अच्छेरा होंगे ? हे गौतम ! उस समय यह दश अच्छेरा होंगे । वो इस प्रकार–१. तीर्थंकर भगवंत को उपसर्ग, २. गर्भ पलटाया जाना, ३. स्त्री तीर्थंकर, ४. तीर्थंकर की देशना में अभव्य, दीक्षा न लेनेवाले के समुदाय की पर्षदा इकट्ठी होना, ५. तीर्थंकर के समवसरण में चंद्र और सूरज का अपना विमान सहित आगमन, ६. कृष्ण वासुदेव द्रौपदी को वापस लाने के लिए अपरकंका में गए तब शंख ध्वनि के शब्द से कुतूहल से एक दूसरे वासुदेव को आपस में मिलना हुआ, ७. इस भरतक्षेत्र में हरिवंशकुल की उत्पत्ति, ८. चमरोत्पात, ९. एक समय में १०८ उत्कृष्ट कायावाले की सिद्धि, १०. असंयत की पूजा सत्कार करेंगे ।

सूत्र – ८३६

हे भगवंत ! यदि किसी तरह से कभी प्रमाद दोष से प्रवचन-जैनशासन की आशातना करे क्या वो आचार्य पद पा सकते हैं ? हे गौतम ! जो किसी भी तरह से शायद प्रमाद दोष से बार-बार क्रोध, मान, माया या लोभ से, राग से, द्वेष से, भय से, हँसी से, मोह से या अज्ञात दोष से प्रवचन के किसी भी दूसरे स्थान की आशातना करे, उल्लंघन करे, अनाचार, असामाचारी की प्ररूपणा करे, उसकी अनुमोदना करे या प्रवचन की आशातना करे वो बोधि भी न पाए, फिर आचार्य पद की बात ही कहाँ ? हे भगवंत ! क्या अभवी या मिथ्यादृष्टि आचार्य पद पाए ? हे गौतम ! पा सकते हैं, इस विषय में अंगारपुरुषक आदि का दृष्टांत है । हे भगवंत ! क्या मिथ्यादृष्टि को वैसे पद पर स्थापित कर सकते हैं ? हे गौतम ! स्थापन कर सकते हैं ।

हे भगवंत ! यह यकीनन मिथ्यादृष्टि है । ऐसा कौन-सी निशानी से पहचान सकते हैं ? हे गौतम ! सर्व संग से विमुक्त होने के लिए जिस के सर्व सामायिक उचरी हो और सचित्त-प्राण सहित चीजे और पानी का परिभोग करे, अणगार धर्म को अंगीकार करके बार-बार मदिरा या तेऊकाय का सेवन करे, करवाए या सेवन करनेवाले को अच्छा मानकर उसकी अनुमोदना करे या ब्रह्मचर्य की बताई हुई नवगुप्तिओं की किसी साधु या साध्वी उसमें से एक का भी खंड़न करे, विरोधे, मन, वचन, काया से खंड़न करवाए या विराधना करवाए या दूसरा कोई खंड़न या विराधना करता हो तो उसे अच्छा मानकर, उसकी अनुमोदना करे वो मिथ्यादृष्टि है । अकेला मिथ्यादृष्टि ही नहीं लेकिन आभिग्राहिक मिथ्यादृष्टि समझे ।

सूत्र – ८३७

हे भगवंत ! जो कोई आचार्य जो गच्छनायक बार-बार किसी तरह से शायद उस तरह का कारण पाकर इस निर्ग्रन्थ प्रवचन को अन्यथा रूप से-विपरीत रूप से प्ररूपे तो वैसे कार्य से उसे कैसा फल मिले ? हे गौतम ! जो सावद्याचार्य ने पाया ऐसा अशुभ फल पाए, हे गौतम ! वो सावद्याचार्य कौन थे ? उसने क्या अशुभ फल पाया? हे गौतम ! यह ऋषभादिक तीर्थंकर की चोबीस के पहले अनन्त काल गया उसके पहले किसी दूसरी चोबीसी में जैसा में सात हाथ प्रमाण की कायावाला हूँ वैसी कायावाले धर्म तीर्थंकर थे । उनके तीर्थ में सात आश्चर्य हुए थे । अब किसी समय वो तीर्थंकर भगवंत का परिनिर्वाण हो गया तब कालक्रम से अनुरागी हुए समूह को पहचानकर उस समय न जाने हुए शास्त्र के सद्भाववाले, तीन गारव रूप, मदिरा में बेचैन, केवल नाम क आचार्य और गच्छ-नायक ने श्रावक के पास से धन पाकर द्रव्य इकट्ठा करके हजार स्तंभवाला ऊंचा ममत्वभाव से अपने नाम का चैत्यालय बनाकर वो दुरन्त पंत लक्षणवाले अधमाधमी उसी में रहने लगे ।

उनमें बलवीर्य पराक्रम पुरुषार्थ होने के बावजूद भी वो पुरुषकार पराक्रम बल वीर्य को छिपाकर उग्र अभिग्रह करने के लिए अनियत विहार करने का त्याग करके-छोड़कर नित्यवास का साश्रय करके, संयम आदि में

शिथिल होकर रहे थे । पिछे से यह लोक और परलोक के नुकसान की फीक्र का त्याग करके, लम्बे अरसे का संसार अंगीकार करके वो ही मठ और देवकुल में अति परिग्रह, बुद्धि, मूर्च्छा, ममत्वकरण, अहंकार आदि करके, संयम मार्ग में पीछे पड़े पराभवित होने के बाद खुद तरह-तरह की पुष्प की माला आदि से (गृहस्थ की तरह) देवार्चन करने के लिए उद्यमशील होने लगे । और फिर जिस शास्त्र के सार समान श्रेष्ठ ऐसा सर्वज्ञ का वचन है, उसे काफी दूर से त्याग किया । उसी के अनुसार सर्व जीव, सर्व प्राण, सर्व भूत, सर्व सत्त्व का वध न करना, उनको दर्द न देना । उन्हें परिताप का देना, उन्हें ग्रहण न करना यानि पकड़कर बन्द न करना । उनकी विराधना न करनी, किलामणा न करना, उनका उपद्रव न करना, सूक्ष्म बादर, त्रस या स्थावर, पर्याप्त, अपर्याप्त, एकेन्द्रिय, जो कोई बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चऊरिन्द्रिय जीव हो, पंचेन्द्रिय जीव हो वो सभी त्रिविध-त्रिविध से मन, वचन, काया से मारना नहीं, मरवाना नहीं, मारनेवाले को अच्छा मत समझना, उनकी अनुमोदना न करना, ऐसी खुद न अपनाई हुई महाव्रत की प्रतिज्ञा भी भूल जाए । और फिर हे गौतम ! मैथुन एकान्त में या निश्चय से दृढ़ता से और जल एवं अग्नि का समारम्भ सर्वथा सर्व तरह से मुनि खुद वर्जन करे । इस तरह का धर्म ध्रुव, शाश्वत, नित्य है ऐसा लोगों का खेद दुःख को जाननेवाले सर्वज्ञ तीर्थंकर भगवंत ने प्ररूपण किया है ।

सूत्र – ८३८

हे भगवंत ! यदि कोई साधु या साध्वी या निर्ग्रन्थ अणगार द्रव्यस्तव करे उसे क्या कहे ? हे गौतम ! जो कोई साधु या साध्वी या निर्ग्रन्थ अणगार द्रव्यस्तव करे वो असंयत-अयति देवद्रव्य का भोगिक या देव का पूजारी उन्मार्ग की प्रतिष्ठा करनेवाला, शील को दूर से त्याग करनेवाला, कुशील, स्वच्छंदाचारी ऐसे शब्द से बुलाते हैं ।

सूत्र – ८३९

उसी तरह हे गौतम ! इस तरह अनाचारमे प्रवर्तनेवाले कईं आचार्य एवं गच्छनायक के भीतर एक मरकत रत्न समान कान्तिवाले कुवलयप्रभ नाम के महा तपस्वी अणगार थे । उन्हें काफी महान जीवादिक चीज विषयक सूत्र और अर्थ सम्बन्धी विस्तारवाला ज्ञान था । इस संसार समुद्र में उन योनि में भटकने के भयवाले थे । उस समय उस तरह का असंयम प्रवर्तने के बावजूद, अनाचार चलता होने के बाद, कुछ साधर्मिक ससंयम और अनाचार का सेवन करते रहने के बाद भी वो कुवलयप्रभ अनगार तीर्थंकर की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते थे ।

अब किसी समय जिसने बल वीर्य पुरुषकार और पराक्रम नहीं छिपाया ऐसे उस सभी शिष्य के परिवार सहित सर्वज्ञ प्ररूपित, आगम सूत्र उसका अर्थ और उभय के अनुसार, राग, द्वेष, मोह, मिथ्यात्व, ममत्वभाव, अहंकार रहित, सभी चीजों में द्रव्य क्षेत्र-काल और भाव से निर्ममत्व हुए, ज्यादा उनके कितने गुण बताए इस तरह खदान, नगर, खेड़, कबड़, मंड़प, द्रोणमुख आदि स्थान विशेष में कईं भव्यात्माओं को संसार समान कैदखाने से छुड़ानेवाली ऐसी सुंदर धर्मकथा का उपदेश देते-देते विचरण करते थे । उसी प्रकार उनके दिन बीतते थे ।

अब किसी दिन विहार करते-करते वो महानुभाव वहाँ आए कि जहाँ पहले हंमेशा एक स्थान पर वास करनेवाले रहते थे। यह महा तपस्वी है ऐसा मानकर वंदन कर्म आसन दिया इत्यादिक समुचित विनय करके उनका सन्मान किया उस प्रकार वो सुख से वहाँ बैठे । बैठकर धर्मकथादिक के विनोद करवाते हुए वहाँ से जाने के लिए कोशीश करने लगे । तब वो महानुभाग कुवलयप्रभ आचार्य को उन्होंने दुरान्त प्रान्त अधम लक्षणवाले वेश से आजीविका करनेवाले, भ्रष्टाचार सेवन करनेवाले, उन्मार्ग प्रवर्तनेवाले आभिग्राहक मिथ्यादृष्टि ने कहा कि–हे भगवंत ! यदि आप यहाँ एक वर्षाकाल का चातुर्मास रहने का तय करो तो तुम्हारी आज्ञा से यहाँ उतनते जिन चैत्यालय तय करवाने के लिए हम पर कृपा करके आप यहीं चातुर्मास करो ।

हे गौतम ! उस समय वो महानुभाव कुवलयप्रभ ने कहा कि–अरे प्रिय वचन बोलनेवाले ! जो कि जिनालय है, फिर भी यह पाप समान है । मैं कभी भी केवल वचन से भी उसका अनुमोदन नहीं करूँगा । इस प्रकार शास्त्र

के सारभूत उत्तम तत्त्व को यथास्थित अविपरीत निःशंक कहते हुए वो मिथ्यादृष्टि साधुवेशधारी पाखंड़ी के बीच यथार्थ प्ररूपणा से तीर्थंकर नामगोत्र उपार्जन किया । एक भव बाकी रहे वैसा संसार समुद्र सूखा दिया ।

वहाँ जिसका नाम नहीं लिया जाता वैसा दिष्ट नाम का संघ इकट्ठा करनेवाला था । उसने एवं कईं पापमति वाले वेशधारी आपस में इकट्ठे होकर हे गौतम ! उस महातपस्वी महानुभाव का जो कुवलयप्रभ नाम था उसके बजाय नाम का विलाप किया । इतना ही नहीं, लेकिन साथ मिलकर ताली देकर 'सावद्याचार्य' ऐसे दूसरे नाम का स्थापन किया । उसी नाम से अब उन्हें बुलाने लगे । वो ही नाम प्रसिद्ध हुआ । हे गौतम ! वैसे अप्रशस्त शब्द से बुलाने के बावजूद भी उसी तरह नाम बोलने के बाद भी वो सहज भी कोपित नहीं हुए थे ।

सूत्र – ८४०

अब किसी समय दुराचारी अच्छे धर्म से पराङ्मुख होनेवाले साधुधर्म और श्रावक धर्म दोनों से भ्रष्ट होनेवाला केवल भेष धारण करनेवाले हम प्रव्रज्या अंगीकार की है–ऐसा प्रलाप करनेवाले ऐसे उनको कुछ समय गुजरने के बाद भी वो आपस में आगम सम्बन्धी सोचने लगे कि–श्रावक की गैरमोजुदगी में संयत ऐसे साधु ही देवकुल मठ उपाश्रय की देखभाल करे और जिनमंदिर खंड़ित हुए हो, गिर गए हो तो उसका जीर्णोद्धार करवाए, मरम्मत करवाए, यह काम करते करते यदि कोई आरम्भ, समारम्भ हो उसमें साधु हो तो भी उन्हें दोष नहीं लगता । और फिर कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि संयम ही मोक्ष दिलवाता है । कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि–जिन प्रासाद जिन चैत्य की पूजा-सत्कार-बलि विधान आदि करने से तीर्थ से शासन की उन्नति-प्रभावना होती है और वो ही मोक्ष गमन का उपाय है । इस प्रकार यथार्थ परमार्थ न समझनेवाले पापकर्मी उन्हें ठीक लगे वो मुख से प्रलाप करते थे

उस समय दो पक्ष में विवाद पैदा हुआ । उनमें किसी वैसे आगम के माहितगार कुशल पुरुष नहीं है कि जो इस विषय में युक्त या अयुक्त क्या है उसके बारे में सोच सके या प्रमाणपूर्वक विवाद को समा सके । और उसमें से एक ऐसा कहे कि इस विषय के जानकार कुछ आचार्य कुछ स्थान पर रहे हैं । दूसरा फिर दूसरे का नाम बताए, ऐसे विवाद चलते-चलते एक ने कहा कि यहाँ ज्यादा प्रलाप करने से क्या ? हम सबको इस विषय में सावद्याचार्य जो निर्णय दे वो प्रमाणभूत । दूसरे सामने के पक्षवाले ने भी उस बात को अपनाया और कहा कि उन्हें जल्द बुलाओ।

हे गौतम ! उन्हें बुलाए यानि दूर देश से वो सतत अप्रतिबद्ध विहार करते करते सात महिने में आ पहुँचे । बीच में एक आर्या को उसके दर्शन हुए । कष्टकारी उग्र तप और चारित्र से शोषित शरीरवाले, जिसके शरीर में केवल चमड़ी और हड्डी बाकी रहे हैं, तप के तेज से अति दीपायमान ऐसे उस सावद्याचार्य को देखकर काफी विस्मय पाइ हुई उस पल में वितर्क करने लगी कि–क्या यह महानुभाव वो अरिहंत है कि यह मूर्तिमान धर्म है ? ज्यादा क्या सोचे ? देवेन्द्र को भी वंदनीय है । उसके चरण युगल मुजे वंदन करने के लायक है... ऐसा चिन्तवन करके भक्तिपूर्ण हृदयवाली उनकी और प्रदक्षिणा देकर मस्तक से पाँव का संघट्टा हो जाए वैसे अचानक सहसा वो सावद्याचार्य को प्रणाम करते और पाँव का संघट्टा होते देखा । किसी समय वो आचार्य उनको जिस तरह जगत के गुरु तीर्थंकर भगवंत ने उपदेश दिया है । उस प्रकार गुरु के उपदेश के अनुसार क्रमानुसार यथास्थित सूत्र और अर्थ की प्ररूपणा करते हैं, उस प्रकार वो उसकी सद्दहणा करते हैं ।

एक दिन हे गौतम ! उस प्रकार कहा कि ग्यारह अंग; चौदह पूर्व, बारह अंग रूप श्रुतज्ञान का सार, रहस्य हो, नवनीत हो तो समग्र पाप का परिहार और आँठ कर्म को समझानेवाले महानिशीथ श्रुतस्कंध का पाँचवा अध्ययन है । हे गौतम ! इस अध्ययन में जितने में विवेचन करते थे उतने में यह गाथा आई ।

सूत्र – ८४१

''जिस गच्छ में वैसी कारण पैदा हो और वस्त्र के आंतरा सहित हस्त से स्त्री के हाथ का स्पर्श करने में और अरिहंत भी खुद कर स्पर्श करे तो उस गच्छ को मुलगुण रहित समझना ।''

सूत्र – ८४२

तब अपनी शंकावाला उन्होंने सोचा कि यदि यहाँ मैं यथार्थ प्ररूपणा करूँगा तो उस समय वंदना करती उस आर्या ने अपने मस्तक से मेरे चरणाग्र का स्पर्श किया था, वो सब इस चैत्यवासी ने मुझे देखा था । तो जिस तरह मेरा सावद्याचार्य नाम बना है, उस प्रकार दूसरा भी वैसा कुछ अवहेलना करनेवाला नाम रख देंगे जिससे सर्व लोक में मै अपूज्य बनूँगा । तो अब मैं सूत्र और अर्थ अन्यथा प्रखण करूँ । लेकिन ऐसा करने में महा आशातना होगी तो अब मुझे क्या करना ? तो इस गाथा की प्ररूपणा करे कि न करे ? अगर अलग-अलग रूप से प्ररूपणा करे ? या अरेरे यह युक्त नहीं है । दोनों तरह से काफी गर्हणीय है । आत्महित में रहे, विरुद्ध प्ररूपणा करना वो उचित नहीं है । क्योंकि शास्त्र का यह अभिप्राय है कि जो भिक्षु बारह अंग रूप श्रुतवचन को बार-बार चूक जाए, स्खलना पाने में प्रमाद करे । शंकादिक के भय से एक भी पद-अक्षर, बुँद, मात्रा को अन्यथा रूप से खिलाफ प्ररूपणा करे, संदेहवाले सूत्र और अर्थ की व्याख्या करे । अविधि से अनुचित को वाचना दे, वो भिक्षु अनन्त संसारी होता है । तो अब यहाँ मैं क्या करूँ ? जो होना है वो हो । गुरु के उपदेश अनुसार यथार्थ सूत्रार्थ को बताऊं ऐसा सोचकर हे गौतम ! समग्र अवयव विशुद्ध ऐसी उस गाथा का यथार्थ व्याख्यान किया । इस अवसर पर हे गौतम ! दुरन्त प्रान्त अधम लक्षणवाले उस वेशधारी ने सावद्याचार्य को सवाल किया कि–यदि ऐसा है तो तुम भी मुल गुण रहित हो । क्योंकि तुम वो दिन याद करे तो वो आर्य उन्हें वंदन करने की इच्छावाली थी तब वंदन करते करते मस्तक से पाँव का स्पर्श किया ।

उस समय इस लोक के अपयश से भयभीत अति अभिमान पानेवाले उस सावद्याचार्य का नाम रख दिया वैसे अभी कुछ भी वैसा नाम रखेंगे तो सर्व लोक में मैं अपूज्य बनूँगा । तो अब यहाँ मैं क्या समाधान दूँ ? ऐसा सोचते हुए सावद्याचार्य को तीर्थंकर का वचन याद आया कि–जो किसी आचार्य का गच्छनायक या गच्छाधिपति श्रुत धारण करनेवाला हो उसने जो कुछ भी सर्वज्ञ अनन्तज्ञानी भगवंत ने पाप और अपवाद स्थानक को प्रतिषेधे हो वो सर्व श्रुत अनुसार जानकर सर्व तरह से आचरण करे, आचरण करनेवाले को अच्छा न माने, उसकी अनुमोदना न करे, क्रोध से, मान से, माया से, लोभ से, भय से, हँसी से, गारव से, दर्प से, प्रमाद से बार-बार चूक जाने या स्खलना होने से दिन में या रात को अकेला हो या पर्षदा में हो, सोते हुए या जागते हुए । त्रिविध त्रिविध से मन, वचन या काया से यह सूत्र या अर्थ के एक भी पद के यदि कोई विराधक हो । वो भिक्षु बार-बार निंदनीय, गर्हणीय, खींसा करने के लायक, दुगंछा करने के लायक, सर्वलोक से पराभव-पानेवाला, कईं व्याधि वेदना से व्याप्त शरीरवाला, उत्कृष्ट दशावाले अनन्त संसार सागर में परिभ्रमण करनेवाले होते हैं, उसमें परिभ्रमण करने से एक पल भी कईं शायद भी शान्ति नहीं पा सकता । तो प्रमादाधीन हुआ पापी अधमाधम हीन सत्त्ववाले कायर पुरुष समान मुझे यहीं यह बड़ी आपत्ति पैदा हुई है कि जिससे मैं यहाँ युक्तिवाला किसी समाधान देने के लिए समर्थ नहीं हो सकता । और परलोक में भी अनन्त भव परम्परा में भ्रमणा करते हुए अनन्ती बार के घोर भयानक दुःख भुगतनेवाला बनूँगा । वाकई मैं मंद भाग्यवाला हूँ । इस प्रकार सोचनेवाले ऐसे सावद्याचार्य को दुराचारी पापकर्म करनेवाले दुष्ट श्रोता ने अच्छी तरह से पहचान लिया कि, यह झूठा काफी अभिमान करनेवाला है । उसके बाद क्षोभ पाए हुए मनवाले उसे जानकर उस दुष्ट श्रोताओं ने कहा कि जब तक इस संशय का छेदन नहीं होगा तब तक व्याख्यान मत उठाना, इसलिए इसका समाधान दुराग्रह को दूर करने के लिए समर्थ प्रौढ़युक्ति सहित दो ।

तब उसने सोचा कि अब उसका समाधान पाए बिना वो यहाँ से नहीं जाएंगे । तो अब मैं उसका समाधान किस तरह दूँ ? ऐसा सोचते हुए फिर से हे गौतम ! उस दुराचारी ने उसे कहा कि तुम ऐसे चिन्ता सागर में क्यों डूब गए हो ? जल्द ही इस विषय का कुछ समाधान दो । और फिर ऐसा समाधान दो कि जिससे बताई हुई आस्तिकता में तुम्हारी युक्ति एतराज बिना-अव्यक्तचारी हो । उसके बाद लम्बे अरसे तक हृदय में परिताप महसूस करके सावद्याचार्य ने मन से चिन्तवन किया और कहा कि इस कारण से जगद्गुरु ने कहा है कि –

सूत्र – ८४३

कच्चे घड़े में डाला हुआ जल जिस तरह जल और उस घड़े का विनाश करता है, वैसे अपात्र में दिये सूत्र और अर्थ को और सूत्रार्थ को नष्ट करते हैं । इस तरह का सिद्धांत रहस्य है कि अल्पतुच्छ आधार नष्ट होता है ।

सूत्र – ८४४

तब भी उस दुराचारी ने कहा कि तुम ऐसे आड़े-टेढ़े रिश्ते के बिना दुर्भाषित वचन का प्रलाप क्यों करते हो? यदि उचित समाधान देने के लिए शक्तिमान न हो तो खड़े हो जाव, आसन छोड़ दे यहाँ से जल्द आसन छोड़कर नीकल जाए । जहाँ तुमको प्रमाणभूत मानकर सर्व संघ ने तुमको शास्त्र का सद्भाव कहने के लिए फरमान किया है । अब देव के उपर क्या दोष डाले ?

उसके बाद फिर भी काफी लम्बे अरसे तक फिक्र पश्चात्ताप करके हे गौतम ! दूसरा किसी समाधान न मिलने से लम्बा संसार अंगीकार करके सावद्याचार्य ने कहा कि आगम उत्सर्ग और अपवाद मार्ग से युक्त होता है । तुम यह नहीं जानते कि एकान्त पक्ष मिथ्यात्व है । जिनेश्वर की आज्ञा अनेकान्तवाली होती है । हे गौतम ! जैसे ग्रीष्म के ताप से संताप पानेवाले मोर के कुल को वर्षाकाल के नए मेघ की जलधारा जैसे शान्त करे, अभिनन्दन दे, वैसे वो दुष्ट श्रोताओने उसे काफी मानपूर्वक मान्य करके अपनाया उसके बाद हे गोतम ! एक ही बचन उच्चारने के दोष से अनन्त संसारीपन का कर्म बांधा ? उसका प्रतिक्रमण भी किए बिना पाप-समूह के महास्कंध इकट्ठा करवानेवाले उस उत्सूत्र वचन का पश्चात्ताप किए बिना मरकर वो सावद्याचार्य भी व्यंतर देव में पैदा हुए । वहाँ से च्यवकर वो परदेश गए हुए पतिवाली प्रति वासुदेव के पुरोहित की पुत्री के गर्भ में पैदा हुआ । किसी समय उसकी माता पुरोहित की पत्नी की नजर में आया कि, पति परदेश में गया हुआ है और पुत्री गर्भवती हुई है, वो जानकर हा हा हा यह मेरी दुराचारी पुत्री ने मेरे सर्व कुल पर मशी का कुचड़ा लगाया । इज्जत पर दाग लग गया । यह बात पुरोहित को बताई वो बात सुनकर दीर्घकाल तक काफी संताप पाकर हृदय से निर्धार करके पुरोहित ने उसे देश से निकाल दिया क्योंकि यह महा असाध्य नीवारण न कर सके वैसा अपयश फैलानेवाला बड़ा दोष है, उसका मुझे काफी भय लगता है ।

अब पिता के नीकाल देने के बाद कहीं भी स्थान न पानेवाले थोड़े समय के बाद शर्दी गर्मी पवन से परेशान होनेवाली अकाल के दोष से क्षुधा से दुर्बल कंठवाली उसने घी, तेल आदि रस के व्यापारी के घर में दासपन से प्रवेश किया । वहाँ काफी मदिरापान करनेवाले के पास से झूठी मदिर पाकर इकट्ठी करते हैं । और बार-बार झूठा भोजन खाते हैं । किसी समय हंमेशा झूठा भोजन करनेवाली और वहाँ काफी मदिरा आदि पीने के लायक चीजे देखकर मदिरा का पान करके और माँस का भोजन करके रही थी । तब उसे उस तरह का दोहला (इच्छा) पैदा हुई कि मैं बहुत मद्यपान करूँ । उसके बाद नट, नाटकिया, छात्र धरनेवाले, चारण, भाट, भूमि खुदनेवाले, नौकर, चोर आदि हल्की जातिवाले ने अच्छी तरह से त्याग करनेवाली, मस्तक, पूँछ, कान, हड्डी, मृतक आदि शरीर अवयव । बछड़े के तोड़े हुए अंग जो खाने के लिए उचित न हो और फेंक दिए हो वैसे हलके झूठे माँस मदिरा का भोजन करने लगी । उसके बाद वो झूठे मीट्टी के कटोरे में जो कोई नाभि के बीच में विशेष तरह से पक्व होनेवाला माँस हो उसका भोजन करने लगी । कुछ दिन बीतने के बाद मद्य और माँस पर काफी गृद्धिवाली हुई ।

उस रस के व्यापारी के घर में से काँसा के भाजन वस्त्र या दूसरी चीज की चोरी करके दूसरी जगह बेचकर माँस रहित मद्य का भुगवटा करने लगी, व्यापारी को यह सर्व हकीकत ज्ञात हुई । व्यापारी ने राजा को फरियाद की। राजा ने वध करने का हुकुम किया । तब राज्य में इस तरह की कोई कुलधर्म है कि जो किसी गर्भवती स्त्री गुन्हेगार बने और वध की शिक्षा पाए लेकिन जब तक बच्चे को जन्म न दे तब तक उसे मार न डाले । वध करने के लिए नियुक्त किए हुए और कोटवाली आदि उसको अपने घर ले जाकर प्रसव के समय का इन्तजार करने लगे । और उसकी रक्षा करने लगे । किसी समय हरिकेश जातिवाले हिंसक लोग उसे अपने घर ले गए ।

कालक्रमे उसने सावद्याचार्य के जीव को बच्चे के रूप में जन्म दिया । जन्म देकर तुरन्त ही वो बच्चे का त्याग करके मौत के डर से अति त्रस्त होनेवाली वहाँ से भाग गई । हे गौतम ! जब वो एक दिशा से भागी और उस चंड़ाल को पता चला कि वो पापीणी भाग गई है। वध करनेवाले के आगेवान ने राजा को बिनती की, हे देव ! केल के गर्भ समान कोमल बच्चे का त्याग करके दुराचारिणी तो भाग चली । देव राजा ने प्रत्युत्तर दिया कि भले भाग गई तो उसे जाने दो, लेकिन उस बच्चे की अच्छी तरह देखभाल करना । सर्वथा वैसी कोशीश करना कि जिससे वो बच्चा मर न जाए । उसके खर्च के लिए यह पाँच हजार द्रव्य ग्रहण करो । उसके बाद राजा के हुकुम से पुत्र की तरह उस कुलटा के पुत्र का पालन-पोषण किया, कालक्रम से वो पापकर्मी फाँसी देनेवाले का अधिपति मर गया । तब राजा ने उस बच्चे को उसका बारिस बनाया । पाँचसौ चंड़ाल का अधिपति बनाया । वहाँ कसाई के अधिपति पद पर रहनेवाला वो उस तरह के न करने लायक पापकार्य करके अप्रतिष्ठान नाम की सातवीं नारक पृथ्वी में गया

इस प्रकार सावद्याचार्य का जीव सातवीं नारकी के वैसे घोर प्रचंड़, रौद्र, अति भयानक दुःख तेंतीस सागरोपम के लम्बे अरसे तक महाक्लेश पूर्वक महसूस करके वहाँ से नीकलकर यहाँ अंतरद्वीप में एक ऊंरुग जाति में पैदा हुआ । वहाँ से मरकर तिर्यंच योनि में पाड़े के रूप में पैदा हुआ । वहाँ भी किसी नरक के दुःख हो उसके समान नामवाले दुःख छब्बीस साल तक भुगतकर उसके बाद हे गौतम ! मरके मानव में जन्म लिया । वहाँ से नीकलकर उस सावद्याचार्य का जीव वसुदेव के रूप में पैदा हुआ । वहाँ भी यथा उचित आयु परिपूर्ण करके कईं संग्राम आरम्भ महापरिग्रह के दोष से मरकर सातवीं नारकी में गया । वहाँ से नीकलकर काफी दीर्घकाल के बाद गजकर्ण नाम की मानव जाति में पैदा हुआ । वहाँ भी माँसाहार के दोष से क्रूर अध्यवसाय की मतिवाला मरके फिर सातवीं नारकी के अप्रतिष्ठान नरकावास में गया । वहाँ से नीकलकर फिर तिर्यंचगति में पाड़े के रूप में पैदा हुआ । वहाँ नरक समान पारावार दुःख पाकर मरा । फिर बाल विधवा कुलटा ब्राह्मण की पुत्री की कुक्षि में पैदा हुआ ।

अब उस सावद्याचार्य का जीव कुलटा के गर्भ में था तब गुप्त तरीके से गर्भ को गिराने के लिए, सड़ने के लिए क्षार, औषध योग का प्रयोग करने के दोष से कईं व्याधि और वेदना से व्याप्त शरीरवाले, दुष्ट व्याधि से सड़नेवाले परु झरित, सल सल करते कृमि के समूहवाला वो कीड़ों से खाए जानेवाला, नरक की उपमावाले, घोर दुःख के निवासभूत बाहर नीकला । हे गौतम ! उसके बाद सभी लोग से निन्दित, गर्हित, दुगुंछा करनेवाला, नफरत से सभी लोक से पराभव पानेवाला, खान, पान, भोग, उपभोग रहित गर्भावास से लेकर सात साल, दो महिने, चार दिन तक यावज्जीव जीकर विचित्र शारीरिक, मानसिक, घोर दुःख से परेशानी भुगतते हुए मरकर भी व्यंतर देव के रूप में पैदा हुआ । वहाँ से च्यवकर मनुष्य हुआ । फिर वध करनेवाले का अधिपति और फिर उस पापकर्म के दोष से सातवीं में पहुँचा । वहाँ से नीकलकर तिर्यंच गति में कुम्हार के यहाँ बैल के रूप में पैदा हुआ । वहाँ से च्यवकर मनुष्य हुआ । फिर वध करनेवाले का अधिपति, और फिर उस पापकर्म के दोष से सातवीं में पहुँचा ।

वहाँ से नीकलकर तिर्यंच गति में कुम्हार के वहाँ बैल के रूप में पैदा हुआ । उसे वहाँ चक्की, गाड़ी, हल, अरघट्ट आदि में जुड़कर रात-दिन घुंसरी में गरदन घिसकर फोल्ले हो गए और भीतर सडा गया । खम्भे में कृमि पैदा हुई । अब जब खांध घोसरी धारण करने के लिए समर्थ नहीं है ऐसा मानकर उसका स्वामी कुम्हार इसलिए पीठ पर बोझ वहन करवाने लगा । अब वक्त गुजरने से जिस तरह खाँध में सडा हो गया उस तरह पीठ भी घिसकर सड़ गई । उसमें भी कीड़े पैदा हो गए । पूरी पीठ भी सड़ गई और उसके ऊपर का चमड़ा नीकल गया और भीतर का माँस दिखने लगा । उसके बाद अब यह कुछ काम नहीं कर सकेगा, इसलिए निकम्मा है, ऐसा मानकर छोड़ दिया । हे गौतम ! उस सावद्याचार्य का जीव सलसल कीड़ों से खाए जानेवाले बैल को छोड़ दिया । उसके बाद काफी सड़े हुए चर्मवाले, कईं कौए-कुत्ते-कृमि के कुल से भीतर और बाहर से खाए जानेवाला काटनेवाला उनतीस साल तक आयु पालन करके मरकर कईं व्याधि वेदना से व्याप्त शरीरवाला मानवगति में अति धनिक किसी बड़े घर के आदमी के वहाँ जन्म लिया । वहाँ भी वमन करने के खाश, कटु, तीखे, कषे हुए, स्वादिष्ट,

त्रिफला, गुगल आदि औषधि पीनी पड़ती, हंमेशा उसके सफाई करनी पड़े असाध्य, उपशम न हो, घोर भयानक दुःख से जैसे अग्नि में पकता हो वैसे कठिन दुःख भुगतते भुगतते उनको मिला हुआ मानव भव असफल हुआ ।

उस प्रकार हे गौतम ! सावद्याचार्य का जीव चौदह राजलोक में जन्म-मरणादिक के दुःख सहकर अनन्त काल के बाद अवरविदेह में मानव के रूप में पैदा हुआ । वहाँ लोक की अनुवृत्ति से तीर्थंकर भगवंत को वंदन करने के लिए गया प्रतिबोध पाया और दीक्षा अंगीकार करके यहाँ श्री २३ वे पार्श्वनाथ तीर्थंकर के काल में सिद्धि पाई ।

हे गौतम ! सावद्याचार्य ने इस प्रकार दुःख पाया । हे भगवंत ! इस तरह का दुस्सह घोर भयानक दुःख आ पड़ा । उन्हें भुगतना पड़ा । इतने लम्बे अरसे तक यह सभी दुःख किस निमित्त से भुगतने पड़े । हे गौतम ! उस वक्त उसने जैसे ऐसा कहा कि, उत्सर्ग और अपवाद सहित आगम बताया है । एकान्त में प्ररूपणा नहीं की जाती लेकिन अनेकान्त से प्ररूपणा करते हैं, लेकिन अप्काय का परिभोग, तेऊकाय का समारम्भ, मैथुनसेवन यह तीनों दूसरे किसी स्थान में एकान्त में या निश्चय से और दृढ़ता से या सर्वथा सर्व तरह से आत्महित के अर्थि के लिए निषेध किया है । यहाँ सूत्र का उल्लंघन किया जाए तो सम्यग् मार्ग का विनाश, उन्मार्ग का प्रकर्ष होता है, आज्ञा भंग के दोष से अनन्तसंसारी होते हैं ।

हे भगवंत ! क्या उस सावद्याचार्य ने मैथुन सेवन किया था ? हे गौतम ! सेवन किया और सेवन नहीं किया यानि सेवन किया यह भी नहीं । और सेवन न किया ऐसा भी नहीं । हे भगवंत ! ऐसे दो तरीके से क्यों कहते हो ? हे गौतम ! जो उस आर्या ने उस वक्त मस्तक से पाँव का स्पर्श किया, स्पर्श हुआ उस वक्त उसने पाँव खींचकर सिकुड़ नहीं लिया । इस वजह से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि, मैथुन सेवन किया और सेवन नहीं किया । हे भगवंत ! केवल इतनी वजह में ऐसे घोर दुःख से मुक्त कर सके वैसा बद्ध स्पृष्ट निकाचित कर्मबंध होता है क्या ? हे गौतम ! ऐसा ही है । उसमें कोई फर्क नहीं है । हे भगवंत ! उसने तीर्थंकर नामकर्म इकट्ठा किया था । एक ही भव बाकी रखा था और भवसागर पार कर दिया था । तो फिर अनन्त काल तक संसार में क्यों भटकना पड़ा ? हे गौतम ! अपनी प्रमाद के दोष की वजह से । इसलिए भव विरह इच्छनेवाले शास्त्र का सद्भाव जिसने अच्छी तरह से पहचाना है ऐसे गच्छाधिपति को सर्वथा सर्व तरह से संयम स्थान में काफी अप्रमत्त बने । इस प्रकार मैं तुम्हे कहता हूँ ।

अध्ययन-५-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

अध्ययन-६-गीतार्थविहार

सूत्र – ८४५

हे भगवंत ! जो रात-दिन सिद्धांत सूत्र पढ़े, श्रवण करे, व्याख्यान करे, सतत चिन्तन करे वो क्या अनाचार आचरण करे ? हे गौतम ! सिद्धान्त में रहे एक भी शब्द जो जानते हैं, वो मरणान्ते भी अनाचार सेवन न करे ।

सूत्र – ८४६

हे भगवंत ! तो दश पूर्वी महाप्रज्ञावाले नंदिषण ने प्रव्रज्या का त्याग करके क्यों गणिका के घर में प्रवेश किया ? ऐसा कहा जाता है कि हे गौतम !

सूत्र – ८४७-८५२

उसे भोगफल स्खलना की वजह हुई । वो हकीकत प्रसिद्ध है । फिर भी भव के भय से काँपता था । और उसके बाद जल्द दीक्षा अंगीकार की । शायद पाताल ऊंचे मुखवाला हो, स्वर्ग नीचे मुखवाला हो तो भी केवली ने कहा वचन कभी भी अन्यथा नहीं होता । दूसरा उसने संयम की रक्षा के लिए काफी उपाय किया, शास्त्र अनुसार सोचकर गुरु के चरणकमल में लिंग-वेश अर्पण करके कोई न पहचाने वैसे देश में चला गया ।

उस वचन का स्मरण करते हुए अपने चारित्र, मोहनीय कर्म के उदय में सर्व, विरति, महाव्रत का भंग और बद्ध, स्पृष्ट, निकाचित ऐसे कर्म का भोगफल भुगतता था । हे भगवंत ! शास्त्र में निरुपण किए ऐसे उसने कौन-से उपाय सोचे कि ऐसा सुन्दर श्रमणपन छोड़कर आज भी वो प्राण धारण करता है ? हे गौतम ! केवली प्ररूपित उपाय को बतानेवाले सूत्र का स्मरण करेंगे या विषय से पराभवित मुनि इस सूत्र को याद करे ।

सूत्र – ८५३-८५५

जब विषय उदय में आए तब काफी दुष्कर, घोर ऐसे तरह का आँठ गुना तप शुरु करे । किसी रात को विषय रोकने में समर्थ न हो सके तो पर्वत पर से भृगुपात करे, काँटेवाले आसन पर बैठे, विषपान करे, उद्बंधन करके फाँसी चड़कर मर जाना बेहतर है, लेकिन महाव्रत या चारित्र की ली गई प्रतिज्ञा का भंग न करे । विराधना करना उचित नहीं है । शायद यह किए गए उपाय करने में समर्थ न हो तो गुरु को वेश समर्पण करके ऐसे विदेश में चला जाए कि जहाँ के समाचार परिचित क्षेत्र में न आए, अणुव्रत का यथाशक्ति पालन करना कि जिससे भावि में निर्ध्वंसाता न पाए ।

सूत्र – ८५६-८६४

हे गौतम ! नंदिषेण ने जब पर्वत पर से गिरने का आरम्भ किया तब आकाश में से ऐसी वाणी सुनाइ दी कि पर्वत से गिरने के बाद भी मौत नहीं मिलेगी । जितने में दिशामुख की ओर देखा तो एक चारण मुनि दिखाइ दिए । तो उन्होंने कहा कि तुम्हारी अकाल मौत नहीं होगी । तो फिर विषम झहर खाने के लिए गया । तब भी विषय का दर्द न सहा जाने पर काफी दर्द होने लगा, तब उसे फिक्र लगी कि अब मेरे जीने का क्या प्रयोजन ? मोगरे के पुष्प और चन्द्र समान निर्मल, उज्ज्वल वर्णवाले इस प्रभु के शासन को वाकइ पापमतिवाला मैं उड्डाहणा करवाऊंगा तो अनार्य ऐसा मैं कहाँ जाऊंगा ? या फिर चन्द्र लांछनवाला है, मोगरे के पुष्प की प्रभा अल्पकाल में मुर्झानेवाली है, जब कि जिनशासन तो कलिकाल की कलुषता के मल और कलंक से सर्वथा रहित लम्बे अरसे तक जिसकी प्रभा टिकनेवाली है, इसलिए समग्र दारिद्र्य, दुःख और क्लेश का क्षय करनेवाले इस तरह के इस जैन प्रवचन की अपभ्राजना करवाऊंगा तो फिर कहाँ जाकर अपने आत्मा की शुद्धि करूँगा ? दुःख से करके गमन किया जाए, बड़ी-बड़ी शिलाए हो, जिसकी बड़ी खदान हो, वो पर्वत पर चड़कर जितने में विषयाधीन होकर मैं सहज भी शासन की उड्डाह न करूँ उसके पहले छलांग लगाकर मेरे शरीर के टुकड़े कर दूँ ।

उस प्रकार फिर से छेदित शिखरवाले महापर्वत पर चड़कर आगार रखे बिना पच्चखाण करने लगे । तब

फिर से आकाश में इस प्रकार शब्द सुनाइ दिए–अकाले तुम्हारी मौत नहीं होगी । यह तुम्हारा अन्तिम भव और शरीर है । इसलिए बद्ध स्पृष्ट भोगफल भुगतकर फिर संयम स्वीकार कर ।

सूत्र – ८६५-८७०

इस प्रकार चारण मुनि ने जब दो बार (आत्महत्या करते) रोका तब गुरु के चरण कमल में जाकर उनके पास वेश अर्पण करके फिर निवेदन किया कि–सूत्र और अर्थ का स्मरण करते-करते देशान्तर में गया था, वहाँ आहार ग्रहण करने के लिए वेश्या के घर जा पहुँचा । जब मैंने धर्मलाभ सुनाया तब मेरे पास अर्थलाभ की माँग की। तब मेरी उस तरह की लब्धि सिद्ध होने से मैंने उस वक्त कहा कि भले वैसा हो । उस वक्त वहाँ साड़े बारह क्रोड़ प्रमाण द्रव्य की सुवर्ण वृष्टि करवा के उसके मंदिर से बाहर नीकल गया । ऊंचे विशाल गोल स्तनवाली गणिका दृढ़ आलिंगन देकर कहने लगी कि अरे ! क्षुल्लक ! अविधि से यह द्रव्य देकर वापस क्यों चला जाता है ? भवितव्य के योग से नंदिषेण ने अवसर के अनुरूप सोचकर कहा कि–तुम्हें जो विधि इष्ट हो उसे तुम वो द्रव्य देना।

सूत्र – ८७१-८७४

उस वक्त उसने ऐसा अभिग्रह ग्रहण किया और उसके मंदिर में प्रवेश किया । कौन-सा अभिग्रह किया ? प्रतिदिन मुजे दश लोगों को प्रतिबोध देना और एक भी कम रहे और दीक्षा अंगीकार न करे तब तक भोजन और पानविधि न करना । मेरी प्रतिज्ञा पूरी न हो तब तक मुज स्थंड़िलमात्र (दस्त-पेशाब) न करने । दूसरा प्रव्रज्या लेने के लिए तैयार लोगों को प्रव्रज्या न देनी । क्योंकि गुरु का जैसा वेश हो (यानि गुरु का जैसा आचरण हो वैसा ही शिष्य का होता है ।) गणिका ने सुवर्णनिधि क्षय न हो वैसा इन्तजाम करके लुंचित मस्तकवाले और जर्जरित देहवाले नंदिषेण को उस तरह आराधन किया कि जिससे उसके स्नेहपाश में बंध गया ।

सूत्र – ८७५-८७७

आलाप-बातचीत करने से प्रणय पैदा हो, प्रणय से रति हो, रति से भरोसा पैदा हो । भरोसे से स्नेह इस तरह पाँच तरह का प्रेम होता है । इस प्रकार वो नंदिषेण प्रेमपाश से बँधा होने के बाद भी शास्त्र में बताया श्रावकपन पालन करे और हररोज दश या उससे ज्यादा प्रतिबोध करके गुरु के पास दीक्षा लेने को भेजते थे ।

सूत्र – ८७८-८८१

अब वो खुद दुर्मुख सोनी से प्रतिबोध किस तरह पाया ? उसने नंदिषेण को कहा कि–लोगों को धर्मोपदेश सुनाते हो और आत्मकार्य में तुम खुद ही फिक्रमंद हो । वाकई यह धर्म क्या बेचने की चीज है ? क्योंकि तुम खुद तो उसे अपनाते नहीं । ऐसा दुर्मुख का सुभाषित वचन सुनकर काँपते हुए अपनी आत्मा की दीर्घकाल तक निंदा करने लगा । अरेरे, भ्रष्ट शीलवाले मैंने यह क्या किया ? अज्ञानपन की नीद्रा में कर्म के कीचड़वाले गड्ढे में अशुचि विष्ठा में जैसे कृमि सड़ते हैं वैसे सड़ा । अधन्य ऐसे मुझको धिक्कार है । मेरी अनुचित चेष्टा देखो । जात्य कंचन समान मेरे उत्तम आत्मा को अशुचि समान मैंने बनाया ।

सूत्र – ८८२-८८४

जितने में क्षणभंगुर ऐसे इस मेरे देह का विनाश न हो उतने में तीर्थंकर भगवंत के चरणकमल में जाकर मैं अपने गुनाह का प्रायश्चित्त करूँ । हे गौतम ! ऐसे पश्चात्ताप करते हुए वो यहाँ आएगा और घोर प्रायश्चित्त का सेवन पाएगा । घोर और वीर तप का सेवन करके अशुभ कर्म खपाकर शुक्लध्यान की श्रेणी पर आरोहण करके केवलज्ञान पाकर मोक्ष में जाएंगे ।

सूत्र – ८८५

इसलिए हे गौतम ! इस दृष्टांत से संयम टिकाने के लिए शास्त्र के अनुसार कईं उपाय सोचे । नंदिषेण ने गुरु को वेश जिस तरह से अर्पण किया आदि उपाय सोचे ।

सूत्र – ८८६-८८९

सिद्धान्त में जिस प्रकार उत्सर्ग बताए हैं उसे अच्छी तरह से समझना । हे गौतम ! तप करने के बावजूद भी उसे भोगावली कर्म का महा उदय था । तो भी उसे विषय की उदीरणा पैदा हुई तब आँठ गुना घोर महातप किया तो भी उसके विषय का उदय नहीं रुकता । तब भी विष भक्षण किया । पर्वत पर से भृगुपात किया । अनशन करने की अभिलाषा की । वैसा करते हुए चारण मुनि ने रोका । उसके बाद गुरु को रजोहरण अर्पण करके अनजान देश में चला गया । हे गौतम ! श्रुत में बताए यह उपाय जानना ।

सूत्र – ८९०-८९४

जैसे कि जब तक गुरु को रजोहरण और प्रव्रज्या वापस अर्पण न की जाए तब तक चारित्र के खिलाफ किसी भी अपकार्य का आचरण न करना चाहिए । जिनेश्वर के उपदेशीत यह वेश-रजोहरण गुरु को छोड़कर दूसरे स्थान पर न छोड़ना चाहिए । अंजलिपूर्वक गुरु को रजोहरण अर्पण करना चाहिए । यदि गुरु महाराज समर्थ हो और उसे समझा सके तो समझाकर सही मार्ग पर लाए । यदि कोई दूसरा उसे समझा सके तो उसे समझाने के लिए कहना । गुरु ने भी शायद दूसरों की वाणी से उपशान्त होता हो तो एतराज न करना चाहिए । जो भव्य है, जिसने परामर्श जाना है । जगत के हालात को पहचानता है, हे गौतम ! जो इस पद की नफरत करता है वो जैसे 'आसडने' माया, प्रपंच और दंभ से चार गति में भ्रमण किया वैसे वो भी चार गति में भ्रमण करेगा ।

सूत्र – ८९५-९००

हे भगवंत ! माया प्रपंच करने के स्वभाववाला आसड़ कौन था ? वो हम नहीं जानते । फिर किस निमित्त से काफी दुःख से परेशान यहाँ भटका ? हे गौतम ! दूसरे किसी अंतिम कांचन समान कान्तिवाले तीर्थंकर के तीर्थ में भूतीक्ष नाम के आचार्य का आसड़ नाम का शिष्य था । महाव्रत अंगीकार करके उसने सूत्र और अर्थ का अध्ययन किया । तब विषय का दर्द पैदा नहीं हुआ था लेकिन उत्सुकता से चिन्तवन करने लगा कि सिद्धांत में ऐसी विधि बताई है । तो उस प्रकार गुरु वर्ग की काफी रंजन करके आँठ गुना तप करना, भृगुपात करना, अनशन करना। झहर खाना आदि सब मैं करूँगा, जिससे मुझे भी देवता निवारण करेंगे और कहेंगे कि तूँ लम्बी आयुवाला है, तुम्हारी मौत नहीं होगी । तुम्हारी इच्छा अनुसार भोग भुगत । वेश रजोहरण गुरु महाराज को वापस अर्पण करके दूसरे किसी अनजान देश में चला जा । भोगफल भुगतकर पीछे घोर वीर तप सेवना ।

सूत्र – ९०१-९०५

या वाकई मैं मूर्ख हूँ । मेरे अपने माया शल्य से मुझे चोट पहुँची है । श्रमण को अपने मन में इस तरह की धारणा करनी युक्त न मानी जाए । पीछे से भी उसका प्रायश्चित्त आलोवकर आत्मा को हलका बनाऊंगा और महाव्रत धारण करूँगा । या आलोचकर वापस मायावी कहलाऊंगा । तो दश साल तक मासखमण और पारणे आयंबिल, बीस साल तक दो महिने के लगातार उपवास और पारणे आयंबिल, पच्चीस साल तक चांद्रायण तप । पूरे आँठ साल तक छठ्ठ, अठ्ठम और चार-चार उपवास, इस तरह का महाघोर प्रायश्चित्त मेरी अपनी मरजी से यहाँ करूँगा । यह प्रायश्चित्त यहाँ गुरु महाराज के चरणकमल में रहकर करूँगा ।

सूत्र – ९०६-९०९

मेरे लिए यह प्रायश्चित्त अधिक नहीं है क्या ? या तीर्थंकर भगवंत ने यह विधि की कल्पना क्यों की होगी ? मैं उसका अभ्यास करता हूँ । और जिसने मुझे प्रायश्चित्त में जुड़ा, वो सर्व हकीकत सर्वज्ञ भगवंत जाने, मैं तो प्रायश्चित्त का सेवन करूँगा । जो कुछ भी यहाँ दृष्ट चिन्तवन किया वो मेरा पाप मिथ्या हो । इस प्रकार कष्टहारी घोर प्रायश्चित्त अपनी मति से किया और वैसा करके शल्यवाला वो मरके वाणव्यंतर देव बना । हे गौतम ! यदि उसने गुरु महाराज के समक्ष विधिवत् आलोचना की होती तो और उतने प्रायश्चित्त का सेवन किया होता तो नव-ग्रैवेयक के उपर के हिस्से के विमान में पैदा होता ।

नोंध – हमारे आगम सुताणि-३९ महानिसीह मे गलती से ९१० की बजाय १००० अनुक्रम लिखा गया है ।

सूत्र – १०००-१००३

वाणमंतर देव में से च्यवकर हे गौतम ! वो आसड़ तिर्यंच गति में राजा के घर गधे के रूप में आएगा । वहाँ हंमेशा घोड़े के साथ संघट्टन करने के दोष से उसके वृषण में व्याधि पैदा हुआ और उसमें कृमि पैदा हुए । वृषण हिस्से में कृमि से खाए जानेवाले हे गौतम ! आहार न मिलने से दर्द से पीड़ित था और पृथ्वी चाटता था । इतने में दूर से साधु वापस मुड़ते थे । वैसा देखकर खुद को जाति स्मरण ज्ञान हुआ । पूर्वभव का स्मरण करके अपने आत्मा की निंदा और गर्हा करने लगा । और फिर अनशन अंगीकार किया ।

सूत्र – १००४-१०१०

कौए-कुत्तों से खाए जानेवाला हे गौतम ! शुद्ध भाव से अरिहंत का स्मरण करते-करते शरीर का त्याग करके काल पाकर उस देवेन्द्र का महाघोष नाम का सामानिक देव हुआ । वहाँ दिव्य ऋद्धि अच्छी तरह से भुगतकर च्यवा । वहाँ से वो वेश्या के रूप में पैदा हुआ । जो छल किया था उसे प्रकट नहीं किया था इसलिए वहाँ से मरके कईं अधम, तुच्छ, अन्त-प्रान्तकुल में भटका कालक्रम से करके मथुरा नगरी में शिव-इन्द्र का 'दिव्यजन' नाम का पुत्र होकर प्रतिबोध पाकर श्रमणपन अंगीकार करके निर्वाण पाया । हे गौतम ! कपट से भरे आसड़ का दृष्टांत तुम्हें बताया । जो किसी भी सर्वज्ञ भगवंत ने बताए वचन को मन से विराधना करते हैं, विषय के दर्द से नहीं, लेकिन उत्सुकता से भी विषय की अभिलाषा करते हैं । और फिर, अपने आप गुरु को निवेदन किए बिना प्रायश्चित्त सेवन करते हैं । वो भव की परम्परा में भ्रमण करनेवाला होता है ।

इस प्रकार जाननेवाले को एक भी सिद्धांत आलापक की उन्मार्ग की प्ररूपणा नहि करनी चाहिए ।

सूत्र – १०११

यदि किसी सर्व श्रुतज्ञान या उस का अर्थ या एक वचन को पहचान कर मार्ग के अनुसार उस का कथन करे तो वो पाप नहीं बाँधता । इतना मानकर मन से भी उन्मार्ग से प्रवृत्ति न करनी । इस प्रकार भगवंत के मुख से सुना हुआ मैं तुम्हें कहता हूँ ।

सूत्र – १०१२-१०१५

हे भगवंत ! अकार्य करके अगर अतिचार सेवन करके यदि किसी प्रायश्चित्त का सेवन करे उससे अच्छा जो अकार्य न करे वो ज्यादा सुन्दर है ? हे गौतम ! अकार्य सेवन करके फिर मैं प्रायश्चित्त सेवन करके शुद्धि कर लूँगा । उस प्रकार मन से भी वो वचन धारण करके रखना उचित नहीं है । जो कोई ऐसे वचन सुनकर उसकी श्रद्धा करता है, या उसके अनुसार व्यवहार करता है वो सर्व शिलभ्रष्ट का सार्थवाह समझना । हे गौतम ! शायद उस प्राण संदेह के वजह समान ऐसा कठिन भी प्रायश्चित्त करे तो भी जैसे तीतली दीए की शिखा में प्रवेश करती है, तो उसकी मौत होती है । वैसे आज्ञाभंग कर के कईं मरणवाला संसार उपार्जन होता है ।

सूत्र – १०१६-१०१९

हे भगवंत ! जो कोई भी मानव अपने में जो कोई बल, वीर्य पुरुषकार पराक्रम हो उसे छिपाकर तप सेवन करे तो उसका क्या प्रायश्चित्त आए ? हे गौतम ! अशठ भाववाले उसे यह प्रायश्चित्त हो सकता है । क्योंकि वैरी का सामर्थ्य जानकर अपनी ताकत होने के बावजूद भी उसने उसकी अपेक्षा की है जो अपना बल वीर्य, सत्त्व पुरुषकार छिपाता है, वो शठ शीलवाला नराधम दुगुना प्रायश्चित्ती बनता है । नीच गोत्र, नारकी में घोर उत्कृष्ट हालातवाला दुःख भुगतते, तिर्यंच गति में जाए और उसके बाद चार गति में वो भ्रमण करनेवाला होता है ।

सूत्र – १०२०-१०२४

हे भगवंत ! बड़ा पापकर्म वेदकर खपाया जा सकता है । क्योंकि कर्म भुगते बिना उसका छूटकारा नहीं किया जा सकता । तो वहाँ प्रायश्चित्त करने से क्या फायदा ? हे गौतम ! कईं क्रोड़ साल से इकट्ठे किए गए पापकर्म

सुरज से जैसे तुषार-हीम पीगल जाए वैसे प्रायश्चित्त समान सूरज के स्पर्श से पीगल जाता है । घनघोर अंधकार वाली रात हो लेकिन सूरज के उदय से अंधकार चला जाता है । वैसे प्रायश्चित्त समान सूरज के उदय से अंधकार समान पापकर्म चले जाते हैं । लेकिन प्रायश्चित्त सेवन करनेवाले ने जरुर इतना खयाल रखना चाहिए कि जिस प्रकार शास्त्र में बताया हो उस प्रकार अपने बल, वीर्य, पुरुषकार पराक्रम को छिपाए बिना अशठ भाव से पापशल्य का उद्धार करना चाहिए । दूसरा सर्वथा इस प्रकार प्रायश्चित्त करके वो भी जो इस प्रकार नहीं बोलता, उन्हें शल्य का थोड़ा भी शायद उद्धार किया हो तो भी वो लम्बे अरसे तक चार गति में भ्रमण करता है ।

सूत्र – १०२५-१०२७

हे भगवंत ! किसके पास आलोचना करनी चाहिए ? प्रायश्चित्त कौन दे सकता है ? प्रायश्चित्त किसे दे सकते हैं ? हे गौतम ! सौ योजन दूर जाकर केवली के पास शुद्ध भाव से आलोचना निवेदन कर सके । केवलज्ञानी की कमी में चार ज्ञानी के पास, उसकी कमी में अवधिज्ञानी, उसकी कमी में श्रुतज्ञानी के पास, जिसके ज्ञात अतिशय ज्यादा निर्मल हो, उसको आलोचना दी जाती है ।

सूत्र – १०२८-१०३०

जो गुरु महाराज उत्सर्ग मार्ग की प्ररूपणा करते हो, उत्सर्ग के मार्ग में प्रयाण करते हो, उत्सर्ग मार्ग की रुचि करते हो, सर्व भाव में उत्सर्ग का वर्ताव करते हो, उपशान्त स्वभाववाला हो, इन्द्रिय का दमन करनेवाला हो, संयमी हो, तपस्वी हो, समिति गुप्ति की प्रधानतावाले दृढ़ चारित्रपालन करनेवाला हो, असठ भाववाला हो, वैसा गीतार्थ गुरु के पास अपने अपराध निवेदन करना, प्रकट करना, प्रायश्चित्त अंगीकार करना । खुद आलोचना करनी या दूसरों के पास करवानी और फिर हंमेशा गुरु महाराज ने बताए प्रायश्चित्त के अनुसार प्रायश्चित्त आचरण करे ।

सूत्र – १०३१-१०३५

हे भगवंत ! उसका निश्चित प्रायश्चित्त कितना होगा ? प्रायश्चित्त लगने के स्थानक कितने और कौन-से हैं? वो मुझे बताओ । हे गौतम ! सुन्दर शीलवाले श्रमण को स्खलना होने से आए हुए प्रायश्चित्त करते संयती साध्वी को उससे ज्यादा नौ गुना प्रायश्चित्त आता है, यदि वो साध्वी शील की विराधना करे तो उसे नौ गुना प्रायश्चित्त आता है । क्योंकि सामान्य से उसकी योनि के बीच में नौ लाख जीव निवास कर रहे हैं । उन सबको केवली भगवंत देखते हैं । उन जीव को केवल केवलज्ञान से देख सकते हैं । अवधिज्ञानी देखते हैं लेकिन मनःपर्यवज्ञानी नहीं देख सकते ।

सूत्र – १०३६

वो साध्वी या कोई भी स्त्री-पुरुष के संसर्ग में आ जाए तो (संभोग करे तो) घाणी में जैसे तल पीसते हैं उस तरह उस योनि में रहे सर्व जीव रतिक्रीड़ा में मदोन्मत्त हुए तब योनि में रहे पंचेन्द्रिय जीव का मंथन हुआ है । भस्मीभूत होता है ।

सूत्र – १०३७-१०४१

स्त्री जब चलती है तब वो जीव गहरा दर्द पाते हैं । पेशाब करते हैं तब दो या तीन जीव मर जाते हैं । और बाकी के परिताप दुःख पाते हैं । हे गौतम ! प्रायश्चित्त के अनगिनत स्थानक हैं, उसमें से एक भी यदि आलोवण रहित रह जाए और शल्यसहित मर जाए तो, एक लाख स्त्रीयों का पेट फाड़कर किसी निर्दय मानव सात, आँठ महिने के गर्भ को बाहर नीकाले, वो तिलमिलाता हुआ गर्भ जो दुःख महसूस करता है उसके निमित्त से उस पेट फाड़नेवाले मानव को जितना पाप लगे उससे ज्यादा एक स्त्री के साथ मैथुन प्रसंग में साधु नौ गुना पाप बाँधता है। साध्वी के साथ साधु एक बार मैथुन सेवन करे तो हजार गुना, दूसरी बार सेवन करे तो करोड़ गुना और तीसरी बार मैथुन सेवन करे तो बोधि-सम्यक्त्व का नाश होता है ।

सूत्र – १०४२-१०४३

जो साधु स्त्री को देखकर मदनासक्त होकर स्त्री के साथ रतिक्रीड़ा करनेवाला होता है वो बोधिलाभ से भ्रष्ट होकर बेचारा कहाँ पैदा होगा । संयत साधु या साध्वी जो मैथुन सेवन करता है वो अबोधि लाभ कर्म उपार्जन करता है । उसके द्वारा अपकाय और अग्निकाय में पैदा होने के लायक कर्म बाँधता है ।

सूत्र – १०४४-१०४९

इस तीन में अपराध करनेवाला हे गौतम ! उन्मार्ग का व्यवहार करते थे और सर्वथा मार्ग का विनाश करनेवाला होता है । हे भगवंत ! इस दृष्टांत से जो गृहस्थ उत्कट मदवाले होते हैं । और रात या दिन में स्त्री का त्याग नहीं करते उसकी क्या गति होगी ? वो अपने शरीर के अपने ही हस्त से छेदन करके तल जितने छोटे टुकड़े करके अग्नि में होम करे तो भी उनकी शुद्धि नहीं दिखती । वैसा भी यदि वो परस्त्री के पच्चक्खाण करे और श्रावक धर्म का पालन करे तो मध्यम गति प्राप्त करे । हे भगवंत ! यदि संतोष रखने में मध्यम गति हो तो फिर अपने शरीर का होम करनेवाला उसकी शुद्धि क्यों न पाए ? हे गौतम ! अपनी या पराई स्त्री हो या स्वपति या अन्य पुरुष हो उसके साथ रतिक्रीड़ा करनेवाला पाप बँध करनेवाला होता है । लेकिन वो बँधक नहीं होता ।

सूत्र – १०५०-१०५१

यदि किसी आत्मा कहा गया श्रावक धर्म पालन करता है और परस्त्री का जीवन पर्यन्त त्रिविध से त्याग करत हैं । उसके प्रभाव से वो मध्यम गति पाता है । यहाँ खास बात तो यह ध्यान में रखनी कि नियम रहित हो, परदारा गमन करनेवाला हो, उनको कर्मबंध होता है । और जो उसकी निवृत्ति करता है, पच्चक्खाण करता है, उन्हें महाफल की प्राप्ति होती है ।

सूत्र – १०५२-१०५३

पाप की हुई निवृत्ति को यदि कोई अल्प प्रमाण में भी विराधना करे, केवल मन से ही विराधना करे तो जिस तरह से मेघमाला नामकी आर्या मरके दुर्गति में गई उस प्रकार मन से अल्प भी व्रत की विराधना करनेवाला दुर्गति पाता है । हे भुवन के बँधव ! मन से भी अल्प प्रत्याख्यान का खंड़न करके मेघमाला से जो कर्म उपार्जन किया और दुर्गति पाई, वो मैं नहीं जानता ।

सूत्र – १०५४

बारहवें वासुपूज्य तीर्थंकर भगवंत के तीर्थ में भोली काजल समान शरीर के काले वर्णवाली दुर्बल मनवाली मेघमाला नाम की एक साध्वी थी ।

सूत्र – १०५५-१०५८

भिक्षा ग्रहण करने के लिए बाहर नीकलकर दूसरी ओर एक सुन्दर मकान पर एक स्त्री बैठी थी । वो पास के दूसरे मकान से लंघन करके जाने की अभिलाषा करती थी । तब इस साध्वीने मन से उसे अभिनन्दन करके इतने में वो दोनों जल उठी, उस साध्वीने अपने नियम का सूक्ष्म भंग हुआ उनकी वहाँ नींदा नहीं की । उस नियम के भंग के दोष से जलकर पहले नरक में गई । इस प्रकार समझकर यदि तुमको अक्षय, अनन्त, अनुपम सुख की अभिलाषा हो तो अतिना के नियम या व्रत की विराधना मत होने देना ।

सूत्र – १०५९-१०६१

तप, संयम या व्रत के लिए नियम दंड़नायक कोटवाल समान है । उस नियम को खंड़ित करनेवाले को व्रत या संयम नहीं रहते । मछवारा पूरे जन्म में मछलियाँ पकड़कर जो पाप बाँधता है उससे ज्यादा तो व्रत के भंग की ईच्छा रखनेवाले आँठ गुना पाप बाँधते हैं । अपने देश की शक्ति या लब्धि से दूसरों की उपशान्त करे और दीक्षा ले तो अपने व्रत को खंड़ित न करते हुए उतने पुण्य का उपार्जन करनेवाला होता है ।

सूत्र – १०६२

गृहस्थ संयम और तप के लिए प्रवृत्ति करनेवाला और पाप की निवृत्ति करनेवाला होता है । जब तक वो दीक्षा अंगीकार नहीं करते तब तक जो कुछ भी धर्मानुष्ठान करे उसमें उनका फायदा होता है ।

सूत्र – १०६३-१०६४

साधु-साध्वी के वर्ग को यहाँ समझ लेना चाहिए कि हे गौतम ! उश्वास निश्वास के अलावा दूसरी किसी भी क्रिया गुरु की परवानगी के सिवा नहि करना । वो भी जयणा से ही करने की आज्ञा है । अजयणा से नहीं । अजयणा से साँस लेने-रखने का सर्वथा नहीं होता । अजयणा से साँस लेनेवाले को तप या धर्म कहाँ से मिले ?

सूत्र – १०६५-१०६९

हे भगवंत ! जितना देखा हो या जाना हो तो उसका पालन उतने प्रमाण में किस तरह कर सके ? जिन्होंने अभी परमार्थ नहीं जाना, कृत्य और अकृत्य के जानकार नहीं है । वो पालन किस तरह कर सकेंगे ? हे गौतम ! केवली भगवंत एकान्त हीत वचन को कहते हैं । वो भी जीव का हाथ पकड़कर बलात्कार से धर्म नहीं करवाते । लेकिन तीर्थंकर भगवान के बताए हुए वचन को 'तहत्ति' कहने के लायक जो उसके अनुसार व्यवहार करते हैं, उनके चरण में हर्ष पानेवाले इन्द्र और देवता के समुदाय प्रणाम करते हैं । जिन्होंने अभी तक परमार्थ नहीं जाना, कृत्याकृत्य का विवेक नहीं पहचाना । वो अंधे के पीछे अंधा चलता जाए और गड्ढा-टेकरी पानी है या भूमि है, कीचड़ है या पथ्थर है उसका भान नहीं होता । वैसे अज्ञानी को धर्म की आराधना होती है या विराधना होती है वैसी भी पहचान नहीं होती । इसलिए या तो खुद गीतार्थ-शास्त्र के जानकार हो, उसका विहार या वैसे गीतार्थ की निश्रा में, आज्ञा में रहकर विहार करने की उत्तम साधु के लिए शास्त्रकार ने अनुज्ञा दी है । इन दोनों के अलावा तीसरा विकल्प शास्त्र में नहीं है ।

सूत्र – १०७०-१०७१

अच्छी तरह से संवेग पाया हो, आलस रहित हो, दृढ़ व्रतवाले हो, हंमेशा अस्खलित चारित्रवाले हो, राग-द्वेष रहित हो, चार कषाय को उपशमाया हो, इन्द्रिय को जीतनेवाला हो, ऐसे गुणवाले जो गीतार्थ गुरु हो उनके साथ विहार करना । क्योंकि वो छद्मस्थ होने के बावजूद (श्रुत) केवली हैं ।

सूत्र – १०७२-१०७६

हे गौतम ! जहाँ सूक्ष्म पृथ्वीकाय के एक जीव को कीलामणा होती है तो उस को सर्वज्ञ केवली अल्पारंभ कहते हैं । जहाँ छोटे पृथ्वीकाय के एक जीव का प्राण विलय हो उसे सभी केवली महारंभ कहते हैं । एक पृथ्वीकाय के जीव को थोड़ा सा भी मसला जाए तो उससे अशातावेदनीय कर्मबंध होता है कि जो पापशल्य काफी मुश्किल से छोड़ सके । उसी प्रकार अप्काय, तेऊकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय और मैथुन सेवन के चीकने पापकर्म उपार्जन करते हैं । इसलिए मैथुन संकल्प पृथ्वीकाय आदि जीव विराधना दुरन्त फल देते देखकर जावज्जीव त्रिविध त्रिविध से त्यजना ।

सूत्र – १०७७-१०८२

इसलिए जो परमार्थ को नहीं जानते और हे गौतम ! जो अज्ञानी हैं, वो दुर्गति के पंथ को देनेवाले ऐसे पृथ्वीकाय आदि कि विराधना गीतार्थ गुरु निश्रा में रहकर संयम आराधना करनी । गीतार्थ के वचन से हलाहल झहर का पान करना । किसी भी विकल्प किए बिना उनके वचन के मुताबिक तत्काल झहर का भी भक्षण कर लेना । परमार्थ से सोचा जाए तो वो विष नहीं है । वाकई उनका वचन अमृत रस के आस्वाद समान है । इस संसार में उनके वचन के अनुसार बिना सोचे अनुसरण करनेवाला मरकर भी अमृत पाता है ।

अगीतार्थ के वचन से अमृत का भी पान मत करना । परमार्थ से अगीतार्थ का वचन अमृत नहीं है लेकिन वो झहर युक्त हलाहल कालकूट विष है । उसके वचन से अजरामर नहीं बन सकते । लेकिन मरकर दुर्गति में जाते

हैं । मार्ग में सफर करनेवाले को चीर विघ्न करवाते हैं उस प्रकार मोक्षमार्ग की सफर करनेवाले के लिए अगीतार्थ और कुशील का समागम विघ्न करवानेवाला हे, इसलिए उनके संघ का दूर से त्याग करना ।

सूत्र – १०८३-१०८४

धगधगते अग्नि को देखकर उसमें प्रवेश निःशंकपन से करना और खुद का जल मरना अच्छा । लेकिन कभी भी कुसील के समागम के न जाना या उसका शरण मत अपनाना । लाख साल तक शूली में बींधकर सुख से रहना अच्छा है । लेकिन अगीतार्थ के साथ एक पल भी वास मत करना ।

सूत्र – १०८५-१०८७

मंत्र, तंत्र रहित हो और भयानक दृष्टिविष साँप डँसता हो, उसका आश्रय भले ही करना लेकिन अगीतार्थ और कुशील अधर्म का सहवास मत करना । हलाहल झहर खा लेना, क्योंकि उसी वक्त एक बार मार डालेंगे लेकिन गलती से भी अगीतार्थ का संसर्ग मत करना, क्योंकि उससे लाख मरण उपार्जन करूँगा । घोर रूपवाले भयानक ऐसे शेर, वाघ या पिशाच नीगल जाए तो नष्ट होना लेकिन अगीतार्थ का संसर्ग मत करना ।

सूत्र – १०८८-१०८९

सात जन्मान्तर के शत्रु को सगा भाई मानना, लेकिन व्रत-नियम की विड़म्बना करनेवाले पिता हो तो भी उसे शत्रु समान मानना । भड़भड़-अग्नि में प्रवेश करना अच्छा है लेकिन सूक्ष्म भी नियम की विराधना करनी अच्छी नहीं है । सुविशुद्ध नियमयुक्त कर्मवाली मौत सुन्दर है लेकिन नियम तोड़कर जीना अच्छा नहीं है ।

सूत्र – १०९०-१०९४

हे गौतम ! किसी दूसरी चौबीस के पहले तीर्थंकर भगवंत का जब विधिवत् निर्वाण हुआ तब मनोहर निर्वाण महोत्सव प्रवर्तता था और सुन्दर रूपवाले देव और असुर नीचे उतरते थे और ऊपर चड़ते थे । तब पास में रहनेवाले लोग यह देखकर सोचने लगे कि अरे ! आज मानव लोक में ताज्जुब देखते हैं । किसी वक्त भी कहीं भी ऐसी इन्द्रजाल-सपना देखने में नहीं आया ।

सूत्र – १०९५-११०२

ऐसा सोचते-सोचते एक मानव को पूर्वभव का जाति स्मरण ज्ञान हुआ । इसलिए पलभर मूर्छित हुआ लेकिन फिर वायरे से आश्वासन मिला । भान में आने के बाद थरथर काँपने लगा और लम्बे अरसे तक अपनी आत्मा की काफी नींदा करने लगा । तुरन्त ही मुनिपन अंगीकार करने के लिए उद्यत हुआ । उसके बाद वो महायश वाला पंचमुष्टिक लोच करा जितने में शुरु करता है उतने में देवता ने विनयपूर्वक उसे रजोहरण अर्पण किया । उस के कष्टकारी उग्र तप और चारित्र देखकर और लोगों को उसकी पूजा करते देखकर इश्वर जितने में वहाँ आकर उसे पूछने लगा कि तुम्हें किसने दीक्षा दी ? कहाँ पैदा हुए हो ? तुम्हारा कुल कौन-सा है ? किसके चरणकमल में अतिशयवाले सूत्र और मतलब का तुमने अध्ययन किया ? वो हर एक बुद्ध उसे जितने में सर्प जाति, कुल, दीक्षा, सूत्र, अर्थ आदि जिस प्रकार प्राप्त किए वो कहते थे उतने में वो सर्व हकीकत सुनकर निर्भागी वो इस प्रकार चिन्तवन करने लगा कि–यह अलग है, यह अनार्य लोग दिखावे से ठगते हैं तो जैसा यह बोलते हैं उसी तरह का वो जिनवर भी होगा । इस विषय में कुछ सोचने का नहीं है । ऐसा मानकर दीर्घकाल तक मौन खड़ा रहा ।

सूत्र – ११०३-११०४

या फिर ऐसा नहीं देव और दानव से प्रणाम किए गए वो भगवंत यदि मेरे मन में रहे संशय का छेदन करे तो मुझे यकीन हो । उतने में फिर चिन्तवन किया कि जो होना है वो हो, मुझे यहाँ सोचने का क्या प्रयोजन है । मैं तो सर्व दुःख को नष्ट करनेवाली प्रव्रज्या को अभिनन्दन देता हूँ । यानि उसे ग्रहण करने की ईच्छा रखता हूँ ।

सूत्र – ११०५-११०७

उतने में जिनेश्वर के पास जान के लिए नीकला । लेकिन जिनेश्वर को न देखा । इसलिए गणधर भगवंत के पास जाने के लिए प्रयाण किया । जिनेश्वर भगवंत ने बताए हुए सूत्र और मतलब की प्ररूपणा गणधर महाराजा करते हैं । जब यहाँ गणधर महाराजा व्याख्यान करते थे तब उसमें यह आलापक आया कि, 'एक ही पृथ्वीकाय जीव सर्वत्र उपद्रव पाते हैं । वो उसकी रक्षा करने के लिए कौन समर्थ हो सकता है ?

सूत्र – ११०८-१११

इस विषय में इस महायशवाले अपने आत्मा की लघुता करते हैं । इस समग्र लोक में यह बात सिद्ध करने के उचित नहीं है । ऐसी बात यह क्यों प्ररूपते होंगे ? यह उनका व्याख्यान प्रकटपन से काफी कान में कड़कड़ करनेवाला है । निष्कारण गले को शोषित करता है । उसके अलावा कोई फायदा नहीं है । ऐसा व्यवहार कौन कर सकेगा ? इसलिए यह उपदेश छोड़कर सामान्य या किसी मध्यम तरह के धर्म का उपदेश करना चाहिए । जिससे हमारे पास आनेवाले लोग ऊब न जाए ।

सूत्र – १११२-१११६

या तो सचमुच मैं मूँढ पापकर्म नराधम हूँ, भले मैं वैसा नहीं करता लेकिन दूसरे लोग तो वैसा व्यवहार करते हैं । और फिर अनन्त ज्ञानी सर्वज्ञ भगवंत ने यह हकीकत प्ररूपी है । जो कोई उनके वचन के खिलाफ बात करे तो उसका अर्थ टिक नहीं सकता । इसलिए अब मैं इसका घोर अति दुष्कर उत्तम तरह का प्रायश्चित्त जल्द अति शीघ्रतर समय में करूँगा कि जितने में मेरी मौत न हो । आशातना करने से मैं ऐसा पाप किया है कि देवताई सौ साल का ईकट्ठा किया हुआ पुण्य भी उससे नष्ट होता है । अब वो प्रायश्चित्त करने के लिए तैयार हुआ है । और अपनी मति कल्पना से उस तरह का महा घोर प्रायश्चित्त करके प्रत्येक बुद्ध के पास फिर से गया ।

सूत्र – ११११७-११२३

वहाँ भी सूत्र की व्याख्या श्रवण करते करते वो ही अधिकार फिर आया कि, 'पृथ्वी आदि का समारम्भ साधु त्रिविध त्रिविध से वर्जन करे', काफी मूढ ऐसा वो इश्वर साधु मूर्ख बनकर चिन्तवन करने लगा कि इस जगत में कौन उस पृथ्वीकायादिक का समारम्भ नहीं करता ? खुद ही तो पृथ्वीकाय पर बैठे हैं, अग्नि से पकाया हुआ आहार खाते हैं और वो सब बीज-धान्य में से पैदा होता है । दूसरा पानी बिना एक पल भी कैसे जी सकेंगे ? तो वाकई यह प्रत्यक्ष ही उलटी हकीकत दिखाई देती है । मैं उनके पास आया लेकिन इस बात में कोई भरोसा नहीं करेंगे । तो वो भले यहाँ रहे, इससे तो यह गणधर भगवंत काफी उत्तम है । या तो यहाँ वो कोइ भी मेरा कहा नहीं करेंगे । इस तरह का धर्म किस वजह से कहते होंगे । यदि अति कड़वा-कठिन धर्म होगा तो फिर अब मत सुनना |

सूत्र – ११२४-११३८

या उनको एक ओर रख दो । मैं खुद ही सुख से हो सके और सब लोग कर सके ऐसा धर्म बताऊंगा । यह जो कड़कड़-कठिन धर्म करने का समय नहीं है । ऐसा जितने में चिन्तवन करते हैं उतने में तो उन धड़धड़ आवाज करनेवाली बिजली गिर पड़ी । हे गौतम ! वो वहाँ मरकर सातवीं नरक पृथ्वी में पैदा हुआ ।

शासन श्रमणपन श्रुतज्ञान के संसर्ग के प्रत्यनीकपन की वजह से इश्वर लम्बे अरसे तक नरक में दुःख महसूस करके यहाँ आकर सागर में महामत्स्य होकर फिर से सातवीं नारकी में तेंतीस सागरोपम के लम्बे अरसे तक दुःख सहकर वैसे भयानक दुःख भुगतकर यहाँ आया इश्वर का जीव तिर्यंच ऐसे पंछी में कौए के रूप में पैदा हुआ । वहाँ से फिर पहली नारकी में जाकर आयु पूर्ण करके यहाँ दुष्ट श्वान के रूप में पैदा होकर फिर से पहली नारकी में गया । वहाँ से नीकलकर शेर के रूप में फिर से मरके चौथी में जाकर यहाँ आया । यहाँ से भी नरक में जाकर उस इश्वर का जीव कुम्हार के रूप में पैदा हुआ । वहाँ कुष्ठी होकर काफी दुःखी, कृमि ने खाया हुआ पचास साल तक पराधीन-पन से वैसा पारावार दुःख सहकर अकाम निर्जरा की, वहाँ से देवभव में पैदा होकर वहाँ से

यहाँ राजा बनकर सातवीं नारकी में गया । उस प्रकार इश्वर का जीव स्वकल्पना करने की वजह से नारक और तिर्यंच गति में और कुत्सित-अधम मानवगति में लम्बे अरसे तक भव भ्रमण करके घोर दुःख भुगतकर काफी दुःखी होनेवाला अभी गोशालकरूप हुआ है । और वो ही इस इश्वर का जीव है । इसलिए परमार्थ समझने के लिए सारासार से परिपूर्ण ऐसे शास्त्र के भाव को जल्द पहचानकर गीतार्थ मुनि बनना ।

सूत्र – ११३९-११४०

सारासार को पहचाने बिना अगीतार्थपन के दोष से रज्जुआर्या ने केवल एक वचन से जो पाप का उपार्जन किया, उस पाप से उस बेचारी को नारकी-तिर्यंच गति में और अधम मानवपन में जिस तरह की नियंत्रण की हैरान गति भुगतनी पड़ेगी, वो सुनकर किसे धृति प्राप्त होगी ?

सूत्र – ११४१

हे भगवंत ! वो रज्जु आर्या कौन थी और उसने अगीतार्थपन के दोष से केवल वचन से कैसा पापकर्म उपार्जन किया कि जो विपाक सुनकर धृति न पा सके ? हे गौतम ! इसी भरतक्षेत्र में भद्र नामके आचार्य थे । उन्हें महानुभाव ऐसे पाँचसौ शिष्य और बारह सौ निर्ग्रन्थी-साध्वी थी । उस गच्छ में चौथे (आयंबिल) रसयुक्त ओसामण तीन उबालावाला हुआ तीन तरह के अचित्त जल के सिवा चौथे तरह के जल का इस्तमाल नहीं होता था । किसी वक्त रज्जा नाम की आर्या को पहले किए गए अशुभ पापकर्म के उदय की वजह से कुष्ठ व्याधि से शरीर सड़ गया और उसमें कृमि पैदा होकर उसे खाने लगी । किसी वक्त आर्या को देखकर गच्छ में रही दूसरी संयती उन्हें पूछने लगी कि–अरे अरे दुष्करकारिके ! यह तुम्हें अचानक क्या हुआ ?

तब हे गौतम ! महापापकर्मी भग्नलक्षण जन्मवाली उस रज्जा आर्याने संयतीओं को ऐसा प्रत्युत्तर दिया है, यह अचित्त जल का पान करने की वजह से यह मेरा शरीर नष्ट हुआ है । जितने में यह वचन बोली उतने में सर्व संयति के समूह के हृदय क्षोभित हुए हैं । हम भी इस अचित्त जल का पान करेंगे इससे इनकी तरह मौत मिलेगी । लेकिन उस गच्छ में से एक साध्वी ने चिन्तवन किया कि-शायद यह मेरा शरीर एक पलक जितने अल्प समय में ही सड़ जाए और सड़कर टुकड़े-टुकड़े हो जाए तो भी सचित्त जल का पान इस जन्म में कभी नहीं करूँगा । अचित्त जल का त्याग नहीं करूँगा । दूसरा अचित्त जल से इस साध्वी का शरीर नष्ट हो गया है वो हकीकत क्या सत्य है ? सर्वथा यह बात सत्य नहीं है । क्योंकि पूर्वभव में किए गए अशुभ पापकर्म के उदय से ही ऐसा होता है । उस प्रकार काफी सुन्दर सोच करने लगी । अरे ! देखो तो सही कि अज्ञान दोष से आवरित काफी मूढ़ हृदयवाली लज्जा रहित होकर यह महापाप-कर्मणी साध्वीने संसार के घोर दुःख देनेवाले ऐसा-कैसा दुष्ट वचन कहा ? कि मेरे कान ने विवर में भी प्रवेश नहीं कर सकता । तो भवान्तर में किए गए अशुभ पापकर्म के उदय की वजह से जो कुछ दरिद्रता, दुर्भाग्य, अपयश, झूठे कलंक लगना कुष्ठादिक व्याधि के क्लेश के दुःख शरीर में लगना, आदि पैदा होते हैं। उसमें कोई फर्क नहीं होता । क्योंकि आगम में कहा है कि–

सूत्र – ११४२

'खुद के उपार्जन किए हुए दुःख या सुख कौन किसको दे सकता है या ले सकता है ? खुद के किया हुआ कर्म कौन हर सकता है और किसका कर्म हरण कर सकते हैं ? खुद के किए हुए कर्म और उपार्जित किए गए सुख या दुःख तो खुद ही भुगतने पड़े ।'

सूत्र – ११४३

ऐसा सोचते हुए उस साध्वीजी को केवलज्ञान पैदा हुआ । उस वक्त देव ने केवलज्ञान का महोत्सव किया । वो केवली साध्वीजी ने मानव, देव, असुर के और साध्वी के संशयरूप अंधकार के पड़ल को दूर किया । उसके बाद भक्ति से भरपूर हृदयवाली रज्जा आर्या ने प्रणाम करके सवाल पूछा कि–हे भगवंत ! किस वजह से मुझे इतनी बड़ी महावेदनावाला व्याधि पैदा हुआ ? तब हे गौतम ! जलवाले मेघ और दुंदुभि के शब्द समान मनोहर

गम्भीर स्वरवाले केवलीने कहा कि–हे दुष्करकारिके तु सुन-कि तुम्हारे शरीर का विघटन क्यों हुआ ? तुम्हारा शरीर रक्त और पित्त के दोष से दूषित तो था ही और फिर उसमें उस स्निग्ध आहार के साथ मकड़े के जन्तुवाला आहार भरपेट खाया । दूसरी बजह यह भी है कि–इस गच्छ में सेंकड़ो प्रमाण साधु-साध्वी होने के बावजूद, जितने सचित्त पानी से केवल आँखें धो सकते हैं उतने अल्प लेकिन सचित्त जल का गृहस्थ की वजह से कभी भी साधु को भोगवटा नहीं कर सकते । उसके बजाय तुने तो गौमुत्र ग्रहण करने के लिए जाते-जाते जिस के मुख नासिका में से गलते लींट लपेटे हुए थे पर लगे थे । उस वजह से बणबणनेवाली मधुमक्खी उड़ रही थी, ऐसे श्रावक पुत्र के मुख को सचित्त जल से प्रक्षालन किया वैसे सचित्त जल का संघट्टा करने की विराधना की वजह से देव असुर की वंदन करने के लायक अलंघनीय ऐसी गच्छमर्यादा को भी तोड़ दिया ।

प्रवचन देवता यह तुम्हारा अघटित व्यवहार सह न सके या साधु-साध्वी ने प्राण के संशय में भी कूए, तालाब, वावड़ी, नदी आदि के जल को हाथ से छूना न कल्पे । वीतराग परमात्मा ने साधु-साध्वी के लिए सर्वथा अचित्त जल हो तो भी समग्र दोष रहित हो, ऊबाला हुआ हो, उसका ही परिभोग करना कल्पे । इसलिए देवता ने चिन्तवन किया कि इस दुराचारी को इस तरह शिक्षा करूँ कि जिससे उसकी तरह दूसरी किसी भी तरह का आचरण या प्रवृत्ति न करे । ऐसा मानकर कुछ कुछ चूर्ण का योग जब तुम भोजन करते थे तब उन देवताओं ने तुम्हारे भोजन में डाला । उन देवता के किए हुए प्रयोग हम जानने के लिए समर्थ नहीं हो सकते । इस वजह से तुम्हारा शरीर नष्ट हुआ है, लेकिन अचित्त जल पीने से नष्ट नहीं हुआ ।

उस वक्त रज्जा-आर्या ने सोचा कि उस प्रकार ही है । केवली के वचन में फर्क नहीं होगा । ऐसा सोचकर केवली ने बिनती की कि–हे भगवंत ! यदि मैं यथोक्त प्रायश्चित्त का सेवन करूँ तो मेरा यह शरीर अच्छा हो जाए तब केवली ने प्रत्युत्तर दिया कि यदि कोई प्रायश्चित्त दे तो सुधारा हो सके । रज्जा आर्या ने कहा कि–हे भगवंत ! आप ही मुझे प्रायश्चित्त दो । दूसरे कौन तुम्हारे समान आत्मा है ? तब केवली ने कहा कि हे दुष्करकारिके ! मैं तुम्हें प्रायश्चित्त तो दे सकता हूँ लेकिन तुम्हारे लिए ऐसा कोई प्रायश्चित्त ही नहीं है कि जिससे तुम्हारी शुद्धि हो सके । रज्जा ने पूछा कि हे भगवंत ! किस वजह से मेरी शुद्धि नहीं है ? केवली ने कहा कि–तूने जिस साध्वी समुदाय के सामने ऐसा कहा कि अचित्त पानी का उपभोग करने से मेरा शरीर सड़ गया । इस दुष्ट पाप के बड़े समुदाय के एक पिंड़ समान तुम्हारे वचन को सुनकर यह सभी साध्वी के हृदय हिल गए । वो सब सोचने लगे कि अब हम भी अचित्त जल का त्याग कर दे लेकिन उस साध्वीओने तो अशुभ अध्यवसाय की आलोचना निंदा और गुरु साक्षी में गर्हणा कर ली । उन्हें तो मैंने प्रायश्चित्त दे दिया है ।

इस प्रकार अचित्त जल-त्याग से और वचन-दोष से काफी कष्टदायक विरस भयानक बद्ध स्पृष्ट निकाचित्त बड़े पाप का ढ़ग तूने उपार्जन किया है और उस पाप समुदाय से तुम कोढ़, व्याधि, भगंदर, जलोदर, वायु, गुमड़, साँस फूलना, हरस, मसा, कंठमाल आदि कई व्याधि की वेदना से भरे शरीरवाली बनोगी । फिर दरिद्र के दुःख, दुर्भाग्य, अपयश, झूठे आरोप, कलंक लगाना, संताप, उद्वेग, क्लेशादि से हंमेशा जलनेवाली ऐसी अनन्त भव तक काफी लम्बे अरसे तक, जैसा दिन में वैसा लगातार रात को दुःख भुगतना पड़ेगा, इस वजह से हे गौतम ! यह वो रज्जा-आर्या अगीतार्थपन के दोष से केवल वचन से ही ऐसे महान दुःखदायक पापकर्म का उपार्जन करनेवाली हुई

सूत्र – ११४४-११४६

अगीतार्थपन के दोष से भावशुद्धि प्राप्त नहीं होती, भावविशुद्धि बिना मुनि कलुषता युक्त मनवाला होता है। दिल में काफी कम छोटे प्रमाण में भी यदि कलुषता, मलीनता, शल्य, माया रहे हों तो अगीतार्थपन के दोष से जैसे लक्ष्मणा देवी साध्वी ने दुःख की परम्परा खड़ी की, वैसे अगीतार्थपन के दोष से भव की और दुःख की परम्परा खड़ी की, इसलिए समझदार पुरुष को सर्वथा भाव से सर्वथा वो समझकर गीतार्थ बनकर मन को कलुषता रहित बनाना चाहिए ।

सूत्र – ११४७-११५६

हे भगवंत ! लक्ष्मणा आर्या जो अगीतार्थ और कलुषतावाली थी और उसकी वजह से दुःख परम्परा पाई वो मैं नहीं जानता । हे गौतम ! पाँच भरत और पाँच ऐरावत् क्षेत्र के लिए उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के सर्व काल में एक-एक संसार में यह अतिध्रुव चीज है । जगत् की यह स्थिति हंमेशा टिकनेवाली है । हे गौतम ! मैं हूँ उस तरह सात हाथ के प्रमाणवाली कायावाले, देव और दानव से प्रणाम करे, वैसे ही अन्तिम तीर्थंकर थे । उस वक्त वहाँ जम्बुदाड़िम नाम का राजा था । कईं पुत्रवाली सरिता नाम की भार्या थी । एक भी पुत्री न होने से किसी वक्त राजा सहित पुत्री पाने के लिए देव की, कुलदेवता की, चन्द्र-सूरज ग्रह की काफी मानता की थी । कालक्रम से कमलपत्र समान नैनवाली लड़की पैदा हुई । लक्ष्मणा देवी ऐसे नाम स्थापन किया ।

अब किसी वक्त लक्ष्मणा देवी पुत्री यौवनवय पाया तब स्वयंवर रचा । उसमें नयन को आनन्द देनेवाला, कला के घर समान, उत्तम वर के साथ विवाह किया । शादी के बाद तुरन्त ही उसका भर्तार मर गया । इसलिए वो एकदम मूर्छित हो गइ, बेहोश हो गई । काँपते हुए उसे स्वजन परिवार ने वींझन के पवन से मुश्किल से सभान बनाया । तब हा हा ऐसे आक्रंदन करके छाती-मस्तक कूटने लगी । वो अपने-आप को दश दिशा में मारती, कूटती, पीटती रेंगने लगी । बन्धुवर्ग ने उसे आश्वासन देकर समझाया तब कुछ दिन के बाद रुदन बन्ध करके शान्त हुई ।

सूत्र – ११५७-११६३

किसी वक्त भव्य जीव रूपी कमलपन को विकसित करनेवाले केवलज्ञान समान तीर्थंकर भगवंत वहाँ आए और उद्यान में समवसरे, अपने अंतःपुर, सेना और वाहन सर्व ऋद्धि सहित राजा उन्हें भक्ति से वंदन करने के लिए गया । धर्म श्रवण करके वहाँ अंतःपुर, पुत्र और पुत्री सहित दीक्षा अंगीकार की । शुभ परीणामवाले मूर्च्छा रहित उग्र कष्टकारी घोर दुष्कर तप करने लगा । किसी वक्त सबको गणी के योग में प्रवेश करवाया । लक्ष्मणा देवी को अस्वाध्याय की वजह से अनुष्ठान क्रिया करने के लिए न भेजा । उपाश्रय में एकान्त में बैठी लक्ष्मणा देवी साध्वी ने क्रीड़ा करते हुए युगल को देखकर चिन्तवन किया कि इनका जीवन सफल है । इस चीड़िया को छूनेवाली दूसरी चीड़िया कि जो अपने प्रियतम को आलिंगन देकर परम आनन्द सुख देती है ।

सूत्र – ११६४-११६९

यहाँ तीर्थंकर भगवंत ने पुरुष और स्त्री रतिक्रीड़ा करते हैं तो उनको देखना हमने क्यों मना किया होगा ? वो वेदना दुःख रहित होने से दूसरों का सुख नहीं पहचान सकते । अग्नि जलाने के स्वभाववाला होने के बावजूद भी आँख से उसे देखे तो देखनेवाले को नहीं जलाता । या तो ना, ना, ना, ना भगवंत ने जो आज्ञा की है वो यथार्थ ही है । वो विपरीत आड़श करेंगे ही नहीं । क्रीड़ा करते हुए पंछी युगल को देखकर मेरा मन क्षोभित हुआ है। मुझमें पुरुष की अभिलाषा प्रकट हुई है कि मैं उसके साथ मैथुन सेवन करूँ । लेकिन आज मैंने चिन्तवन किया वो मैं सपने में भी नहीं कर सकता । और फिर इस जन्म में मैंने मन से भी आज तक पुरुष की ईच्छा नहीं की । किसी भी तरह से सपने में भी उसकी अभिलाषा नहीं की, तो वाकई मैं दुराचारी पाप करने के स्वभाववाली अभागी हूँ, आड़ा-टेढ़ा झूठ सोचकर मैंने तीर्थंकर की आशातना की है ।

सूत्र – ११७०-११७३

तीर्थंकर भगवंत ने भी काफी कष्टकारी कठिन अति दुर्धर, उग्र, घोर मुश्किल से पालन किया जाए वैसा कठिन व्रत का उपदेश दिया है । तो त्रिविध त्रिविध से यह व्रत पालन करने के लिए कौन समर्थ हो सकता है ? वचन और काया से अच्छी तरह से आचरण किया जाने के बाद भी तीसरे मन से रक्षा करना मुमकीन नहीं है । या तो दुःख की फिक्र की जाती है । यह तो फिर भी सुखपूर्वक किया जाता है, जो मन से भी कुशील हुआ वो सर्व कार्य में कुशील माना जाता है । तो इस विषय में शंका करके अचानक मेरे पास जो यह स्खलना होकर दोष लगा, उसका मुझे प्रायश्चित्त हुआ तो आलोचना करके जल्द उसका सेवन करूँ ।

सूत्र – ११७४-११७७

समग्र सती, शीलवंती के भीतर मैं पहली बड़ी साध्वी हूँ । रेखा समान मैं सब में अग्रेसर हूँ । उस प्रकार स्वर्ग में भी उद्घोषणा होती है । और मेरे पाँव की धूल को सब लोग वंदन करते हैं । क्योंकि उसकी रज से हर एक की शुद्धि होती है । उस प्रकार जगत में मेरी प्रसिद्धि हुई है । अब यदि मैं आलोचना दूँ । मेरा मानसिक दोष भगवंत के पास प्रकट करूँगी तो मेरे भाई, माता, पिता यह बात सुनकर दुःखी होंगे, या तो प्रमाद से किसी भी तरह से मैंने मन से चिन्तवन किया उसे मैंने आलोचन किया केवल इतना सुनकर मेरे रिश्तेदारी वर्ग को कौन-सा दुःख होगा ?

सूत्र – ११७८-११८२

जितने में इस प्रकार चिन्तवन करके आलोयणा लेने के लिए तैयार हुई, उतने में खड़ी होती थी तब पाँव के तलवे में ढ़स करके एक काँटा चुभ गया । उस वक्त निःसत्वा निराश होकर साध्वी चिन्तवन करने लगी कि अरेरे ! इस जन्म में मेरे पाँव में कभी भी काँटा नहीं लगा था तो अब इस विषय में क्या (अशुभ) होगा ? या तो मैंने परमार्थ समझा की दो चीड़ियाँ संघट्ट करती थी, उनकी मैंने अनुमोदना की उस वजह से मेरे शीलव्रत की विराधना हुई । गूँगा, बहरा, अँधा, कुष्ठी, सड़े हुए शरीरवाला, लज्जावाला हो तो वो जब तक शीलखंड़न न करे तब तक देव भी उस की स्तुति करते हैं । काँटा मेरे पाँव में चुभा इस निमित्त से मुझ से जो गलती हुई है, उसका मुझे महालाभ होगा

सूत्र – ११८३-११८८

जो स्त्री मन से भी शील का खंड़न करे वो पाताल के भीतर सात पुश्तों की परम्परा-शाखा में अगर सातों नारकी में जाते हैं । इस तरह की गलती मैंने क्यों की ? तो अब जब तक में मुझ पर वज्र या धूल की वृष्टि न हो, मेरे दिल के सौ टुकड़े न हो जाए तो वो भी एक महा ताज्जुब माना जाएगा । दूसरा शायद मैं इसके लिए आलोचना करूँगी तो लोग ऐसा चिन्तवन करेंगे कि कुछ लोगों की पुत्री मन से इस तरह का अशुभ अध्यवसाय किया । उस वजह से मैं वैसा प्रयोग करके दूसरे ने ऐसा सोचा होगा उसे कितना प्रायश्चित्त दे । ऐसे आलोचना करूँगी, जिस से मैंने ऐसा चिन्तवन किया है वैसे दूसरे कोई न जाने । भगवंत इस दोष का जो प्रायश्चित्त देंगे वो घोर काफी निष्ठुर होगा तो भी उन्होंने कहा हुआ सुनकर उतना तप करूँगा । जब तक त्रिविध त्रिविध से शल्य रहित उस तरह का सुन्दर शील और चारित्र पालन न किया जाए तब तक पाप का क्षय नहीं होता ।

सूत्र – ११८९-११९४

अब वो लक्ष्मण साध्वी पराये के बहाने से आलोचना ग्रहण करके तपस्या करने लगी, प्रायश्चित्त निमित्त से पचास साल तक छठ्ठ-अठ्ठम चार उपवास करके दश साल पसार किए । अपने लिए न किए हो, न करवाए हो, किसी ने साधु का संकल्प कर के भोजन तैयार न किए हो, भोजन करनेवाले गृहस्थ के घर बचा हो वैसा आहार भिक्षा में मिले उससे उपवास पूरा करे, दो साल तक भुँजेल चने आहार में ले । सोलह साल लगातार मासक्षमण तप करे । बीस साल तक आयंबिल की तपस्या करे । किसी दिन जरुरी क्रिया न छोड़ दे । प्रायश्चित्त निमित्त से दिनता रहित मन से यह सभी तपस्या करती थी, हे गौतम ! तब वो चिन्तवन करने लगी कि प्रायश्चित्त में मैंने जो तप किया उससे मेरे दिल का पाप शल्य क्या नहीं गया होगा ? कि जो मन से उस वक्त सोचा था । दूसरी तरह से प्रायश्चित्त तो मैंने ग्रहण किया है । क्या वो आचार नहीं माना जाएगा ? ऐसा चिन्तवन करते हुए वो मर गई ।

सूत्र – ११९५-११९८

उग्र कष्टदायक घोर उग्र तप करके वो लक्ष्मण साध्वी स्वच्छंद प्रायश्चित्तपन की वजह से क्लेश युक्त परिणाम के दोष से वेश्या के घर कुत्सित कार्य करनेवाली हल्की चाकरड़ी के रूप में पैदा हुई, खंडोष्ठा उसका नाम रखा गया । काफी मीठा बोलनेवाली मद्य-घास की भारी को वहन करनेवाली सभी वेश्या का विनय करनेवाली

और उनकी बुढ़ियाँ का चार गुना विनय करनेवाली थी । उसका लावण्य कान्ति से युक्त होने के बाद भी वो मस्तक से केश रहित थी । किसी दिन बुढ़ियाँ चिन्तवन करने लगी कि मेरे इस मस्तक जैसा लावण्य, रूप और कान्ति या वैसा इस भुवन में किसी का रूप नहीं है तो उसके नाक, कान और होठ को वैसे विरूपवाले बदसूरत कर दूँ ।

सूत्र – ११९९-१२०२

जब वो यौवनवंती होगी तब मेरी पुत्री की कोई ईच्छा नहीं रखेगा । या तो पुत्री समान उसे इस प्रकार करना युक्त नहीं है । यह काफी विनीत है । यहाँ से कहीं ओर चली जाएगी तो मैं उसे वैसी कर दूँ कि वो शायद दूसरे देश में चली जाए तो कहीं भी रहने का स्थान न पा सके और वापस आ जाए । उसे ऐसा वशीकरण दूँ कि जिससे उसका गुप्तांग सड़ जाए । हाथ-पाँव में बेड़ियाँ पहनाऊं जिससे नियंत्रणा से भटक जाए और पुरान कपड़े पहनाऊं और मन में संताप करते हुए शयन करे ।

सूत्र – १२०३-१२०८

उसके बाद खंडोष्ठा से भी सपने में सड़ा हुआ गुप्तांग, बेड़ी में जकड़े हुए, कान-नाक कटे हुए हो वैसी खुद को देखकर सपने का परमार्थ सोचकर किसी को पता न चले इस तरह वहाँ से भाग गई और किसी तरह से गाँव, पुर, नगर, पट्टण में परिभ्रमण करते करते छ मास के बाद संखेड़ नाम के खेटक में जा पहुँची । वहाँ कुबेर समान वैभववाले रंड़ पुत्र के साथ जुड़ गई । पहली बीबी जलन से उस पर काफी जलने लगी । उन के रोष से काँपते हुए उस तरह कुछ दिन पसार किए ।

एक रात को खंडोष्ठा भर निद्रा में सोती थी उसे देखकर अचानक चूल्हे के पास गइ और सुलगता काष्ठ ग्रहण करके आई । उस सुलगते लकड़े को उसके गुप्तांग में इस तरह घुसेड़ दिया कि वो फट गया और हृदय तक वो लकड़ा जा पहुँचा उसके बाद दुःखी स्वर से आक्रंद करने लगी । चलायमान पाषाण समान इधर-उधर रगड़ते हुए रेंगने लगी ।

सूत्र – १२०९-१२१४

और फिर वो ब्याहता स्त्री चिन्तवन करने लगी कि जीवनभर खड़ी न हो सके वैसे उसे डाम दूँ कि सौ भव तक मेरे प्रियतम को याद न करे । तब कुम्हार की शाला में से लोहे का कोष बनाकर तप्त लाल हो जाए उतना तपाकर उसकी योनि में उसे जोर से घुसेड़कर उस प्रकार इस भारी दुःख की वजह से आक्रान्त होनेवाली वहाँ मर के हे गौतम ! चक्रवर्ती की स्त्रीरत्न के रूप में पैदा हुई । इस ओर रंड़ापुत्र की बीबी ने उसके क्लेवर में जीव न होने के बावजूद भी रोष से छेदन करके छोटे-छोटे टुकड़े किए और उसके बाद श्वान-कौआ आदि को खाने के लिए हरएक दिशा में फेंका । उतने में बाहर गया हुआ रंड़ापुत्र भी घर आ पहुँचा । वो मन में विकल्प करने लगा । साधु के चरण कमल में पहुँचकर दीक्षा अंगीकार करके मोक्ष में गया ।

सूत्र – १२१५-१२१९

अब लक्ष्मणा देवी का जीव खंडोष्ठीपन में से स्त्रीरत्न होकर हे गौतम ! फिर उसका जीव छठ्ठी नारकी में जा पहुँचा । वहाँ नारकी का महाघोर काफी भयानक दुःख त्रिकोण नरकावास में दीर्घकाल तक भुगतकर यह आया हुआ उसका जीव तिर्यंच योनि में श्वान के रूप में पैदा हुआ । वहाँ काम का उन्माद हुआ । इसलिए मैथुन सेवन करने लगी । वहाँ बैल ने योनि में लात लगाई और चोट आई । योनि बाहर नीकल पड़ी और उसमें दश साल तक कृमि पैदा होकर उसे खाने लगे । वहाँ मरके हे गौतम !९९- बार कच्चे गर्भ में पैदा होकर गर्भ वेदना में पकी ।

सूत्र – १२२०-१२२६

उसके बाद जन्म से दरिद्रतावाले मानव के घर जन्म हुआ लेकिन दो महिने के बाद उसकी माँ मर गई । तब उसके पिता ने घर-घर घुमकर स्तनपान करवा के महाक्लेश से जिन्दा रखा । फिर उसे गोकुल में गोपाल की तरह रखा । वहाँ गाय के बछड़े अपनी माँ का दूध पान करते हो उन्हें रस्सी से बाँधकर गाय को दोहता हो उस वक्त

जो अंतराय कर्म उपार्जन किया उस कर्म की वजह से लक्ष्मणा के जीव ने कोड़ाकोड़ी भवांतर तक स्तनपान प्राप्त न किया । रस्सी से बँधा हुआ, रूकते हुए, बेड़ी से जकड़े हुए, दमन करते हुए माँ आदि के साथ वियोग पाते हुए भव में काफी भटका, उसके बाद मानव योनि में ड़ाकण स्त्री के रूप में पैदा हुआ । वहाँ श्वानपालक उसे घायल करके चले गए । वहाँ से मरकर यहाँ मनुष्यत्व प्राप्त कर के शरीर के दोष से इस महापृथ्वी मंड़ल में पाँच घरवाले गाँव में – नगर शहर या पट्टण में एक प्होर आधा प्होर एक पल भी सुख न पाया ।

सूत्र – १२२७-१२३२

हे गौतम ! उस मानव में भी नारकी के दुःख समान कईं रूलानेवाले घोर दुःख महसूस करके उस लक्ष्मणा देवी का जीव अति रौद्र ध्यान के दोष से मरकर सातवीं नारक पृथ्वी में खड़ाहड़ नाम के नरकावास में पैदा हुआ । वहाँ उस तरह के महादुःख का अहेसास करके तेंतीस सागरोपम की आयु पूर्ण करके वंध्या गाय के रूप में पैदा हुआ । पराये खेतर और आँगन में घुसकर उसका नुकसान करते हुए झाड़ी तोड़कर चारा खाती थी । तब कईं लोग ईकट्ठे होकर नीकल न सके वैसे कीचड़वाली जगह में ले गए, इसलिए उसमें फँस गई और अब बाहर नहीं नीकल सकती । उसमें फँसी हुई वो बेचारी, गाय को जलचर जीव खाते थे । और कौए-गीधड़ चोंच से मारते थे । क्रोध से व्याप्त उस गाय का जीव मरकर जल और धान्य रहित मारवाड़ देश के रण में दृष्टिविष साँप के रूप में पैदा हुआ । वो सर्प के भव में से फिर पाँचवी नरक पृथ्वी में पहुँचा ।

सूत्र – १२३३-१२३९

उस प्रकार लक्ष्मणा साध्वी का जीव हे गौतम ! लम्बे अरसे तक कठिन घोर दुःख भुगतते हुए चार गति रूप संसार में नारकी तिर्यंच और कुमानवपन में भ्रमण करके फिर से यहाँ श्रेणीक राजा का जीव जो आनेवाली चौबीसी में पद्मनाभ के पहले तीर्थंकर होंगे उनके तीर्थ में कुब्जिका के रूप में पैदा होगा । शरीरसीबी की खाण समान गाँव में या अपनी माँ को देखने से आनन्द देनेवाली नहीं होगी उस वक्त सब लोग यह उद्वेग करवानेवाली है, ऐसा सोचकर मेशगेरू के लेप का शरीर पर विलेपन करके गधे पर सवार होकर भ्रमण करवाएंगे और फिर उसके शरीर पर दोनों ओर पंछी के पींछे लगाएंगे, खोखरे शब्दवाला ड़िड़िम के आगे बजाएंगे एक गाँव में घुमाकर गाँव में से दूसरी जगह जाने के लिए नीकाल देंगे और फिर से गाँव में प्रवेश नहीं कर सकेंगे । तब अरण्य में वास करते हुए वो कंद-फल का आहार करती रहेगी । नाभि के बीच में झहरीले छूछूंदर के ड़ँसने से दर्द से परेशान होनेवाली वो पूरे शरीर पर गुमड़, दराज, खाज आदि चमड़ी की व्याधि पैदा होगी । उसे खुजलाते हुए वो घोर दुःसह, दुःख का अहेसास करेगी ।

सूत्र – १२४०-१२४१

वेदना भुगतती होगी तब पद्मनाभ तीर्थंकर भगवंत वहाँ समवसरण करेंगे और वो उनका दर्शन करेंगे इसलिए तुरन्त ही उसके और दूसरे उस देश में रहे भव्य जीव और नारी कि जिसके शरीर भी व्याधि और वेदना से व्याप्त होंगे वो सभी समुदाय के व्याधि तीर्थंकर भगवंत के दर्शन से दूर होंगे । उसके साथ लक्ष्मणा साध्वी का जीव जो कुब्जिका है वो घोर तप का सेवन करके दुःख का अंत पाएंगे ।

सूत्र – १२४२

हे गौतम ! यह वो लक्ष्मणा आर्या है कि जिसने अगीतार्थपन के दोष से अल्प कलुषता युक्त चित्त के दुःख की परम्परा पाई ।

सूत्र – १२४३-१२४४

हे गौतम ! जिस प्रकार यह लक्ष्मणा आर्या ने दुःख परम्परा पाई उसके अनुसार कलुषित चित्तवाले अनन्त अगीतार्थ दुःख की परम्परा पाने के लिए यह समझकर सर्व भाव से सर्वथा गीतार्थ होना या अगीतार्थ के साथ उनकी आज्ञा में रहना और काफी शुद्ध सुनिर्मल विमल शल्य रहित निष्कलुष मनवाला होना, उस प्रकार भगवंत

के पास से श्रवण किया हुआ कहता हूँ ।

सूत्र – १२४५-१२५०

जिनके चरणकमल प्रणाम करते हुए देव और अनुसरते मस्तक के मुकुट से संघट्ट हुए हैं ऐसे हे जगद्गुरु ! जगत के नाथ, धर्म तीर्थंकर, भूत और भावि को पहचाननेवाले, जिन्होंने तपस्या से समग्र कर्म के अंश जला दिए हैं ऐसे, कामदेव शत्रु का विदारण करनेवाले, चार कषाय के समूह का अन्त करनेवाले, जगत के सर्व जीव के प्रति वात्सल्यवाले, घोर अंधकार रूप मिथ्यात्व रात्रि के गहरे अंधेरे का नाश करनेवाले, लोकालोक को केवल ज्ञान से प्रकाशित करनेवाले, मोहशत्रु को महात करनेवाले, जिन्होंने राग, द्वेष और मोह समान चोर का दूर से त्याग किया है, सौ चन्द्र से भी ज्यादा सौम्य, सुख देनेवाला, अतुलबल पराक्रम और प्रभाववाले, तीन भुवन में अजोड़ महायश वाले, निरूपम रूपवाली, जिनकी तुलना में कोई न आ सके वैसे, शाश्वत रूप मोक्ष देनेवाले सर्व लक्षण से सम्पूर्ण, त्रिभुवन की लक्ष्मी से विभूषित हे भगवंत ! क्रमपूर्वक – परिपाटी से जो कुछ किया जाए तो कार्य की प्राप्ति होती है । लेकिन अकस्मात् अनवसर से भेड़ के दूध की तरह क्रम रहित कार्य की प्राप्ति कैसे हो सकती है ?

सूत्र – १२५१-१२५३

पहले जन्म में सम्यग्दर्शन, दूसरे जन्म में अणुव्रत, तीसरे जन्म में सामायिक चारित्र, चौथे जन्म में पौषध करे, पाँचवे में दुर्धर ब्रह्मचर्यव्रत, छठ्ठे में सचित्त का त्याग, उसके अनुसार सात, आँठ, नौ, दश जन्म में अपने लिए तैयार किए गए – दान देने के लिए – संकल्प किया हो वैसे आहारादिक का त्याग करना आदि । ग्यारहवे जन्म में श्रमण समान गुणवाला हो । इस क्रम के अनुसार संयत के लिए क्यों नहीं कहते ?

सूत्र – १२५४-१२५६

ऐसी कठिन बाते सुनकर अल्प बुद्धिवाले बालजन उद्वेग पाए, कुछ लोगों का भरोसा उठ जाए, जैसे शेर की आवाज से हाथी इकट्ठे भाग जाते हैं वैसे बालजन कष्टकारी धर्म सुनकर दश दिशा में भाग जाते हैं । उस तरह का कठिन संचय दुष्ट ईच्छावाला और बूरी आदतवाला सुकुमाल शरीरवाला सुनने की भी ईच्छा नहीं रखते । तो उस प्रकार व्यवहार करने के लिए तो कैसे तैयार हो सकते हैं ? हे गौतम ! तीर्थंकर भगवंत के अलावा इस जगत में दूसरे कोई भी ऐसा दुष्कर व्यवहार करनेवाला हो तो बताओ ।

सूत्र – १२५७-१२६०

जो लोग गर्भ में थे तब भी देवेन्द्र ने अमृतमय अँगूठा किया था । भक्ति से इन्द्र महाराजा आहार भी भगवंत को देते थे । और हंमेशा स्तुति भी करते थे । देवलोक में जब वो चव्य थे और जिनके घर अवतार लिया था उनके घर उसके पुष्प-प्रभाव से हंमेशा सुवर्ण की वृष्टि बरसती थी । जिनके गर्भ में पैदा हुए हो, उस देश में हर एक तरह की इति उपद्रव, मारीमरकी, व्याधि, शत्रु उनके पुण्य-प्रभाव से चले जाए, पैदा होने के साथ ही आकंपित समुदाय मेरु पर्वत पर सर्व ऋद्धि से भगवंत का स्नात्रमहोत्सव करके अपने स्थान पर गए ।

सूत्र – १२६१-१२६६

अहो उनका अद्भूत लावण्य, कान्ति, तेज, रूप भी अनुपम है । जिनेश्वर भगवंत के केवल एक पाँव के अँगूठे के रूप के बारे में सोचा जाए तो सर्व देवलोक में सर्व देवता का रूप इकट्ठा करे, उसे क्रोड़ बार क्रोड़ गुना करे तो भी भगवंत के अँगूठे का रूप काफी बढ़ जाता है । यानि लाल अंगारों के बीच काला कोलसा रखा हो उतना रूप में फर्क होता है । देवता ने शरण किए, तीन ज्ञान से युक्त कलासमूह के ताज्जुब समान लोक के मन को आनन्द करवानेवाला, स्वजन और बंधु के परिवारवाले, देव और असुर से पूज्य, स्नेही वर्ग की आशा पूरी करनेवाले, भुवन के लिए उत्तम सुख के स्थान समान, पूर्वभव में तप करके उपार्जित भोगलक्ष्मी ऐश्वर्य राजवैभव जो कुछ काफी अरसे से भुगतते थे वो अवधि ज्ञान से जाना कि वाकइ यह लक्ष्मी देखते ही नष्ट होने के स्वभाव वाली है । अहो यह लक्ष्मी पाप की वृद्धि करनेवाली होती है । तो हम क्या चारित्र नहीं लेते ?

सूत्र – १२६७-१२६९

जितने में इस तरह के मन-परीणाम होते हैं, उतने में लोकान्तिक देव भगवंत को विनती करते हैं -हे भगवंत ! जगत के जीव का हित करनेवाला धर्मतीर्थ आप प्रवर्तो । उस वक्त सारे पाप वोसिराकर देह ममत्व का त्याग कर के सर्व जगत में सर्वोत्तम ऐसे वैभव का तिनके की तरह त्याग करके इन्द्र के लिए भी जो दुर्लभ है वैसा निसंग उग्र कष्टकारी घोर अतिदुष्कर समग्र जगत में उत्कृष्ट तप और मोक्ष का आवश्यक कारण स्वरूप चारित्र सेवन करे ।

सूत्र – १२७०-१२७४

और फिर जो मस्तक फूट जाए वैसी आवाज करनेवाले इस जन्म के सुख के अभिलाषी, दुर्लभ चीज की ईच्छा करनेवाले होने के बावजूद भी मनोवांछित चीज सरलता से नहीं पा सकते । हे गौतम ! केवल जितनी मधु की बूँद है उतना केवल सुख मरणांत कष्ट सहे तो भी नहीं पा सकते । उनका दुर्विदग्धपन-अज्ञान कितना माने ? या हे गौतम ! जिस तरह के मानव है वो तुम प्रत्यक्ष देख कि जो तुच्छ अल्प सुख का अहेसास करते हैं जिन्हें कोई भी मानव सुनने के लिए तैयार नहीं है । कुछ मानव कीरमजी रंग के लिए, मानव के शरीर पुष्ट बनाने के लिए उस का लहू बलात्कार से निकालते हैं । कोई किसान का व्यापार करवाता है । कोई गाय चरवाने का काम करवाता है । दासपन, सेवकपन, पाँव का व्यापार कईं तरह के शिष्य, नौकरी, खेती, वाणिज्य, प्राणत्याग हो वैसे क्लेश परिश्रम साहसवाले कार्य, दारिद्र, अवैभवपन, इत्यादिक और घर-घर भटककर कर्म करना ।

सूत्र – १२७५-१२७८

दूसरे न देखे इस तरह खुद को छिपाकर ढिणीं ढिणीं आवाज करके चले, नग्न खूले शरीरवाला क्लेश का अहेसास करते हुए चले जिससे पहनने के कपड़े न मिले, वो भी पुराने, फटे, छिद्रवाले महा मुश्किल से पाए हो वो फटे हुए ओढ़ने के वस्त्र आज सी लूँगा-कल सी लूँगा ऐसा करके वैसे ही फटे हुए कपड़े पहने और इस्तमाल करे । तो भी हे गौतम ! साफ प्रकट परिस्फूटनपन से समज कि ऊपर बताए तरीको में से किसी लोक लोकाचार और स्वजन कार्य का त्याग करके भोगोपभोग और दान आदि को छोड़कर बूरा अशन भोजन खाता है ।

सूत्र – १२७९-१२८०

दौड़ादौड़ी करके छिपाकर बचाकर लम्बे अरसे तक रात दिन गुस्सा होकर, कागणी-अल्पप्रमाण धन इकट्ठा किया हो कागणी का अर्धभाग, चौथा हिस्सा, बीसवाँ हिस्सा भेजा । किसी तरह के कहीं से लम्बे अरसे से लाख या करोड़ प्रमाण धन इकट्ठा किया । जहाँ एक ईच्छा पूर्ण हुई कि तुरन्त दूसरी खड़ी होती है । लेकिन दूसरे मनोरथ पूर्ण नहीं होते ।

सूत्र – १२८१-१२८३

हे गौतम ! इस तरह के दुर्लभ चीज की अभिलाषा और सुकुमारपन धर्मारंभ के समय प्राप्त होती है । लेकिन कर्मारंभ में आकर विघ्न नहीं करते । क्योंकि किसी एक के मुँह में नीवाला है वहाँ तो दूसरे आकर उसके पास इख की गंड़ेरी धरते हैं । भूमि पर पाँव भी स्थापन नहीं करता । और लाखो स्त्रीयों के साथ क्रीड़ा करता है । ऐसे लोगों को भी दूसरे ज्यादा समृद्धिवाले सुनकर ऐसी ईच्छा होती है कि उसकी मालिकी के देश को स्वाधीन करूँ और उसके स्वामी को मेरी आज्ञा मनवाऊं ।

सूत्र – १२८४-१२८९

सीधी तरह आज्ञा न माने तो साम, भेद, दाम, दंड आदि नीति के प्रयोग करके भी आज्ञा मनवाना । उसके पास सैन्यादिक कितनी चीजे हैं । उसका साहस मालूम करने के लिए गुप्तचर-जासूस पुरुष के झरिये जांच-पड़ताल करवाए । या गुप्त चरित्र से खुद पहने हुए कपड़े से अकेला जाए । बड़े पर्वत, कील्ले, अरण्य, नदी उल्लंघन करके लम्बे अरसे के बाद कईं दुःख क्लेश सहते हुए वहाँ पहुँचे भूख से दुर्बल कंठवाला दुःख से करके

घर घर भटकते हुए भिक्षा की याचना करते हुए किसी तरह से उस राज्य का छिद्र और गुप्त बाते जानने की कोशीश करता है, फिर भी पता नहीं चल सकता ।

उस के बाद यदि किसी तरह से जिन्दा रहा और पुण्य पांगरने लगा तो फिर देह और वेश का परावर्तन कर के वो गृह में प्रवेश करे । उस वक्त उसे तुम कौन हो ? ऐसा पूछे तब वो भोजनादिक में अपना चारित्र प्रकट करे । युद्ध करने के लिए सज्ज होकर सर्व सेना वाहन और पराक्रम से टुकड़े-टुकड़े हो, वैसे लड़कर राजा को हरा दे ।

सूत्र – १२८९-१२९२

शायद उस राजा से पराभव हो तो कईं प्रहार लगने से गलते-बहते लहू से खरड़ित शरीरवाला हाथी, घोड़े और आयुध से व्याप्त रणभूमि में नीचे मुखवाला नीचे गिर जाए । तो हे गौतम ! उस वक्त चाहे जैसा भी दुर्लभ चीज पाने की अभिलाषा, बूरी आदत और सुकुमालपन कहाँ चला गया ? जो केवल खुद के हाथ से अपना आधा हिस्सा धोकर कभी भी भूमि पर पाँव स्थापन करने का नहीं सोचते जो दुर्बल चीज की अभिलाषावाला था । ऐसे मानवने भी ऐसी अवस्था पाई ।

सूत्र – १२९३-१२९७

यदि उसे कहा जाए कि महानुभाव धर्म कर तो प्रत्युत्तर मिले कि मैं समर्थ नहीं हूँ । तो हे गौतम ! अधन्य निर्भागी, पापकर्म करनेवाला ऐसे प्राणी को धर्मस्थान में प्रवृत्ति करने की कभी भी बुद्धि नहीं होती । वो यह धर्म एक जन्म में हो वैसा सरल कहना जैसे खाते पीते हमें सर्व होगा, तो जो जिसकी ईच्छा रखते हैं वो उनकी अनुकूलता के अनुसार धर्म प्रवेदन करना । तो व्रत-नियम किए बिना भी जीव मोक्ष की ईच्छा रखता है, वैसे प्राणी को रोष न हो, उस तरह से उनको धर्मकथन करना । लेकिन उनको मोक्ष का कथन न करना ऐसे लोगों को मोक्ष न हो और मृषावाद लगे ।

सूत्र – १२९८-१३०२

दूसरा तीर्थंकर भगवंत को भी राग, द्वेष, मोह, भय, स्वच्छंद व्यवहार भूतकाल में नहीं था, और भावि में होगा भी नहीं । हे गौतम ! तीर्थंकर भगवंत कभी भी मृषावाद नहीं बोलते । क्योंकि उन्हें प्रत्यक्ष केवलज्ञान है, पूरा जगत साक्षात् देखता है । भूत भावि, वर्तमान, पुण्य-पाप और तीन लोक में जो कुछ है वो सब उनको प्रकट है, शायद पाताल उर्ध्वमुखवाला होकर स्वर्ग में चला जाए, स्वर्ग अधोमुख होकर नीचे जाए तो भी यकीनन तीर्थंकर के वचन में फर्क नहीं आता । ज्ञान-दर्शन, चारित्र घोर काफी दुष्कर तप सद्गति का मार्ग आदि को यथास्थित प्रकटपन से प्ररूपते हैं । वरना वचन, मन या कर्म से वो तीर्थंकर नहीं है ।

सूत्र – १३०३-१३०४

शायद तत्काल इस भुवन का प्रलय हो तो भी वो सभी जगत के जीव, प्राणी, भूत का एकत्व हित हो उस प्रकार अनुकंपा से यथार्थ धर्म को तीर्थंकर कहते हैं । जिस धर्म को अच्छी तरह से आचरण किया जाए उसे दुर्भगता का दुःख दारिद्र रोग शोक दुर्गति का भय नहीं होता । और संताप उद्वेग भी नहीं होते ।

सूत्र – १३०५-१३०६

हे भगवंत ! हम ऐसा कहना नहीं चाहते कि अपनी मरजी से हम व्यवहार करते हैं । केवल इतना ही पूछते हैं कि जितना मुमकीन हो उतना वो कर सके । हे गौतम ! ऐसा करना युक्त नहीं है, वैसा पलभर भी मन से चिन्तवन करना हितावह नहीं है यदि ऐसा माने तो जानो कि उसके बल का वध किया गया है ।

सूत्र – १३०७-१३१०

एक मानव घी-खाण्ड की राबडी खाने के लिए समर्थ होता है । दूसरा माँस सहित मदिरा, तीसरा स्त्री के साथ खेलने के लिए शक्तिमान हो और चौथा वो भी न कर सके, दूसरा तर्क करने के पूर्व पक्ष की स्थापना करे यानि वादविवाद कर सके । दूसरा क्लेश करने के स्वभाववाला यह विवाद न कर सके । एक-दूसरे का किया हुआ

देखा करे और दूसरा बकवास करे । कोई चोरी, कोई जार कर्म करे, कोई कुछ भी नहीं करता । कुछ भोजन करने के लिए या अपनी शय्या छोड़ने के लिए समर्थ नहीं हो सकते । और मंच पर बैठे रहने के लिए शक्तिमान होते हैं । हे गौतम ! सचमुच मिच्छा मि दुक्कडम् इस तरह का देना हम नहीं कहते । दूसरा जो तुम कहते हो उसका उत्तर दूँ

सूत्र – १३११-१३१३

किसी मानव इस जन्म में समग्र उग्र संयम तप करने के लिए समर्थ न हो सके तो भी सद्गति पाने की अभिलाषावाला है । पंछी के दूध का, एक केश ऊखेड़ने का, रजोहरण की एक दशी धारण करना, वैसे नियम धारण करना, लेकिन इतने नियम भी जावज्जीव तक पालन के लिए समर्थ नहीं, तो हे गौतम ! उस के लिए तुम्हारी बुद्धि से सिद्धि का क्षेत्र इस के अलावा किसी दूसरा होगा ?

सूत्र – १३१४-१३१७

फिर से तुम्हें यह पूछे गए सवाल का प्रत्युत्तर देता हूँ कि चार ज्ञान के स्वामी, देव-असुर और जगत के जीव से पूजनीय निश्चित उस भव में ही मुक्ति पानेवाले हैं । आगे दूसरा भव नहीं होगा । तो भी अपना बल, वीर्य, पुरुषकार पराक्रम छिपाए बिना उग्र कष्टमय घोर दुष्कर तप का वो सेवन करते हैं । तो फिर चार गति स्वरूप संसार के जन्म-मरण आदि दुःख से भयभीत दूसरे जीव ने तो जिस प्रकार तीर्थंकर भगवंत ने आज्ञा की है, उसके अनुसार सर्व यथास्थित अनुष्ठान का पालन करना चाहिए ।

सूत्र – १३१८-१३२३

हे गौतम ! आगे तुने जो कहा है कि परिपाटी क्रम के अनुसार बताए अनुष्ठान करने चाहिए । हे गौतम ! दृष्टांत सुन ! बड़े समुद्र के भीतर दूसरे कईं मगरमच्छ आदि के टकराने की वजह से भयभीत कछुआ जल में बुड़ाबुड़ करते, किसी दूसरे ताकतवर जन्तु से काटते हुए, डँसते हुए, ऊपर फेंकते हुए, धक्के खाते हुए, नीगलते हुए, त्रस होते हुए छिपते, दौड़ते, पलायन होते, हर एक दिशा में उछलकर गिरते, पटकते वहाँ कईं तरह की परेशानी भुगतता, सहता, पलभर जितना भी कहीं मुश्किल से स्थान न पाता, दुःख से संताप पाता, काफी लम्बे अरसे के बाद वो जल को अवगाहन करते करते ऊपर के हिस्से में जा पहुँचा । ऊपर के हिस्से में पद्मिनी का गाड़ जंगल था उसमें लील पुष्प गाड़ पड़ से कुछ भी ऊपर के हिस्से में दिखाई नहीं देता था लेकिन इधर उधर घूमते महा मुश्किल से जमीं नीलफूल में पड़ी फाट-छिद्र देखा तो उस वक्त शरद पूर्णिमा होने से निर्मल आकाश में ग्रह नक्षत्र से परिवरित पूनम का चन्द्र देखने में आया ।

सूत्र – १३२४-१३२८

और फिर विकसित शोभायमान नील और श्वेत कमल शतपत्रवाले चन्द्र विकासी कमल आदि तरोताजा वनस्पति, मधुर शब्द बोलते हंस और कारंड़ जाति के पंछी चक्रवाक् आदि को सुनता था । साँतवींस वंश परम्परा में भी किसी ने न देखा हुआ उस तरह के अद्भूत तेजस्वी चन्द्रमंड़ल को देखकर पलभर चिन्तवन करने लगा क्या यही स्वर्ग होगा ? तो अब आनन्द देनेवाला यह तसवीर यदि मेरे बंधुओं को भी दिखाऊं ऐसा सोचकर अपने बंधुओं को बुलाने गया । लम्बे अरसे के बाद उसको ढूँढ़कर साथ वापस यहाँ लाया । गहरे घोर अंधकारवाली भादरवा महिने की कृष्णी चतुर्दशी की रात में वापस आया होने से पहले देखी हुई समृद्धि जब उसे देखने को नहीं मिलती तब इधर-ऊधर कईं बार घूमा तो भी शरद पूर्णिमा की रात की शोभा देखने के लिए समर्थ नहीं हो सका ।

सूत्र – १३२८-१३२९

उसी प्रकार चार गति स्वरूप भव समुद्र के जीव को मनुष्यत्व पाना दुर्लभ है । वो मिल जाने के बाद अहिंसा लक्षणवाले धर्म पाकर जो प्रमाद करते हैं वो कईं लाख भव से भी दुःख से फिर से पा सके वैसा मनुष्यत्व पाकर जैसे कछुआ फिर से समृद्धि न देख सका, वैसे जीव भी सुन्दर धर्मसमृद्धि पाने के लिए समर्थ नहीं होता ।

सूत्र – १३३०-१३३३

दो, तीन दिन की बाहर गाँव की सफर करनी होती है, तो सर्वादर से मार्ग की जरुरते, खाने का भाथा आदि लेकर फिर प्रयाण करते हैं तो फिर चोराशी लाख योनिवाले संसार की चार गति की लम्बी सफर के प्रवास के लिए तपशील-स्वरूप धर्म के भाथा का चिन्तवन क्यों नहीं करता ? जैसे जैसे प्रहर, दिन, मास, साल, स्वरूप समय पसार होता है, वैसे वैसे महा दुःखमय मरण नजदीक आ रहा है । वैसी समज जिस किसी को कालवेला का ज्ञान नहीं होता, शायद वैसा ज्ञान हो तो भी इस जगत में कोई अजरामर हुआ नहीं या कोई होगा भी नहीं ।

सूत्र – १३३४

प्रमादित हुए यह पापी जीव संसार के कार्य करने में अप्रमत्त होकर उद्यम करते हैं, उसे दुःख होने के बाद भी वो ऊंब नहीं जाता और हे गौतम ! उसे सुख से भी तृप्ति नहीं होती ।

सूत्र – १३३५-१३३८

इस जीवने सेंकड़ो जाति में उत्पन्न होकर जितने शरीर का त्याग किया है लेकिन उनमें से कुछ शरीर से भी समग्र तीनों भुवन भी भर जाए । शरीर में भी जो नाखून, दाँत, मस्तक, भ्रमर, आँख, कान आदि अवयव का जो त्याग किया है उन सबके अलग-अलग ढ़ग किए जाए तो उसके भी कुल पर्वत या मेरु पर्वत जितने ऊंचे ढ़ग बने, सर्व जो आहार ग्रहण किया है वो समग्र अनन्त गुण इकट्ठा किया जाए तो वो हिमवान, मलय, मेरु पर्वत या द्वीप सागर और पृथ्वी के ढ़ग से भी ज्यादा आहार के ढ़ग भारी अधिक हो भारी दुःख आने की वजह से इस जीव ने जो आँसू गिराए हैं वो सब जल इकट्ठा किया जाए तो समग्र कूएं, तालाब, नदी और समुद्र में भी न समा सके ।

सूत्र – १३३९-१३४१

माता का स्तनपान करके पीया गया दूध भी समुद्र जल से काफी बढ़ जाए । इस अनन्त संसार में स्त्रीओं की कईं योनि है उसमें से केवल एक कुत्ती सात दिन पहले मर गई हो और उसकी योनि सड़ गई हो उसके बीच जो कृमि पैदा हुए हो जीव ने जो क्लेवर छोड़ा हो वो सब इकट्ठे करके सातवीं नरक पृथ्वी से लेकर सिद्धिक्षेत्र तक चौदहराज प्रमाणलोक जितना ढ़ग किया जाए तो उस योनि में पैदा हुए कृमि क्लेवर के उतने अनन्त ढ़ग होते हैं ।

सूत्र – १३४२-१३४३

इस जीव ने अनन्तकाल तक हर-एक कामभोग यहाँ भुगते हैं । फिर भी हरएक वक्त विषय सुख अपूर्ण लगते हैं । लू-खस, खुजली के दर्दवाला शरीर को खुजलाते हुए दुःख को सुख मानता है वैसे मोह में बेचैन मानव काम के दुःख का सुख रूप मानते हैं । जन्म, जरा, मरण से होनेवाले दुःख को पहचानते हैं, अहेसास करते हैं । वो भी हे गौतम ! दुर्गति में गमन के लिए प्रयाण करनेवाला जीव विषय में विरक्त नहीं होता ।

सूत्र – १३४४-१३४६

सूर्य-चन्द्र आदि सर्व ग्रह से अधिक सर्व दोष को प्रवर्तानेवाले दुरात्मा पूरे जगत को पराभव करनेवाले कामाधीन बने परेशान करनेवाले हो तो दुरात्मा महाग्रह ऐसा कामग्रह है । अज्ञानी जड़ात्मा जानते हैं कि भोग ऋद्धि की संपत्ति सर्व धर्म का ही फल है तो भी काफी मूढ़ हृदयवाले पाप करके दुर्गति में जाते हैं ।

सूत्र – १३४७-१३४९

जीव के शरीर में वात, पित्त, कफ, धातु, जठराग्नि आदि के क्षोभ से पलभर में मौत होती है तो धर्म में उद्यम करो और खेद मत पाना । इस तरह के धर्म का सुन्दर योग मिलना काफी दुर्लभ है । इस संसार में जीव को पंचेन्द्रियपन, मानवपन, आर्यपन, उत्तम कुल में पैदा होना, साधु का समागम, शास्त्र का श्रवण, तीर्थंकर के वचन की श्रद्धा, आरोग्य, प्रव्रज्या आदि कि प्राप्ति काफी दुर्लभ है । यह सभी दुर्लभ चीजों की प्राप्ति होने के बावजूद भी शूल, सर्प, झहर, विशुचिका, जल, शस्त्र, अग्नि, चक्री आदि की वजह से मुहूर्त्तमात्र में जीव मरके दूसरे देह में संक्रमण करता है ।

सूत्र – १३५०-१३५४

तब तक आयु थोड़ा सा भी भुगतना बाकी है, जब तक अभी अल्प भी व्यवसाय कर सकते हो, तब तक में आत्महित की साधना कर लो । वरना पीछे से पश्चात्ताप करने का अवसर प्राप्त होगा । इन्द्रधनुष, बिजली देखते ही पल में अदृश्य हो वैसे संध्या के व्याधि और सपने समान यह देह है जो कच्चे मिट्टी के घड़े में भरे जल की तरह पलभर में पीगल जाता है । इतना समझकर ये जब तक इस तरह के क्षणभंगुर देह से छूटकारा न मिले तब तक उग्र कष्टकारी घोर तप का सेवन करो, आयु का क्रम कब तूटेगा उसका भरोसा नहीं है । हे गौतम ! हजार साल तक अति विपुल प्रमाण में संयम का सेवन करनेवाले को भी अन्तिम वक्त पर कण्डरिक की तरह क्लिष्टभाव शुद्ध नहीं होता । कुछ महात्मा जिस प्रकार शील और श्रामण्य ग्रहण किया हो उस प्रकार पुण्डरिक महर्षि की तरह अल्पकाल में अपने कार्य को साधते हैं ।

सूत्र – १३५५-१३५६

जन्म, जरा और मरण के दुःख से घिरे इस जीव को संसार में सुख नहीं है, इसलिए मोक्ष ही एकान्त उपदेश-ग्रहण करने के लायक है । हे गौतम ! सर्व तरह से और सर्व भाव से मोक्ष पाने के लिए मिला हुआ मानव भव सार्थक करना ।

अध्ययन-६-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

अध्ययन-७-प्रायश्चित्त सूत्र (चूलिका-१) ''एगंत निर्जरा''

सूत्र – १३५७-१३५९

हे भगवंत ! इस दृष्टांत से पहले आपने कहा था कि परिपाटी क्रम अनुसार (वो) प्रायश्चित्त आप मुझे क्यों नहीं कहते ? हे गौतम ! यदि तुम उसका अवलंबन करोगे तो प्रायश्चित्त वाकई तुम्हारी जो प्रकट धर्म सोच है वो और सुंदर सोच माना जाता है । फिर गौतम ने पूछा तब भगवंत ने कहा कि–जब तक देह में-आत्मा में संदेह हो तब तक मिथ्यात्व होता है और उसका प्रायश्चित्त नहीं होता ।

सूत्र – १३६०-१३६१

जो आत्मा मिथ्यात्व से पराभवित हुआ हो, तीर्थंकर भगवंत के वचन को विपरीत बोले, उनके वचन का उल्लंघन करे, वैसा करनेवाले की प्रशंसा करे तो वो विपरीत बोलनेवाला घोर गाढ़ अंधकार और अज्ञानपूर्ण पाताल में नरक में प्रवेश करनेवाला होता है । लेकिन जो सुन्दर तरह से ऐसा सोचता है कि–तीर्थंकर भगवंत खुद इस प्रकार कहते हैं वो खुद उस के अनुसार व्यवहार करते हैं ।

सूत्र – १३६२-१३६३

हे गौतम ! ऐसे जीव भी होते हैं कि जो जैसे तैसे प्रव्रज्या अंगीकार कर के वैसी अविधि से धर्म का सेवन करते हैं कि जिससे संसार से मुक्त न हो सके । उस विधि के श्लोक कौन-से हैं ? हे गौतम ! वो विधि श्लोक इस प्रकार जानना ।

सूत्र – १३६४-१३६५

चैत्यवंदन, प्रतिक्रमण, जीवादिक तत्त्व के सद्भाव की श्रद्धा, पाँच समिति, पाँच इन्द्रिय का दमन, तीन गुप्ति, चार कषाय का निग्रह उन सब में सावध रहना, साधुपन की सामाचारी और क्रिया-कलाप जानकर विश्वस्त होनेवाले, लगे हुए दोष की आलोचना करके शल्यरहित, गर्भावास आदि के दुःख की वजह से, काफी संवेग पानेवाला, जन्म, जरा, मरण आदि के दुःख से भयभीत, चार गतिरूप संसार के कर्म जलाने के लिए हंमेशा इस अनुसार हृदय में ध्यान करता है ।

सूत्र – १३६६-१३६८

जरा, मरण और काम की प्रचुरतावाले रोग क्लेश आदि बहुविध तरंगवाले, आँठ कर्म, चार कषायरूप भयानक जलचर से भरे गहरे भवसागर में इस मानवरूप में सम्यक्त्व ज्ञानचारित्ररूप उत्तम नाव जहाज पाकर यदि उसमें से भ्रष्ट हुआ हो तो दुःख का अन्त पाए बिना मैं पार रहित संसार सागर में लम्बे अरसे तक इधर-ऊधर भटकते पटकते भ्रमण करूँगा । तो वैसा दिन कब आएगा कि जब मैं शत्रु और मित्र को ओर समान पक्षवाला, निःसंग, हंमेशा शुभ ध्यान में रहनेवाला होकर विचरण करूँगा । और फिर भव न करना पड़े वैसी कोशीश करूँगा।

सूत्र – १३६९-१३७१

इस अनुसार बड़े अरसे से चिन्तवे हुए मनोरथ के सन्मुख होनेवाला उस रूप महासंपत्ति के हर्ष से उल्लासित होनेवाले, भक्ति के अनुग्रह से निर्भर होकर नमस्कार करके, रोमांच खड़ा होने से रोम-रोम व्याप्त आनन्द अंगवाला, १८ हजार शिलांग धारण करने के लिए उत्साहपूर्वक ऊंचे किए गए खंभेवाला, छत्तीस तरह के आचार पालन करने के लिए उत्कंठित, नष्ट किए गए समग्र मिथ्यात्ववाला, मद, मान, ईर्ष्या, क्रोध अंगीकार करके हे गौतम ! विधिवत् इस अनुसार विचरण करे ।

सूत्र – १३७२-१३७३

पंछी की तरह कोइ चीज या स्थान की ममता रहित, ज्ञान, दर्शन और चारित्र में उद्यम करनेवाला, धन, स्वजन आदि के संग रहित, घोर परिषह उपसर्गादिक को प्रकर्षरूप से जीतनेवाला, उग्र अभिग्रह प्रतिमादिक को

अपनाते हुए, राग-द्वेष का दूर से त्याग करते हुए, आर्त, रौद्र ध्यान से रहित, विकथा करने में अरसिक हो ।

सूत्र – १३७४-१३७५

जो कोइ बावन चंदन के रस से शरीर और और बाहूँ पर विलेपन करे, या किसी बाँस से शरीर छिले, कोई उसके गुण की स्तुति करे या अवगुण की नींदा करे तो दोनो पर समान भाव रखनेवाला उस प्रकार बल, वीर्य, पुरुषार्थ पराक्रम को न छिपाते हुए, तृण और मणि, ढ़ेफा और कंचन की ओर समान मनवाला, व्रत, नियम, ज्ञान, चारित्र, तप आदि समग्र भुवन में अद्वितीय, मंगलरूप, अहिंसा लक्षणयुक्त क्षमा-आदि दश तरह के धर्मानुष्ठान के लिए एकान्त स्थिर लक्षणवाला, सर्व जरुरी उस समय करने लायक स्वाध्याय ध्यान में उपयोगवाला, असंख्याता अनेक संयम स्थानक के लिए अस्खलित करणवाला, समस्त तरह से प्रमाद के परिहार के लिए कोशीशवाला, यतनावाला और अब फिर भूतकाल के अतिचार की नींदा और भावि में मुमकीन अतिचार का संवर करते हुए वो अतिचार से अटका, उस वजह से वर्तमान में अकरणीय की तरह पापकर्म का त्याग करनेवाला सर्वदोष रहित और फिर नियाणा संसार वृद्धि की जड़ होने से उससे रहित होनेवाला यानि निर्ग्रन्थ प्रवचन की आराधना आलोक या परलोक के बाह्य सुख पाने की अभिलाषा से न करते हुए, 'माया सहित झूठ बोलना' उसका त्याग करनेवाला ऐसे साधु या साध्वी उपर बताए गुण से युक्त मैंने किसी तरह से प्रमाद दोष से बार-बार कहीं भी किसी भी स्थान पर मन, वचन या काया से त्रिकरण विशुद्धि से सर्वभाव से संयम की आचरणा करते करते असंयम से स्खलना पाए तो उसे विशुद्धि स्थान हो तो केवल प्रायश्चित्त है ।

हे गौतम ! उस कारण से उसे प्रायश्चित्त से विशुद्धि का उपदेश देना लेकिन दूसरे तरीके से नहीं, उसमें जिन-जिन प्रायश्चित्त के स्थानक में जहाँ जहाँ जितना प्रायश्चित्त बताया है उसे ही-यकीनन अवधारित प्रायश्चित्त कहते हैं। हे भगवंत ! किस कारण से ऐसा कहा है ? हे गौतम ! यह प्रायश्चित्त सूत्र अनंतर अनंतर क्रमवाले हैं, कईं भव्यात्मा चार गति रूप संसार के कैदखाने में से बद्ध स्पृष्ट, निकाचित दुःख से मुक्त हो सके वैसे घोर पूर्व भव में किए कर्मरूप बेड़ी को तोड़कर जल्द मुक्त होंगे । यह प्रायश्चित्त सूत्र कईं गुणसमुद्र से युक्त दृढव्रत और चारित्रवंत हो, एकान्ते योग्य हो उनको आगे बताएंगे वैसे प्रदेश में दूसरा न सुन सके वैसे पढ़ाना, प्ररूपणा करना और जिस की जितने प्रायश्चित्त से श्रेष्ठ विशुद्धि हो सके उस अनुसार उसे राग-द्वेष सहित रूप से धर्म में अपूर्व रस पेदा हो वैसे वचन से उत्साहित करके यथास्थित न्यूनाधिक नहीं वैसा ही प्रायश्चित्त देना । इस कारण से वैसा ही प्रायश्चित्त प्रमाणित और टंकशाली है । उसे निश्चित अवधारित प्रायश्चित्त कहा ।

सूत्र – १३७६-१३७७

हे भगवंत ! कितने प्रकार के प्रायश्चित्त उपदिष्ट हैं ? हे गौतम ! दश प्रकार के प्रायश्चित्त उपदिष्ट हैं, वे पारंचित तक में कईं प्रकार का है । हे भगवंत ! कितने समय तक इस प्रायश्चित्त सूत्र के अनुष्ठान का वहन होगा ? हे गौतम ! कल्की नाम का राजा मर जाएगा । एक जिनालय से शोभित पृथ्वी होगी और श्रीप्रभ नाम का अणगार होगा तब तक प्रायश्चित्त सूत्र का अनुष्ठान वहन होगा । हे भगवंत ! उसके बाद क्या होगा ? उसके बाद कोई पुण्यभागी नहीं होगा कि जिन्हें यह श्रुतस्कंध प्ररूपा जाएगा ।

सूत्र – १३७८

हे भगवंत ! प्रायश्चित्त के कितने स्थान हैं ? हे गौतम ! प्रायश्चित्त के स्थान संख्यातीत बताए हैं । हे भगवंत! वो संख्यातीत प्रायश्चित्त स्थान में से प्रथम प्रायश्चित्त का पद कौन-सा है ? हे गौतम ! प्रतिदिन क्रिया सम्बन्धी जानना । हे भगवंत ! वो प्रतिदिन क्रिया कौन-सी कहलाती है ? हे गौतम ! जो बार-बार रात-दिन प्राण के विनाश से लेकर संख्याता आवश्यक कार्य के अनुष्ठान करने तक आवश्यक करना ।

हे भगवंत ! आवश्यक ऐसा नाम किस कारण से कहा जाता है ? हे गौतम ! सम्पूर्ण समग्र आँठ कर्म का क्षय करनेवाला उत्तम सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र काफी घोर वीर उग्र कष्टकारी दुष्कर तप आदि की साधना करने के

लिए प्ररूपे । तीर्थंकर आदि को आश्रित करके अपने-अपने बताए हुए नियमित समय की जगह-जगह रात-दिन हर एक समय जन्म से लेकर जो यकीनन किया जाए, साधना की जाए, उपदेश, प्ररूपणा से हंमेशा समजाया जाए, इस कारण से गौतम ! ऐसा कहते हैं कि यह अवश्य करने लायक अनुष्ठान है । उसे आवश्यक कहते हैं ।

हे गौतम ! जो भिक्षु उस अनुष्ठान के समय समय का उल्लंघन करते हैं, उसमें ढील करते हैं । अनुपयोग वाला प्रमादी होता है, अविधि करने से दूसरों को अश्रद्धा पैदा करनेवाला होता है, बल और वीर्य होने के बावजूद किसी भी आवश्यक में प्रमाद करनेवाला होता है, शातागारव या इन्द्रिय की लंपटता का कोई आलंबन पकड़कर देर कर के या उतावला होकर बताए गए समय पर अनुष्ठान नहीं करता । वो साधु महा प्रायश्चित्त पाता है ।

सूत्र – १३७९

हे भगवंत ! प्रायश्चित्त का दूसरा पद क्या है ? हे गौतम ! दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवा यावत् संख्यातीत प्रायश्चित्त पद स्थान को यहाँ प्रथम प्रायश्चित्त पद के भीतर अंतर्गत् रहे समझना । हे भगवंत ! ऐसा किस कारण से आप कहते हो ? हे गौतम ! सर्व आवश्यक के समय का सावधानी से उपयोग रखनेवाले भिक्षु रौद्र-आर्तध्यान, राग, द्वेष, कषाय, गारव, ममत्व आदि कईं प्रमादवाले आलंबन के लिए सर्वभाव और भवान्तर से काफी मुक्त हो, केवल ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तपोकर्म, स्वाध्याय, ध्यान, सुन्दर धर्म के कार्य में अत्यन्तरूप से अपना बल, वीर्य, पराक्रम न छिपाते हुए और सम्यग् तरह से उसमें सर्वकरण से तन्मय हो जाता है । जब सुन्दर, धर्म के आवश्यक के लिए रमणतावाला बने, तब आश्रवद्वार को अच्छी तरह से बँध करनेवाला हो, यानि कर्म आने के कारण को रोकनेवाला बने, तब अपने जीव वीर्य से अनादि भव के इकट्ठे किए गए अनिष्ट दुष्ट आठ कर्म के समूह को एकान्त में नष्ट करने के लिए कटिबद्ध लक्षणवाला, कर्मपूर्वक योगनिरोध करके जलाए हुए समग्र कर्मवाला, जन्म जरा, मरण स्वरूप चार गतिवाले संसार पाश बँधन से विमुक्त, सर्व दुःख से मुक्त होने से तीन लोक के शिखर स्थान रूप सिद्धशिला पर बिराजे । इस वजह से ऐसा कहा है कि इस प्रथम पद में बाकी प्रायश्चित्त के पद समाविष्ट हैं ।

सूत्र – १३८०

हे भगवंत ! वो आवश्यक कौन-से हैं ? चैत्यवंदन आदि । हे भगवंत ! किस आवश्यक में बार-बार प्रमाद दोष से समय का, समय का उल्लंघन या अनुपयोगरूप से या प्रमाद से अविधि से अनुष्ठान किया जाए या तो यथोक्त काल से विधि से सम्यग् तरह से चैत्यवंदन आदि न करे, तैयार न हो, प्रस्थान न करे, निष्पन्न न हो, वो देर से करे या करे ही नहीं या प्रमाद करे तो वैसा करनेवाले को कितना प्रायश्चित्त कहे ?

हे गौतम ! जो भिक्षु या भिक्षुणी यतनावाले भूतकाल के पाप की निंदा, भावि में अतिचार न करनेवाले, वर्तमान में अकरणीय पापकर्म न करनेवाले, वर्तमान में अकरणीय पापकर्म का त्याग करनेवाले सर्वदोष रहित बने पाप-कर्म के पच्चक्खाण युक्त दीक्षा दिन से लेकर रोज जावज्जीव पर्यन्त अभिग्रह को ग्रहण करनेवाले काफी श्रद्धावाले भक्तिपूर्ण दिलवाले या यथोक्त विधि से सूत्र और अर्थ को याद करते हुए दूसरे किसी में मन न लगाते हुए, एकाग्र चित्तवाले उसके ही अर्थ में मन की स्थिरता करनेवाला, शुभ अध्यवसायवाले, स्तवन और स्तुति से कहने के लायक तीनों समय चैत्य को वंदन न करे, तो एक बार के प्रायश्चित्त का उपवास कहना, दूसरी बार उसी कारण के लिए छेद प्रायश्चित्त देना । तीसरी बार उपस्थापना, अविधि से चैत्य को वंदन करे तो दूसरों को अश्रद्धा पैदा होती है । इसलिए बड़ा प्रायश्चित्त कहा है । और फिर

- जो हरी वनस्पति या बीज, पुष्प, फूल, पूजा के लिए महिमा के लिए शोभायमान के लिए संघट्ट करे, करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे, छेदन करे, करवाए या करनेवाले की अनुमोदना करे तो इन सभी स्थानक में उपस्थापना, खमण-उपवास चोथ भक्त, आयंबिल, एकासणु, निवि गाढ, अगाढ भेद से क्रमिक समझना।

सूत्र – १३८१

यदि कोई चैत्य को वंदन करता हो, वैसी स्तुति करता हो या पाँच तरह के स्वाध्याय करता हो उसे विघ्न करे या अंतराय करे या करवाए अगर दूसरा अंतराय करता हो तो उसे अच्छा माने अनुमोदना करे तो उसे उस स्थानक में पाँच उपवास, कारणवाले को एकासना और निष्कारणीक को संवत्सर तक वंदन न करना । यावत् ''पारंचियं'' करके उपस्थापना करना ।

सूत्र – १३८२

जो प्रतिक्रमण न करे उसे उपस्थापना का प्रायश्चित्त देना । बैठे-बैठे प्रतिक्रमण करनेवाले को खमण (उपवास), शून्याशून्यरूप से यानि कि यह सूत्र बोला गया है या नहीं वैसे उपयोगरहित अनुपयोग से प्रमत्तरूप से प्रतिक्रमण किया जाए तो पाँच उपवास, मांड़ली में प्रतिक्रमण न करे तो उपस्थापना; कुशील के साथ प्रतिक्रमण करे तो उपस्थापना, ब्रह्मचर्यव्रत में परिभ्रष्ट होनेवाले के साथ प्रतिक्रमण करे तो ''पारंचित'' प्रायश्चित्त देना । सर्व श्रमणसंघ को त्रिविध-त्रिविध से न खमे, न खमाए । क्षमा न दे और प्रतिक्रमण करे तो उपस्थापना, प्रायश्चित्त पद से पद स्पष्ट और अलग न बोलते हुए एक दुजे पद में मिश्रित अक्षरवाले प्रतिक्रमण के सूत्र बोले तो चोथ भक्त, प्रतिक्रमण किए बिना संथारा करे, खटियाँ पर सोए, बगल बदले तो उपवास, दिन में सोए तो पाँच उपवास ।

प्रतिक्रमण करके गुरु के चरणकमल में वसति की आज्ञा पाकर उसे दृष्टि से अवलोकन करे, वसति को अवलोकन करके गुरु को निवेदन न करे तो छठ्ठ, वसति को संप्रवेदन किए बिना रजोहरण पड़िलेहण करे तो पुरीमड्ढ, विधिवत् रजोहरण का प्रतिलेखन करके गुरु के पास मुहपत्ति पड़िलेहण किए बिना उपधि पड़िलेहण का संदिसाऊं का आदेश खुद माँग ले तो पुरीमड्ढ, उपधि संदिसाऊं ऐसी आज्ञा लिए बिना उपधि पड़िलेहे तो पुरीमड्ढ, उपयोग रहित उपधि या वसति का प्रतिलेखन करे तो पाँच उपवास, अविधि से वसति या दूसरा कुछ भी पात्रक मात्रक उपकरण आदि सहज भी अनुपयोग या प्रमाद से प्रतिलेखन करे तो लगातार पाँच उपवास, वसति, उपधि, पात्र, मात्रक, उपकरण को कोई भी प्रतिलेखन किए बिना या दुष्प्रतिलेखन करके उसका उपभोग करे तो पाँच उपवास, वसति या उपधि या पात्र, मात्रक, उपकरण का प्रतिलेखन ही न करे तो ''उपस्थापन'' उसके अनुसार वसति उपधि को प्रतिलेखन ही न करे तो उपस्थापन उस प्रकार वसति उपधि को प्रतिलेखन करने के बाद जिस प्रदेश में संथारा किया हो, जिस प्रदेश में उपधि की प्रतिलेखना की हो उस स्थान को निपुणता से धीरे-धीरे दंड़-पुच्छणक या रजोहरण से इकट्ठा करके उसे नजर से न देखे, काजा में जूँ या जन्तु को अलग करके एकान्त निर्भय स्थान में न रखे तो पाँच उपवास, जूँ या किसी जीव को ग्रहण करके काजा की परठवना कर के इरीयावही न प्रतिक्रमे तो उपवास, स्थान देखे बिना काजा की परठवना करे तो उपस्थापना (भले ही काज में जूँ या कोई जीव हो कि न हो लेकिन काजा की प्रत्युपेक्षणा करना जरुरी है ।)

यदि षट्पदिका काजा में हो और बोले कि नहीं है तो पाँच उपवास, उस अनुसार वसति उपधि का प्रतिलेखन करके समाधिपूर्वक विक्षुब्ध हुए बिना-परठवना न करे तो चौथ भक्त सूर्योदय होने से पहले समाधिपूर्वक विक्षुब्ध हुए बिना भी परठवना करे तो आयंबिल, हरितकाय, लीलोतरी, वनस्पतिकाय युक्त, बीजकाय युक्त, त्रसकाय दो इन्द्रियादिक जीव से युक्त स्थान में समाधिपूर्वक विक्षुब्ध हुए बिना भी परठवना करे या वैसे स्थान में दूसरा कुछ या उच्चारादिक (मल-मूत्र आदि) चीज परठवे, वोसिरावे तो पुरीमड्ढ, एकाशन आयंबिल यथाकर्म प्रायश्चित्त समझना, लेकिन यदि वहाँ किसी जीव के उपद्रव की संभावना न हो तो, यदि मौत के अलावा वेदना रूप उपद्रव की सम्भावना हो तो उपवास । उस स्थंड़िल की फिर से भी अच्छी तरह जाँच करके जीव रहित है, ऐसे निःशंक होकर फिर भी उसकी आलोचना करके यथायोग्य प्रायश्चित्त ग्रहण न करे तो उपस्थापन, समाधिपूर्वक परठवना करे तो भी सागारी-गृहस्थ रहता हो या रहनेवाला हो फिर भी परठवे तो उपवास । प्रतिलेखन न किया हो वैसी जगह में जो कुछ भी वासिरावे तो उपस्थापन ।

उसके अनुसार वसति उपधि को प्रतिलेखन करके समाधिपूर्वक क्षुब्ध हुए बिना परठवे फिर एकाग्र मानस वाला सावधानतापूर्वक विधि से सूत्र और अर्थ का अनुसरण करते हुए इरियावहियं न प्रतिक्रमे तो एकासन, मुहपत्ति ग्रहण किए बिना इरिया प्रतिक्रमण वंदन प्रतिक्रमण करे, मुहपत्ति रखे बिना बँगासा खाए, स्वाध्याय करे, वाचना दे, इत्यादिक सर्व स्थान में पुरीमड्ढ उस अनुसार इरिया प्रतिक्रम करके सुकुमाल सुवाली डसीओ युक्त चिकनाइ रहित सख्त न हो वैसी अच्छी ड़ँसीवाले कीड़ो से छिद्रवाला न हो, अखंड़ दांड़ीवाले दंड़ पुच्छणक से वसति की प्रमार्जना न करे तो एकासन, झाड़ु से वसति का कचरा साफ करे तो उपस्थापन, वसति में दंड़ पुच्छणक देकर इकट्ठा किए गए कूड़े की परठवना न करे तो उपवास, प्रत्युपेक्षणा किए बिना कूड़ा परठवे तो पाँच उपवास लेकिन षट्पदिका या कोइ जीव हो तो य कोइ जीव न हो तो उपस्थापन, वसति में रहे कूड़े का अवलोकन करने से यदि उसमें षट्पदिका हो उसे ढूँढ़कर अलग करके इकट्ठा करके ग्रहण करे वैसा प्रायश्चित्त सर्व भिक्षु के बीच हिस्से करके बाँटा न हो तो एकासन देना । यदि खुद ही षट्पदिका ग्रहण करके प्रायश्चित्त विभाग पूर्वक न दे । अन्योन्य भीतर से एक दुजे को न अपनाए तो पारंचित ।

उस अनुसार वसति दंड़ पुच्छणक से विधिवत् प्रमार्जन करके काजा को अच्छी तरह से अवलोकन करके षट्पदिका को काजा में से अलग करके काजा परठवे सम्यग् विधि सहित काफी उपयोग और एकाग्र मानसवाला सूत्र, अर्थ और तदुभय का स्मरण करनेवाला जो भिक्षु इरिया प्रतिक्रम न करे तो आयंबिल और उपवास का प्रायश्चित्त ।

उस अनुसार हे गौतम ! आगे बताएंगे उसका प्रतिक्रमण करे – दिन के पहले पहोर की देढ़ घड़ी न्यून ऐसे समय में जो भिक्षु गुरु के पास विधि सहित सज्झाय संदिसाऊं – ऐसा कहकर एकाग्र चित्त से श्रुत में उपयोगवाला दृढधृति पूर्वक एक घड़ी न्यून प्रथम पोरसी में जावज्जीव के अभिग्रह सहित रोज अपूर्वज्ञान ग्रहण न करे उसे पाँच उपवास का प्रायश्चित्त । अपूर्वज्ञान पढ़ना न हो सके तो पहले का पढ़ा हुआ हो उस सूत्र अर्थ तदुभय को याद करते हुए एकाग्र मन से परावर्तन न करे और भोजन, स्त्री, राजा, चोर, देश आदि की विचित्र विकथा करने में समय पसार करके मन मनाए तो वो वंदन करने के योग्य नहीं । पहले पढ़े हुए नहीं है, अपूर्वज्ञान ग्रहण करना नामुमकीन हो उन्हें भी एक घटिका न्यून ऐसी प्रथम पोरीसी में पंचमंगल का फिर से परावर्तन करना हो, ऐसा न करे और विकथा ही करे या निरर्थक बाहर की फिझूल बातें सुना करे तो वह अवंदनीय है ।

उस अनुसार एक घडी न्यून प्रथम पोरिसी में जो भिक्षु एकाग्रचित्त से स्वाध्याय करके उसके बाद पात्रा, मात्रक, कामढ़-पात्र या वस्त्र विशेष, भाजन, उपकरण आदि को अव्याकुलपन से उपयोग सहित विधि से प्रतिलेखना न करे तो उसे उपवास का प्रायश्चित्त समझना । अब भिक्षु शब्द और प्रायश्चित्त शब्द यह दोनों शब्द को हर एक पद के साथ जुड़ना ।

यदि वो भाजन उपकरण का उपयोग न किया हो तो उपवास लेकिन अव्याकुल उपयोग विधि से प्रतिलेखना किए बिना उपभोग करे तो पाँच उपवास । इस क्रम से प्रथम पोरिसी पूर्ण की । दूसरी पोरिसी में अर्थग्रहण न करे तो पुरीमड्ढ यदि व्याख्यान हो और उसे श्रवण न करे तो अवंदनीय, व्याख्यान की कमी में वाचनादिक स्वाध्याय न करे तो पाँच उपवास ।

ऐसा करते हुए तब कालवेला प्राप्त हो उस समय देवसिक अतिचार में बताए जो कोई अतिचार सेवन हुए हो उसका निन्दन, गर्हण, आलोचन, प्रतिक्रमण करने के बावजूद भी, जो कुछ कायिक, वाचिक, मानसिक, उत्सूत्र, आचरण करने से, उन्मार्ग का आचरण करने से, अकल्प्य का सेवन करने से, अकरणीय का समाचरण करने से, दुर्ध्यान या दुष्ट चिन्तवन करने से अनाचार का सेवन करने से, न इच्छने के लायक आचरण करने से, अश्रमण प्रायोग्य व्यवहार आचरण करने से, ज्ञान के लिए, दर्शन के लिए, चारित्र के लिए, श्रुत के लिए, सामायिक के लिए, तीन गुप्ति, चार कषाय, पाँच महाव्रत, छ जीवनिकाय, सात तरह की पिंड़ेषणा आदि आँठ प्रवचनमाता,

नौ तरह की ब्रह्मचर्य की गुप्ति, दश तरह का श्रमण धर्म आदि और दूसरे काफी आलापक आदि में बताए गए का खंड़न विराधन हुआ हो और उस निमित्त से आगम के कुशल ऐसे गीतार्थ गुरु के बताए हुए प्रायश्चित्त यथाशक्ति अपना बल वीर्य पुरुषार्थ पराक्रम छिपाए बिना अशठरूप से दीनता रहित मानस से अनशन आदि बाह्य और अभ्यंतर बारह तरह के तपकर्म को गुरु के पास फिर से अवधारण निश्चित् करके काफी प्रकटरूप से तहत्ति ऐसा कहकर अभिनन्दे गुरु के दिए हुए प्रायश्चित्त तप का एकसाथ या टुकड़े-टुकड़े हिस्से करके सम्यग् तरह से न दो तो वो भिक्षु अवंदनीय बनते हैं ।

हे भगवंत ! किस वजह से खंड़ खंड़ तप यानि बीच में पारणा करके विसामा लेने के लिए तप प्रायश्चित्त सेवन करे ? हे गौतम ! जो भिक्षु छ महिने, चार महिने, मासक्षमण एक साथ करने के लिए समर्थ न हो वो छठ्ठ, अठ्ठम, चार, पाँच, पंद्रह दिन ऐसे उपवास करके भी वो प्रायश्चित्त चूका दे । दूसरा ओर भी कोई प्रायश्चित्त उसके भीतर समा जाए, इस वजह से खंड़ा-खंड़ी बीच में विसामा लेने के लिए शक्ति अनुसार तप-प्रायश्चित्त का सेवन करे। ऐसा करते-करते दिन के मध्याह्न के समय होनेवाले पुरीमड्ढ के वक्त में अल्पसमय बाकी रहा । उस अवसर पर यदि कोई प्रतिक्रमण करते हुए, वंदन करते हुए, स्वाध्याय करते हुए, परिभ्रमण करते, चलते, जाते, खड़े रहते, बैठते, उठते, तेऊकाय का स्पर्श होता हो और भिक्षु उसके अंग न खींचे, संघट्टा न रोके, तो उपवास, दूसरों को भी यथायोग्य प्रायश्चित्त में प्रवेश करवाए या अपनी शक्ति अनुसार तपकर्म का सेवन न करे तो उसे दूसरे दिन चार गुना प्रायश्चित्त बताए, जो वांदते हो या प्रतिक्रमण करते हो उसकी आड़ लेकर साँप या बिल्ली जाए तो उसका लोच करना । या दूसरे स्थान पर चले जाए । उसकी तुलना में उग्रतप में रमणता करना । यह बताए हुए विधान न करे तो गच्छ के बाहर नीकालना ।

जो भिक्षु उस महा उपसर्ग को सिद्ध करनेवाला, पैदा करनेवाला, दुर्निमित्त और अमंगल का धारक या वाहक हो, उसे गच्छ बाहर करने के उचित समझना । जो पहली या दूसरी पोरिसी में इधर-ऊधर भटकता हो, गमन करता हो, अनुचित समय में घूमनेवाला, छिद्र देखनेवाला । यदि वो चार आहार को-चोविहार के पच्चक्खाण न करे तो छठ्ठ, दिन में स्थंड़िल स्थान की प्रतिलेखना करके रात में जयणा पूर्वक मातृ या स्थंड़िल वोसिरावे तो ग्लाने एकासन, दूसरे को तो छठ्ठ का ही प्रायश्चित्त, यदि स्थंड़िल स्थान दिन में जीवजन्तु रहित जाँच न की हो, और भाजन, पूंजना-प्रमार्जन न किया हो, स्थान न देखा हो, मातृ करने का भाजन भी जयणा से न देखा हो और रात को, ठल्ला या मातृ परठवे तो ग्लान को एकासन, बाकी को दुवालस-पाँच उपवास या ग्लान को मिच्छामि दुक्कडम्

उस प्रकार प्रथम पोरिसी मेंसूत्र का, दूसरी पोरिसी में अर्थ का अध्ययन छोड़कर जो स्त्री कथा, भक्तकथा, देशकथा, राजकथा, चोरकथा या गृहस्थ की पंचात की कथा करे या दूसरी असंबद्ध कथा करे, आर्त रौद्रध्यान की उदीरणा करवानेवाली कथा करे, वैसी प्रस्तावना उदीरणा करे या करवाए वो एक साल तक अवंदनीय किसी वैसे बड़ी वजह के वश से प्रथम या दूसरी पोरिसी में एक पल या आधा पल कम स्वाध्याय हुआ हो तो ग्लान को मिच्छामि दुक्कडम् । दूसरों को निव्विगइ, अति निष्ठुरता से या ग्लान से यदि किसी भी तरह से कोई भी कारण उत्पन्न होने से बार-बार गीतार्थ गुरु ने मना करने के बावजूद आकस्मिक किसी दिन बैठे-बैठे प्रतिक्रमण किया हो तो एक मास अवंदनीय । चार मास तक उसे मौनव्रत रखना चाहिए । यदि कोई प्रथम पोरिसी पूर्ण होने से पहले और तीसरी पोरिसी बीत जाने के बाद भोजन पानी ग्रहण करे और उपभोग करे तो उसे पुरीमड्ढ, गुरु के सन्मुख जाकर इस्तमाल न करे तो चऊत्थं, उपयोग किए बिना कुछ भी ग्रहण करे तो चऊत्थं, अविधि से उपयोग करे तो उपवास, आहार के लिए, पानी के लिए, स्वकार्य के लिए, गुरु के कार्य के लिए, बाहर की भूमि से नीकलनेवाले गुरु के चरण में मस्तक का संघट्ट करके ''आवस्सिआए'' पद न कहे, अपने उपाश्रय की वसति के द्वार में प्रवेश करे, निसीह न कहे तो पुरिमड्ढ, बाहर जाने की सात वजह के अलावा वसति में से बाहर नीकले तो उसे गच्छ से बाहर कर दो ।

राग से बाहर जाए तो छेदोपस्थापन, अगीतार्थ या गीतार्थ को शक पैदा हो वैसे आहार, पानी, औषध, वस्त्र, दांड़ आदि अविधि से ग्रहण करे और गुरु के पास आलोचना न करे तो तीसरे व्रत का छेद, एक मास तक अवंदनीय और उसके साथ मौनव्रत रखना । आहार पानी औषध या अपने या गुरु के कार्य के लिए गाँव में, नगर में, राजधानी में, तीन मार्ग, चार मार्ग, चौराहा या सभागृह में प्रवेश करके वहाँ कथा या विकथा करने लगे तो उप-स्थापन, पाँव में पग रक्षक-उपानह पहनकर वहाँ जाए तो उपस्थापन । उपानह ग्रहण करे तो उपवास, वैसा अवसर खड़ा हो और उपानह को इस्तमाल करे तो उपवास । कहीं गया, खड़ा रहा और किसी ने सवाल किया तो उसे कुशलता और मधुरता से कार्य की जरुरत जितना अल्प, अगर्वित, अतुच्छ, निर्दोष समग्र लोगों के मन को आनन्द देनेवाले, लोक और परलोक के हितकार प्रत्युत्तर न दे तो अवंदनीय, यदि अभिग्रह ग्रहण न किया हो वैसा भिक्षुक सोलह दोष रहित लेकिन सावद्ययुक्त वचन बोले तो उपस्थापन, ज्यादा बोले तो उपस्थापन, कषाययुक्त वचन बोले तो अवंदनीय । कषाय से उदीरत लोगों के साथ भोजन करे या रात को साथ में रहे तो एक मास तक मौनव्रत, अवंदनीय उपस्थानरूप, दूसरे किसी को कषाय का निमित्त देकर कषाय की उदीरणा करवाए, अल्प कषायवाले को कषाय की वृद्धि करवाके किसी की मर्म-गुप्त बातें खुली कर दे । इस सब में गच्छ के बाहर नीकालना ।

कठोर वचन बोले तो पाँच उपवास, कठोर शब्द बोले तो पाँच उपवास, खर, कठोर, कड़े, निष्ठुर, अनिष्ट वचन बोले तो उपस्थापन, गालियाँ दे तो उपवास, क्लेश करनेवाले कलह-कंकास, तोफान लड़ाई करे तो उसे गच्छ के बाहर नीकालना । मकार, चकार, जकरादिवाली गालियाँ अपशब्द बोले तो उपवास, दूसरी बार बोले तो अवंदनीय, मारे तो संघ के बाहर नीकालना, वध करे तो संघ के बाहर नीकालना, खुदता हो, तोड़ता हो, रेंगता, लड़ता, अग्नि जलाता, दूसरों से जलाए पकाए, पकवाए, तो हरएक में संघ से बाहर करना । गुरु को भी सामने चाहे वैसे शब्द सुनाए, गच्छनायक की किसी तरह से हलकी लघुता करे, गच्छ के आचार, संघ के आचार, वंदन प्रतिक्रमण आदि मंड़ली के धर्म का उल्लंघन करे, अविधि से दीक्षा दे, बड़ी दीक्षा दे, अनुचित को सूत्र, अर्थ या तदुभय की प्ररूपणा करे, अविधि से सारणा-वारणा-चोयणा-पड़िचोयणा करे या विधि से सारणा-वारणा-चोयणा-पड़िचोयणा न करे, उन्मार्ग की ओर जानेवाले को यथाविधि से सारणादिक न करे यावत् समग्र लोक के सान्निध्य में अपने पक्ष को गुण करनेवाला, हित, वचन, कर्मपूर्वक न कहे तो हर एक में क्रमिक कुल, गण और संघ के बाहर नीकालना । बाहर करने के बाद भी वो काफी घोर वीर तप का अनुष्ठान करने में काफी अनुरागवाला हो जाए तो भी हे गौतम ! वो न देखने के लायक है, इसलिए कुल गण और संघ के बाहर किए गए उसके पास पल, आधा पल, घटी या अर्ध घटीका जितने वक्त के लिए भी न रहना ।

आँख से नजर किए बिना यानि जिस स्थान पर परठवना हो उस स्थान की दृष्टि प्रतिलेखना किए बिना ठल्ला, मातृ, बलखा, नासिक मेल, श्लेष्म, शरीर का मेल परठवे, बैठते संड़ासग-जोड़ सहित प्रमार्जना न करे, तो उसे क्रमिक नीवी और आयंबिल प्रायश्चित्त । पात्रा, मात्रक या किसी भी उपकरण दंड आदि जो कोई चीज स्थापन करते, रखते, लेते, ग्रहण करते, देते अविधि से स्थापन करे, रखे – ले, ग्रहण करे या दे, यह आदि अभावित क्षेत्र में करे तो चार आयंबिल और भावित क्षेत्र में उपस्थापन, दंड, रजोहरण, पादप्रोंछनक भीतर पहनने की सूती कपड़ा, चोलपट्टा, वर्षा कल्प कँबल यावत् मुहपत्ति या दूसरे किसी भी संयम में जरुरी ऐसे हर एक उपकरण प्रतिलेखन किए बिना, दुष्प्रतिलेखन किए हों, शास्त्र में बताए प्रमाण से कम या ज्यादा इस्तमाल करे तो हर एक स्थान में क्षपण-उपवास का प्रायश्चित्त ।

ऊपर के हिस्से में पहनने का कपड़ा, रजोहरण, दंड़क अविधि से इस्तमाल करे तो उपवास, अचानक रजोहरण (कुल्हाड़ी की तरह) खंभे पर स्थापन करे तो उपस्थापन, शरीर के अंग-उपांग चंपि करवाए या दबवाए तो उपवास, रजोहरण को अनादर से पकड़ना चऊत्थं, प्रमत्त भिक्षु की लापरवाही से अचानक मुहपत्ति आदि कोई भी संयम के उपकरण गुम हो जाए, नष्ट हो तो उसके उपवास से लेकर उपस्थापन, यथायोग्य गवेषणा करके ढूँढ़े, मिच्छामि दुक्कडम् दे, न मिले तो वोसिरावे, मिले तो फिर से ग्रहण करे ।

भिक्षु को अप्काय और अग्निकाय के संघट्टण आदि एकान्त में निषेध किया है । जिस किसी को ज्योति या आकाश में से गिरनेवाली बारिस की बूँद से उपयोग सहित या रहित अचानक स्पर्श हो जाए तो उसके लिए आयंबिल कहा है । स्त्री के अंग के अवयव को सहज भी हाथ से, पाँव से, दंड़ से, हाथ में पकड़े तिनके के अग्र हिस्से या खंभे से संघट्टा करे तो पारंचित प्रायश्चित्त । बाकी फिर अपने स्थान से विस्तार से बताए जाएंगे ।

सूत्र – १३८३-१३८४

ऐसे करते हुए भिक्षा का समय आ पहुँचा । हे गौतम ! इस अवसर पर पिंड़ेसणा-शास्त्र में बताए विधि से दीनता रहित मनवाला भिक्षु बीज और वनस्पतिकाय, पानी, कीचड़, पृथ्वीकाय को वर्जते, राजा और गृहस्थ की ओर से होनेवाले विषम उपद्रव-कदाग्रही को छोड़नेवाला, शंकास्थान का त्याग करनेवाला, पाँच समिति, तीन गुप्ति में उपयोगवाला, गोचरचर्या में प्राभृतिक नाम के दोषवाली भिक्षा का वर्जन न करे तो उसको चोथभक्त प्रायश्चित्त । यदि वो उपवासी न हो तो स्थापना कुल में प्रवेश करे तो उपवास, जल्दबाझी में प्रतिकूल चीज ग्रहण करने के बाद तुरन्त ही निरुपद्रव स्थान में न परठवे तो उपवास, अकल्प्य चीज भिक्षा में ग्रहण करने के बाद यथा-योग्य उपवास आदि, कल्प्य चीज का प्रतिबंध करे तो उपस्थापन, गोचरी लेने के लिए नीकला भिक्षु बाते-विकथा की प्रस्तावना करे, उदीरणा करे, कहने लगे, सुने तो छठ्ठ प्रायश्चित्त, गोचरी करके वापस आने के बाद लाए गए आहार, पानी, औषध जिसने दिए हों, जिस तरह ग्रहण किया हो, उसके अनुसार और उस क्रम से न आलोवे तो पुरिमड्ढ, इरिय० प्रतिक्रमे बिना चावल-पानी न आलोवे, तो पुरिमड्ढ, रजयुक्त पाँव का प्रमार्जन किए बिना इरिया प्रतिक्रमे तो पुरिमड्ढ, इरिया० पड़िक्कमने की ईच्छावाले पाँव के नीचे की भूमि के हिस्से की तीन बार प्रमार्जन न करे तो नीवी, कान तक और होठ पर मुहपत्ति रखे बिना इरिया प्रतिक्रमे तो मिच्छामि दुक्कडम् और पुरिमड्ढ ।

सज्झाय परठवते – गोचरी आलोवते धम्मो मंगलम् की गाथा का परावर्तन किए बिना चैत्य और साधु को वन्दे बिना पच्चक्खाण पूरे करे तो पुरिमड्ढ, पच्चक्खाण पूरे किए बिना भोजन, पानी या औषध का परिभोग करे तो चोथभक्त, गुरु के सन्मुख पच्चक्खाण न पारे तो, उपयोग न करे, प्राभृतिक न आलोवे, सज्झाय न परठवे, इस हर एक प्रस्थापन में, गुरु भी शिष्य की और उपयोगवाले न बने तो उनको पारंचित प्रायश्चित्त, साधर्मिक, साधु को गोचरी में से आहारादिक दिए बिना भक्ति किए बिना कुछ आहारादिक परिभोग करे तो छठ्ठ, भोजन करते, परोंसते यदि नीचे गिर जाए तो छठ्ठ, कटु, तीखे, कषायेल, खट्टे, मधुर, खारे रस का आस्वाद करे, बार-बार आस्वाद करके वैसे स्वादवाले भोजन करे तो चोथ भक्त, वैसे स्वादिष्ट रस में राग पाए तो खमण या अठ्ठम, काऊस्सग्ग किए बिना विगइ का इस्तमाल करे तो पाँच आयंबिल, दो विगइ से ज्यादा विगइ का इस्तमाल करे तो पाँच निर्विकृतिक, निष्कारण विगइ का इस्तमाल करे तो अठ्ठम, ग्लान के लिए अशन, पान, पथ्य, अनुपान ही आए हो और बिना दिया गया इस्तमाल करे तो पारंचित ।

ग्लान की सेवा-मावजत किए बिना भोजन करे तो उपस्थापन, अपने-अपने सारे कर्तव्य का त्याग करके ग्लान के कार्य का आलम्बन लेकर अपने कर्तव्य में प्रमाद का सेवन करे तो वो अवंदनीय, ग्लान के उचित जो करने लायक कार्य न कर दे तो अठ्ठम, ग्लान, बुलाए और एक शब्द बोलने के साथ तुरन्त जाकर जो आज्ञा दे उसका अमल न करे तो पारंचित, लेकिन यदि वो ग्लान साधु स्वस्थ चित्तवाला हो तो । यदि सनेपात आदि कारण से भ्रमित मानसवाले हो तो उस ग्लान से कहा हो वैसा न करना हो । उसके उचित हितकारी जो होता हो वो ही करना, ग्लान के कार्य न करे उसे संघ के बाहर नीकालना ।

आधाकर्म, औदेशिक, पूर्तिकर्म, मिश्रजात, स्थापना, प्राभृतिका, प्रादुष्करण, क्रीत, प्रामित्यक, अभ्याहृत, उद्भिन्न, मालोपहृत, आछेद्य, अनिसृष्ट, अध्यवपुरक, धात्री, दुत्ति, निमित्त, आजीवक, वनीपक, चिकित्सा, क्रोध, मान, माया, लोभ, पूर्वपश्चात् संस्तव, विद्या, मंत्र, चूर्ण, योग, मूल कर्मशक्ति, म्रक्षित, निक्षिप्त, पिहित, संहृत, दायक, उद्भिन्न, अपरिणत, लिप्त, छर्दित, इन बियालीश आहार के दोष में से किसी भी दोष से दुषित आहारपानी औषध का परिभोग करे तो यथायोग्य क्रमिक उपवास, आयंबिल का प्रायश्चित्त देना ।

छ कारण के गैरमोजुदगी में भोजन करे तो अठ्ठम, धुम्रदोष और अंगार दोषयुक्त, आहार का भोगवटा करे तो उपस्थापन, अलग-अलग आहार या स्वादवाले संयोग करके जिह्वा के स्वाद के पोषण के लिए भोजन करे तो आयंबिल और बल, वीर्य, पुरुषकार, पराक्रम होने के बावजूद अष्टमी, चतुर्दशी, ज्ञानपंचमी, पर्युषणा धोकर पानी न पीए तो चऊत्थ, पात्रा धोए हुए पानी परठवे तो दुवालस, पात्रा, मात्रक, तरपणी या किसी भी तरह के भाजन उपकरण को गीलापन दूर करके सूखाकर चिकनाइवाले या चिकनाइ रहित बिना साफ किए स्थापित करके रखे तो चोथभक्त, पात्रबाँध की गठान न छोड़े, उसकी पड़िलेहणा न करे तो चोथ भक्त । भोजन मंड़ली में हाथ धोए, उसके पानी में पाँव का संघट्टा करके चले, भोजन करने की जगह साफ करके दंड़पुच्छणक से काजा न ले तो नीवी, भोजन मांड़ली के स्थान में जगह साफ करके काजा इकट्ठा करके इरिया न प्रतिक्रमे तो नीवी ।

उस प्रकार इरियावही कह कर बाकी रहे दिन का यानि तिविहार या चोविहार का प्रत्याख्यान न करे तो आयंबिल गुरु के समक्ष वो पच्चक्खाण न करे तो पुरिमड्ढ, अविधि से पच्चक्खाण करे तो आयंबिल, पच्चक्खाण करने के बाद चैत्य और साधु को न वांदे तो पुरिमड्ढ, कुशील को वंदन करे तो अवंदनीय, उसके बाद के संयम में बाहर ठंड़िल भूमि पर जाने के लिए पानी लेने के लिए जाए, बड़ी नीति करके वापस आए तो उस वक्त कुछ न्यून तीसरी पोरिसी पूर्ण बने । उसमें भी इरियावही प्रतिक्रम करके विधि से गमनागमन की आलोचना करके पात्रा, मात्रक आदि भाजन और उपकरण व्यवस्थित करे तब तीसरी पोरिसी अच्छी तरह से पूर्ण बने । इस प्रकार तीसरी पोरिसी बीत जाने के बाद हे गौतम ! जो भिक्षु उपधि और स्थंड़िल विधिवत् गुरु के सन्मुख संदिसाऊं – ऐसे आज्ञा माँगकर पानी पीने के भी पच्चक्खाण लेकर काल वक्त तक स्वाध्याय न करे उसे छठ्ठ प्रायश्चित्त समझना ।

इस प्रकार कालवेला आ पहुँचे तब गुरु की उपधि और स्थंड़िल, वंदन, प्रतिक्रमण, सज्झाय, मंड़ली आदि वसति की प्रत्युपेक्षणा करके समाधिपूर्वक चित्त के विक्षेप बिना संयमित होकर अपनी उपधि और स्थंड़िल की प्रत्युपेक्षणा करके गोचर चरित और काल प्रतिक्रम करके गोचरचर्या घोषणा करके उसके बाद दैवसिक अतिचार से विशुद्धि निमित्त काऊसग्ग करे । इस हरएक में क्रमिक उपस्थापन पुरिमड्ढ एकासन और उपस्थापना प्रायश्चित्त जानना । इसके अनुसार काऊसग्ग करके मुहपत्ति की प्रतिलेखना करके विधिवत् गुरु महाराज को कृतिकर्म वंदन करके सूर्योदय से लेकर किसी भी स्थान में जैसे कि बैठते, जाते, चलते, घूमते, जल्दबाझी करते, पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति, हरियाली, तृण, बीज, पुष्प, फूल, कुपल-अंकुर, प्रवाल, पात्र, दो, तीन, चार, पाँच इन्द्रिय वाले जीव का संघट्ट, परितापन, किलामणा, उपद्रव आदि किए हों और तीन गुप्ति, चार कषाय, पाँच महाव्रत, छ जीवनीकाय, सात तरह के पानी और आहारादिक की एषणा, आँठ प्रवचनमाता, नौ ब्रह्मचर्य की गुप्ति, दश तरह का श्रमणधर्म, ज्ञान, दर्शन, चारित्र की जिस खंड़ से विराधना हुए हो उसकी नींदा, गर्हा, आलोचना, प्रायश्चित्त करके एकाग्र मानस से सूत्र, अर्थ और तदुभय को काफी भानेवाला उसके अर्थ सोचनेवाला, प्रतिक्रमण न करे तो उपस्थापन, ऐसा करते-करते सूरज का अस्त हुआ । चैत्य को वंदन किए बिना प्रतिक्रमण करे तो चोथ भक्त ।

प्रतिक्रमण करने के बाद रात को विधि सहित बिलकूल कम वक्त नहीं ऐसे प्रथम पहोर में स्वाध्याय न करे तो दुवालस, प्रथम पोरिसी पूर्ण होने से पहले, संथारो करने की विधि से आज्ञा माँगे तो छठ्ठ, संदिसाए बिना संथारा करके सो जाए तो चऊत्थ, प्रत्युपेक्षणा किए बिना संथारा करे तो दुवालस, अविधि से संथारा करे तो चऊत्थ, उत्तरपट्टा बिना संथारो करे तो चऊत्थ, दो पड़ का संथारो करे तो चऊत्थ, बीच में जगहवाला, डोरवाली खटियाँ में, नीचे गर्म हो वैसी खटियाँ में बिस्तर में संथारो करे तो १०० आयंबिल, सर्व श्रमणसंघ, सर्व साधर्मिक और सर्व जीवराशि के तमाम जीव को सर्व तरह के भाव से त्रिविध-त्रिविध से न खमाए, क्षमापना न दे और चैत्य की वंदना न की हो, गुरु के चरणकमल में उपधि देह आहारादिक के सागर पच्चक्खाण किए बिना कान के छिद्र में कपास की रूई लगाए बिना संथारा में बैठे तो हरएक में उपस्थापन, संथारा में बैठने के बाद यह धर्म-शरीर को गुरु परम्परा से प्राप्त इस 'श्रेष्ठ मंत्राक्षर' से दश दिशा में साँप, शेर, दुष्ट प्रान्त, हलके वाणमंतर, पिशाच आदि से रक्षा न करे तो उपस्थापन, दश दिशा में रक्षा करके बारह भावना भाखे बिना सो जाए तो पच्चीस आयंबिल । एक ही निद्रा

पूर्ण करके जानकर इरियावही पड़िक्कमके प्रतिक्रमण के वक्त तक स्वाध्याय न करे तो दुवालस, सोने के बाद दुःस्वप्न या कुःस्वप्न आ जाए तो सौ साँस प्रमाण काऊसग्ग करना । रात में छींक या खाँसी खाए, खटिया, बिस्तर या दंड़ खिसके या आवाज करे तो खमण । दिन या रात को हँसी, क्रीड़ा, कंदर्प, नाथवाद करे तो उपस्थापन ।

उस तरह से जो भिक्षु सूत्र का अतिक्रमण करके आवश्यक करे तो हे गौतम ! कारणवाले को मिच्छामि दुक्कडम् प्रायश्चित्त देना । जो अकारणिक हो उसे तो यथायोग्य चऊत्थ आदि प्रायश्चित्त कहना, जो भिक्षु शब्द करे, करवाए, गहरे या अगाढ़ शब्द से आवाज लगाए वो हरएक स्थानक में हरएक का हरएक पद में यथायोग्य रिश्ता जुड़कर प्रायश्चित्त देना ।

उस अनुसार जो भिक्षु अप्काय, अग्निकाय या स्त्री के शरीर के अवयव का संघट्टो करे लेकिन भुगते नहीं तो उसे २५ आयंबिल देना, और जो स्त्री को भुगते उस दुरन्त प्रान्त लक्षणवाले का मुँह भी मत देखना । ऐसे उस महापाप कर्म कर्ता को पारंचित प्रायश्चित्त ।

अब यदि वो महातपस्वी हो ७० मासक्षपण, १०० अधर्ममासक्षपण, १०० दुवालस, १०० चार उपवास, १०० अठ्ठम, १०० छठ्ठ, १०० उपवास, १०० आयंबिल, १०० एकाशन, १०० शुद्ध आचाम्ल, एकाशन (जिसमें लूण मरि या कुछ भी मिश्र न किया हो), १०० निर्विकृतिक, यावत् उलट सूलट क्रम से प्रायश्चित्त बताना । यह दिया गया प्रायश्चित्त जो भिक्षु विसामा रहित पार लगाए उसे नजदीकी समय में आगे आनेवाला समझना ।

सूत्र – १३८५

हे भगवंत ! उलट-सूलट कर्म से इस अनुसार सो-सो गिनती प्रमाण हरएक तरह के तप के प्रायश्चित्त करे तो कितने समय तक करते रहे ? हे गौतम ! जब तक उस आचार मार्ग में स्थापित हो तब तक करते रहे, हे भगवंत! उसके बाद क्या करे ? हे गौतम ! उसके बाद कोई तप करे, कोई तप न करे, जो आगे बताने के अनुसार तप करते रहते है वो वंदनीय हैं, पूजनीय हैं, दर्शनीय हैं, वो अतिप्रशस्त सुमंगल स्वरूप हैं, वो सुबह में नाम ग्रहण करने के लायक हैं । तीनों लोक में वंदनीय हैं । जो बताए हुए तप का प्रायश्चित्त नहीं करता वो पापी है । महापापी है । पापी का भी बड़ा पापी है । दुरन्त प्रान्त अधम लक्षणवाला है । यावत् मुँह देखने के लायक नहीं है ।

सूत्र – १३८६-१३८७

हे गौतम ! जब यह प्रायश्चित्त सूत्र विच्छेद होगा तब चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारों का तेज सात रात-दिन तक स्फुरायमान नहीं होगा । इसका विच्छेद होगा तब सारे संयम की कमी होगी क्योंकि यह प्रायश्चित्त सर्व पाप का प्रकर्षरूप से नाश करनेवाला है, सर्व तप, संयम के अनुष्ठान का प्रधान अंग हो तो परम विशुद्धि स्वरूप प्रवचन के भी नवनीत और सारभूत स्थान बताया हो तो यह सभी प्रायश्चित्त पद हैं ।

सूत्र – १३८८

हे गौतम ! जितने यह सभी प्रायश्चित्त हैं उसे इकट्ठा करके गिनती की जाए तो उतना प्रायश्चित्त एक गच्छा-धिपति को गच्छ के नायक को और साध्वी समुदाय की नायक प्रवर्तिनी को चार गुना प्रायश्चित्त बताना, क्योंकि उनको तो यह सब पता चला है । और जो यह परिचित और यह गच्छनायक प्रमाद करनेवाले हो तो दूसरे, बल, वीर्य होने के बावजूद ज्यादातर आगम में उद्यम करनेवाला हो तो भी वैसी धर्मश्रद्धा से न करे, लेकिन मंद उत्साह से उद्यम करनेवाला बने । भग्न परीणामवाले का किया गया कायक्लेश निरर्थक है । जिस वजह के लिए इस प्रकार है उसके लिए अचिन्त्य अनन्य निरनुबन्धवाले पुण्य के समुदायवाले तीर्थंकर भगवंत वैसी पुण्याइ भुगतते होने के बावजूद साधु को उस प्रकार करना उचित नहीं है । गच्छाधिपति आदि को सर्व तरह से दोष में प्रवृत्ति न करना । इस वजह से ऐसा कहा जाता है कि गच्छाधिपति आदि समुदाय के नायक को यह सभी प्रायश्चित्त जितना इकट्ठा करके मिलाया जाए तो उससे चार गुना बताना ।

सूत्र – १३८९

हे भगवंत ! जो गणी अप्रमादी होकर श्रुतानुसार यथोक्त विधानसह हंमेशा रात-दिन गच्छ की देख-भाल न रखे तो उसे पारंचित प्रायश्चित्त बताए ? हे गौतम ! गच्छ की देख-भाल न करे तो उसे पारंचित प्रायश्चित्त कहना । हे भगवंत ! और फिर जो कोई गणी सारे प्रमाद के आलम्बन से विप्रमुक्त हो । श्रुतानुसार हंमेशा गच्छ की सारणादिक पूर्वक सँभलकर रखते हो, उसका किसी दुष्टशीलवाले या उस तरह का शिष्य सन्मार्ग का यथार्थ आचरण न करता हो तो वैसे गणी को प्रायश्चित्त आता है क्या ? हे गौतम ! जरुर वैसे गुरु को प्रायश्चित्त प्राप्त होता है । हे भगवंत ! किस वजह से ? हे गौतम ! उसने शिष्य को गुणदोष से कसौटी लिए बिना प्रव्रज्या दी है उस वजह से, हे भगवंत ! क्या वैसे गणी को भी प्रायश्चित्त दे सकते हैं ? हे गौतम ! इस तरह के गुण से युक्त गणी हो लेकिन जब इस तरह के पापशीलवाले गच्छ को त्रिविध-त्रिविध से वोसिराके जो आत्महित की साधना नहीं करते, तब उन्हें संघ के बाहर नीकालना चाहिए । हे भगवंत ! जब गच्छ के नायक गणी गच्छ को त्रिविधे वोसिरावे तब उस गच्छ को आदरमान्य कर सकते हैं क्या ? यदि पश्चात्ताप करके संवेग पाकर यथोक्त प्रायश्चित्त का सेवन करके दूसरे गच्छाधिपति के वास उपसंपदा पाकर सम्यग्मार्ग का अनुसरण करे तो उसका सम्मान करना अब यदि वो स्वच्छंदता से उसी तरह बना रहे-पश्चात्ताप प्रायश्चित्त न करे, संवेग न पाए तो चतुर्विध श्रमणसंघ के बाहर किए उस गच्छ का आदर मत करना, मत समझना ।

सूत्र – १३९०

हे भगवंत ! जब शिष्य यथोक्त संयमक्रिया में व्यवहार करता हो तब कुछ कुगुरु उस अच्छे शिष्य के पास उनकी दीक्षा प्ररूपे तब शिष्य का कौन-सा कर्तव्य उचित माना जाता है ? हे गौतम ! घोर वीर तप का संयम करना। हे भगवंत ! किस तरह ? हे गौतम ! अन्य गच्छ में प्रवेश करके । हे भगवंत ! उसके सम्बन्धी स्वामीत्व की फारगति दिए बिना दूसरे गच्छ में प्रवेश नहीं पा सकते । तब क्या करे ? हे गौतम ! सर्व तरह से उसके सम्बन्धी स्वामीत्व मिट जाना चाहिए । हे भगवंत ! किस तरह से उसके सम्बन्धी स्वामीत्व सर्व तरह से साफ हो सकता है ? हे गौतम ! अक्षर में हें भगवंत ! वो अक्षर कौन-से ? हे गौतम ! किसी भी कालान्तर में भी अब मैं उनके शिष्य या शिष्यणी से अपनाऊंगा नहीं । हे भगवंत ! यदि शायद उस तरह के अक्षर न दे तो ? हे गौतम ! यदि वो उस तरह के अक्षर न लिख दे तो पास के प्रवचनी को कहकर चार-पाँच इकट्ठे होकर उन पर जबरदस्ती करके अक्षर दिलाना। हे भगवंत ! यदि उस तरह के जबरदस्ती से भी वो कुगुरु अक्षर न दे तो फिर क्या करे ? हे गौतम ! यदि उस तरह से कुगुरु अक्षर न दे तो उसे संघ बाहर करने का उपदेश देना । हे भगवंत ! किस वजह से ऐसा कहे ?

हे गौतम ! इस संसार में महापाशरूप घर और परिवार की शूली गरदन पर लगी है । वैसी शूली को मुश्किल से तोड़कर कईं शारीरिक-मानसिक पैदा हुए वार गतिरूप संसार के दुःख से भयभीत किसी तरह से मोह और मिथ्यात्वादिका क्षयोपशम के प्रभाव से सन्मार्ग की प्राप्ति करके कामभोग से ऊंबकर वैराग पाकर यदि उसकी परम्परा आगे न बढ़े ऐसे निरनुबँधी पुण्य का उपार्जन करते हैं । वो पुण्योपार्जन तप और संयम के अनुष्ठान से होता है । उसके तप और संयम की क्रिया में यदि गुरु खुद ही विघ्न करनेवाला बने या दूसरों के पास विघ्न, अंतराय करवाए । अगर विघ्न करनेवाले को अच्छा मानकर उसकी अनुमोदना करे, स्वपक्ष या परपक्ष से विघ्न होता हो उसकी उपेक्षा करे यानि उसको अपने सामर्थ्य से न रोके, तो वो महानुभाग वैसे साधु का विद्यमान ऐसा धर्मवीर्य भी नष्ट हो जाए, जितने में धर्मवीर्य नष्ट हो उतने में पास में जिसका पुण्य आगे आनेवाला था, वो नष्ट होता है । यदि वो श्रमणलिंग का त्याग करता है, तब उस तरह के गुण से युक्त हो उस गच्छ का त्याग करके अन्य गच्छ में जाते हैं । तब भी यदि वो प्रवेश न पा सके तो शायद वो अविधि से प्राण का त्याग करे, शायद वो मिथ्यात्व भाव पाकर दूसरे कपटी में सामिल हो जाए, शायद स्त्री का संग्रह करके गृहस्थावास में प्रवेश करे, ऐसा एका महातपस्वी था अब वो अतपस्वी होकर पराये के घर में काम करनेवाला दास बने जब तक में ऐसी हलकी व्यवस्था न हो, उतने में तो एकान्त मिथ्यात्व अंधकार बढ़ने लगे । जितने में मिथ्यात्व से वैसे बने काफी लोगों का समुदाय

दुर्गति का निवारण करनेवाला, सुख परम्परा करवानेवाला अहिंसा लक्षणवाला, श्रमणधर्म मुश्किल से करनेवाला होता है । जितने में यह होता है उतने में तीर्थ का विच्छेद होता है इसलिए परमपद मोक्ष का फाँसला काफी बढ़ जाता है यानि मोक्ष काफी दूर चला जाता है । परमपद पाने का मार्ग दूर चला जाता है इसलिए काफी दुःखी ऐसे भव्यात्मा का समूह फिर चारगतिवाले संसार चक्र में अटक जाएंगे । इस कारण से हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि इस तरह से कुगुरु अक्षर नहीं देंगे, उसे संघ बाहर नीकालने का उपदेश देना ।

सूत्र – १३९१

हे भगवंत ! कितने समय के बाद इस मार्ग में कुगुरु होंगे ? हे गौतम ! आज से लेकर १२५० साल से कुछ ज्यादा साल के बाद वैसे कुगुरु होंगे । हे भगवंत ! किस कारण से वो कुगुरुरूप पाएंगे ? हे गौतम ! उस समय उस वक्त ऋद्धि, रस और शाता नाम के तीन गारव की साधना कर के होनेवाले ममताभाव, अहंकारभाव रूप अग्नि से जिनके अभ्यंतर आत्मा और देह जल रहे हैं । मैंने यह कार्य किया । मैंने शासन की प्रभावना की ऐसे मानसवाले शास्त्र के यथार्थ परमार्थ को न जाननेवाले आचार्य गच्छनायक बनेंगे, इस वजह से वो कुगुरु कहलाएंगे । हे भगवंत! उस वक्त सर्व क्या उस तरह के गणनायक होंगे ? हे गौतम ! एकान्ते सभी वैसे नहीं होंगे । कुछ दुरन्त प्रान्त लक्षणवाले–अधम-न देखने के लायक, एक माता ने साथ में जन्म देकर जुड़वा पैदा हुए हों, मर्यादा बिना पाप करने के स्वभाववाले, पूरे जन्म में दुष्ट कार्य करनेवाले, जाति, रौद्र, प्रचंड़ आभिग्राहिक बड़े मिथ्यात्व दृष्टि को अपनानेवाले होंगे । उसे किस तरह पहचाने ? उत्सूत्र उन्मार्ग प्रवर्तनेवाले उपदेश देनेवाले या अनुमति बतानेवाले हो वैसे निमित्त से वो पहचाने जाते हैं ।

सूत्र – १३९२

हे भगवंत ! जो गणनायक आचार्य हो वो सहज भी आवश्यक में प्रमाद करते है क्या ? हे गौतम ! जो गणनायक हैं वो बिना कारण सहज एक पलभर भी प्रमाद करे उसे अवंदनीय समझना । जो काफी महान कारण आने के बावजूद एक पलभर भी अपने आवश्यक में प्रमाद नहीं करते वो वंदनीय, पूजनीय, दर्शनीय यावत् सिद्ध बुद्ध पर पाए हुए क्षीण हुए आँठ कर्ममलवाले कर्मरज रहित के समान बताना । बाकी का अधिकार काफी विस्तार से अपने स्थानक से कहलाएगा ।

सूत्र – १३९३

इस अनुसार प्रायश्चित्त विधि श्रवण करके दीनता रहित मनवाला दोष का सेवन करने के उचित अनुष्ठान नहीं करता और जिस स्थान में जितनी शक्ति लगानी पड़े उतनी लगाता है । उसे आराधक आत्मा कहा है ।

सूत्र – १३९४-१३९५

जल, अग्नि, दुष्ट फाड़ खानेवाले जंगली-प्राणी, चोर, राजा, साँप, योगिनी के भय, भूत, यक्ष, राक्षस, क्षुद्र, पिशाच मारी मरकी कंकास, क्लेश, विघ्न, रोध, आजीविका, अटवी, सागर के बीच में फँसना, कोई दुष्ट चिन्तवन करे, अपसगुन आदि के भय के अवसर के वक्त इस विद्या का स्मरण करना ।

(यह विद्या मंत्र-अक्षर के रूप में है । मंत्राक्षर का अनुवाद नहीं होता । मूल मंत्राक्षर के लिए हमारा आगम सुत्ताणि भाग-३९ महानिसीह आगम पृ. १२० देखे ।)

सूत्र – १३९६

इस श्रेष्ठ विद्या से विधिवत् अपनी आत्मा को अच्छी तरह से अभिमंत्रित करके यह कहेंगे तो सात अक्षर से एक मस्तक, दो बाहू, कुक्षी, पाँव के तलवे-ऐसे सात स्थान में स्थापन करना वो इस प्रकार–'ऊं' मस्तके, 'कु'-दाए खंभे की ग्रीवा पर, 'रु' दाईं कुक्षी के लिए, 'कु'-दाँए पाँव के तलवे के लिए, 'ले'-बाँये पाँव के तलवे के लिए, 'स्वा' बाँई कुक्षी के लिए, 'हा' बाँये खंभे की ग्रीवा के लिए स्थापित करना ।

सूत्र – १३९७-१३९९

दुःस्वप्न, दुर्निमित्त, ग्रहपीड़ा, उपसर्ग, शत्रु या अनिष्ट के भय में, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, बीजली, उल्कापात, बूरा पवन, अग्नि, महाजन का विरोध आदि जो कुछ भी इस लोक में होनेवाले भय हो वो सब इस विद्या के प्रभाव से नष्ट होते हैं । मंगल करनेवाला, पाप हरण करनेवाला, दूसरे सभी अक्षय सुख देनेवाला ऐसा प्रायश्चित्त करने की ईच्छावाले शायद उस भव में सिद्धि न पाए तो भी वैमानिक उत्तम देवगति पाकर फिर सुकुल में पैदा होकर अचानक सम्यक्त्व पाकर सुख परम्परा महसूस करते हुए आँठ कर्म की बाँधी रज और मल से हंमेशा के लिए मुक्त होते हैं और सिद्धि पाता है ।

सूत्र – १४००

हे भगवंत ! केवल इतना ही प्रायश्चित्त विधान है कि जिससे इसके अनुसार आदेश किया जाता है ? हे गौतम ! यह तो सामान्य से बारह महिने की हरएक रात-दिन के हरएक समय के प्राण को नष्ट करना तब से लेकर बालवृद्ध नवदीक्षित गणनायक रत्नाधिक आदि सहित मुनिगण और अप्रतिपादित ऐसे महा अवधि, मनःपर्यवज्ञानी, छद्मस्थ वीतराग ऐसे भिक्षुक को एकान्त अभ्युत्थान योग आवश्यक क्रिया के सम्बन्ध से इस सामान्य प्रायश्चित्त का उपदेश दिया गया है । लेकिन केवल इतना ही प्रायश्चित्त है ऐसा मत समझना । हे भगवंत ! क्या अप्रतिपाती महा अवधि मनःपर्यवज्ञान की छद्मस्थ वीतराग उन्हें समग्र आवश्यक का अनुष्ठान करने चाहिए ? हे गौतम ! जरुर उन्हें करने चाहिए । केवल अकेले आवश्यक ही नहीं लेकिन एक साथ हंमेशा सतत आवश्यकादि अनुष्ठान करने चाहिए। हे भगवंत ! किस तरह ? हे गौतम ! अचिन्त्य, बल, वीर्य, बुद्धि, ज्ञानातिशय और शक्ति के सामर्थ्य से करने चाहिए । हे भगवंत ! किस वजह से करने चाहिए ? हे गौतम ! भले ही उत्सूत्र उन्मार्ग का मुझसे प्रवर्तन न हो या हुआ हो तो, वैसा करके आवश्यक करना चाहिए ।

सूत्र – १४०१

हे भगवंत ! विशेष तरह का प्रायश्चित्त क्यों नहीं बताते ? हे गौतम ! वर्षाकाले मार्ग में गमन, वसति का परिभोग करने के विषयक गच्छाचार की मर्यादा का उल्लंघन के विषयक, संघ आचार का अतिक्रमण, गुप्ति का भेद हुआ हो, सात तरह की मांड़ली के धर्म का अतिक्रमण हुआ हो, अगीतार्थ के गच्छ में जाने से होनेवाले कुशील के साथ वंदन आहारादिक का व्यवहार किया हो, अविधि से प्रव्रज्या दी हो या बड़ी दीक्षा देने से लगे प्रायश्चित्त-अनुचित-अपात्र को सूत्र अर्थ, तदुभय की प्रज्ञापना करने से लगे अतिचार, अज्ञान विषयक एक अक्षर देने से हुए दोष, दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, मासिक, चार मासिक, वार्षिक, आलोक सम्बन्धी, परलोक सम्बन्धी, निदान किया गया हो, मूलगुण की विराधना, उत्तरगुण की विराधना, जान-बुझकर या अनजाने में किया गया, बार-बार निर्दयता से दोष सेवन करे, प्रमाद अभिमान से दोष सेवन करे, आज्ञापूर्वक के अपवाद से दोष सेवन किए हो, महाव्रत, श्रमणधर्म, संयम, तप, नियम, आपत्तिकाल में रौद्र-आर्तध्यान होना, राग, द्वेष, मोह, मिथ्यात्व विषयक, दुष्ट-क्रूर, परिणाम होने की वजह से पैदा हुआ ममत्व, मूर्च्छा, परिग्रह आरम्भ से होनेवाला पाप, समिति का अपालन, पराये की गैरमोजुदगी में उसकी नींदा करना, अमैत्रीभाव, संताप, उद्वेग, मानसिक अशान्ति से पैदा होनेवाला, मृषावाद बोलने से, दिए बिना चीज ग्रहण करने से उद्भवित, मैथुन, सेवन विषयक त्रिकरण योग पैकी खंड़ित पाप विषयक, परिग्रह करने से उद्भावित, रात्रिभोजन विषयक, मानसिक, वाचिक, कायिक, असंयम करण, करावण और अनुमति करने से उद्भवित यावत् ज्ञानदर्शन, चारित्र के अतिचार से उद्भवित, पापकर्म का प्रायश्चित्त, ज्यादा क्या कहे ? जितने त्रिकाल चैत्यवंदना आदिक प्रायश्चित्त के स्थान प्ररूपेल है, उतने विशेष से

हे गौतम ! असंख्येय प्रमाण प्रज्ञापना की जाती है । इसलिए उसके अनुसार अच्छी तरह से धारणा करना कि हे गौतम ! प्रायश्चित्तसूत्र की संख्याता प्रमाण निर्युक्ति, संग्रहणी, अनुयोग, द्वार, अक्षर, अनन्तापर्याय बताए हैं, उपदेशेल हैं, कहे हैं, समझाए हैं, प्ररूपेल हैं, काल अभिग्रह रूप से यावत् आनुपूर्वी से या अनानुपूर्वी से यानि

क्रमिक या क्रमरहित यथायोग्य गुणठाणा के लिए प्रायश्चित्त हैं ।

सूत्र – १४०२

हे भगवंत ! आपने बताए वैसे प्रायश्चित्त की बहुलता है । इस प्रकार प्रायश्चित्त का संघट्ट सम्बन्ध होता है, हे भगवंत ! इस तरह के प्रायश्चित्त को ग्रहण करनेवाला कोई हो कि जो आलोचना करके निन्दन करके गर्हा करके यावत् यथायोग्य तपोकर्म करके प्रायश्चित्त का सेवन करके श्रामण्य को आराधे, प्रवचन की आराधना करे यावत् आत्महित के लिए उसे अंगीकार करके अपने कार्य की आराधना करे, स्वकार्य साधना करे ? हे गौतम ! चार तरह की आलोयणा समझना । नाम आलोचना, स्थापना आलोचना, द्रव्य आलोचना और भाव आलोचना । यह चार पद कईं तरह से और चार तरह से बताए जाते हैं, उसमें संक्षेप से नाम आलोचना केवल नाम से समझना । स्थापना आलोचना किताब आदि में लिखी हो, द्रव्य आलोचना में सरलता से आलोचना करके जिस प्रकार प्रायश्चित्त बताया हो, उसके अनुसार न करे । यह तीनों पद हे गौतम ! अप्रशस्त हैं । हे गौतम ! जो यह चौथा भाव आलोचना नाम का पद है वो लगे हुए दोष की आलोचना करके गुरु के पास यथार्थ निवेदन करके, निन्दा करके, गर्हा करके, प्रायश्चित्त सेवन करके, यावत् आत्महित के लिए उसे अंगीकार करके अपने आत्मा की अन्तिम साधना के लिए उत्तम अर्थ की आराधना करे, उसे भाव आलोचना कहते हैं । हे भगवंत ! भाव आलोचना क्या है ?

हे गौतम ! जो भिक्षु इस तरह का संवेग वैराग पाया हुआ हो, शील, तप, दान, भावनारूप चार स्कंधयुक्त उत्तम श्रमणधर्म की आराधना में एकान्त रसिक हो, मद, भय, गारव, इत्यादिक दोष से सर्वथा विप्रमुक्त हो, सर्व भाव और भावान्तर से शल्यरहित होकर सर्व पाप की आलोचना करके, विशुद्धि पद पाकर 'तहत्ति' कहने के पूर्वक आलोचना प्रायश्चित्त को अच्छी तरह से सेवन करके संयम क्रिया सम्यक् तरह से पालन करे वो इस प्रकार ।

सूत्र – १४०३

जो हितार्थी आत्मा है वो अल्प पाप भी नहीं बाँधते । उनकी शुद्धि तीर्थंकर भगवंत के वचन से होती है ।

सूत्र – १४०४-१४०७

हम जैसों की शुद्धि कैसे होगी ? घोर संसार के दुःख देनेवाले वैसे पापकर्म का त्याग करके मन, वचन, काया की क्रिया से शील के बोझ मैं धारण करूँगा । जिस तरह सारे भगवंत, केवली, तीर्थंकर, चारित्रयुक्त आचार्य, उपाध्याय और साधु और फिर जिस तरह से पाँच लोकपाल, जो जीव धर्म के परीचित हैं, उनके समक्ष मैं तल जितना भी पाप नहीं छिपाऊंगा । उसी तरह मेरे सारे दोष की आलोचना करूँगा । उसमें जो कुछ भी पर्वत जितना भारी लेकिन प्रायश्चित्त प्राप्त हो सके तो भी मैं उसका सेवन करूँगा कि जिस तरह तत्काल पाप पीगल जाए और मेरी शुद्धि हो सके ।

सूत्र – १४०८-१४११

प्रायश्चित्त किए बिना आत्मा भवान्तर में मरकर नरक, तिर्यंच गति में कहीं कुम्भीपाक में, कहीं करवत से दोनों ओर कटता है । कहीं शूली से बींधाता है । कहीं पाँव में रस्सी बाँधकर जमीं पर काँटे-कंकर में घसिट जाता है। कहीं खड़ा जाता है । कहीं शरीर का छेदन-भेदन किया जाता है । और फिर रस्सी-साँकल-बेड़ी से जकड़ा जाता है । कहीं निर्जल जंगल का उल्लंघन करना पड़ता है । कहीं बैल, घोड़े, गधे आदि के भव में दमन सहना पड़ता है । कहीं लाल तपे लोहे के ड़ाम सहने पड़ते हैं । कहीं ऊंट-बैल के भव में नाक बींधकर नाथना पड़ता है । कहीं भारी बोझ उठाना पड़ता है । कहीं ताकत से ज्यादा बोझ उठाना पड़ता है । कहीं धारवाली आर से वींधाना पड़ता है । ओर फिर छाती, पीठ, हड्डियाँ, कमर का हिस्सा तूट जाता है । परवशता से प्यास, भूख सहने पड़ते हैं । संताप, उद्वेग, दारिद्र आदि दुःख यहाँ फिर से सहने पड़ेंगे ।

सूत्र – १४१२-१४१३

तो उसके बदले यही मेरा समग्र दुश्चरित्र का जिस प्रकार मैंने सेवन किया हो उसके अनुसार प्रकट करके

गुरु के पास आलोचना करके निन्दना करके, गर्हणा करके, प्रायश्चित्त का सेवन करके, धीर-वीर-पराक्रमवाला घोर तप करके संसार के दुःख देनेवाले पापकर्म को जलाकर भस्म कर दूँ ।

सूत्र – १४१४-१४१५

काफी कष्टकारी दुष्कर दुःख से करके सेवन किया जाए वैसा उग्र, ज्यादा उग्र, जिनेश्वर के बताए सकल कल्याण के कारणरूप उस तरह के तप को आदर से सेवन करूँगा कि जिससे खड़े-खड़े भी शरीर सूख जाए ।

सूत्र – १४१६-१४१८

मन-वचन और काया दंड़ का निग्रह करके सज्जड़ आरम्भ और आश्रव के द्वार को रोककर अहंकार, ईर्ष्या, क्रोध का त्याग करके राग, द्वेष, मोह रहित, संग रहित, परिग्रह रहित, ममत्वभाव रहित, निरहंकारी शरीर पर भी निःस्पृहतावाला होकर मैं पाँच महाव्रत का पालन करूँगा । और यकीनन उसमें अतिचार न लगने दूँगा ।

सूत्र – १४१९-१४२२

अहाहा, मुझे धिक्कार है । वाकइ मैं अधन्य हूँ । मैं पापी और पाप मतिवाला हूँ । पापकर्म करनेवाला पापिष्ठ हूँ । मैं अधमाधम महापापी हूँ । मैं कुशील, भ्रष्ट चारित्रवाला, भिल्ल और कसाई की उपमा देने के लायक हूँ। मैं चंड़ाल, कृपारहित पापी, क्रूर कर्म करनेवाला, निन्द्य हूँ । इस तरह का दुर्लभ चरित्र प्राप्त करके ज्ञान, दर्शन चारित्र की विराधना करके फिर उसकी आलोचना, निन्दना, गर्हणा और प्रायश्चित्त न करूँ और सत्व रहित आराधना से शायद मैं मर जाऊं तो यकीनन अनुत्तर महाभयानक संसार सागर में ऐसी गहराई में डूब जाऊंगा कि फिर करोड़ भव के बाद भी बाहर न नीकल सकूँगा ।

सूत्र – १४२३-१४२५

तो जब तक बुढ़ापे से पीड़ा न पाऊं और फिर मुझे कोइ व्याधि न हो, जब तक इन्द्रिय सलामत है । तब तक मैं धर्म का सेवन कर लूँ । पहले के लिए गए पापकर्म की निन्दा, गर्हा लम्बे अरसे तक करके उसे जलाकर राख कर दूँ । प्रायश्चित्त का सेवन करके मैं कलंक रहित बनूँगा । हे गौतम ! निष्कलुष निष्कलंक ऐसे शुद्ध भाव वो नष्ट न हो उनसे पहले कैसा भी दुष्कर प्रायश्चित्त मैं ग्रहण करूँगा ।

सूत्र – १४२६-१४२९

इस प्रकार आलोचना प्रकट करके प्रायश्चित्त का सेवन करके क्लेश और कर्ममल से सर्वथा मुक्त होकर शायद वो पल या उस भव में मुक्ति न पाए तो नित्य उद्योतवाला स्वयं प्रकाशित देवदुंदुभि के मधुर शब्दवाले सैंकड़ो अप्सरा से युक्त ऐसे वैमानिक उत्तम देवलोक में जाते हैं । वहाँ से च्यवकर फिर से यहाँ आकर उत्तम कुल में उत्पन्न होकर कामभोग में ऊंबकर वैराग पाकर तपस्या करके फिर पंड़ितमरण पाकर अनुत्तर विमान में निवास करके यहाँ आए हुए वो समग्र तीन लोक के बंधु समान धर्मतीर्थंकर होते हैं ।

सूत्र – १४३०

हे गौतम ! सुप्रशस्त ऐसे इस चौथे पद का नाम अक्षय सुख स्वरूप मोक्ष को देनेवाले भाव आलोचना है । इस अनुसार मैं कहता हूँ ।

सूत्र – १४३१-१४३२

हे भगवंत ! इस तरह का उत्तम, श्रेष्ठ, विशुद्ध पद पाकर जो किसी प्रमाद की वजह से बार-बार कोइ विषय में गलती करे, चूके या स्खलना पाए तो उसके लिए काफी विशुद्धि युक्त शुद्धि पद बताया है कि नहीं ? इस शंका का समाधान दो ।

सूत्र – १४३३-१४३५

हे गौतम ! लम्बे अरसे तक पाप की निन्दा और गर्हा करके प्रायश्चित्त का सेवन करके जो फिर अपने महाव्रत आदि की रक्षा न करे तो जैसे धोए हुए वस्त्र को सावधानी से रक्षण न करे तो उसमें दाग लगने के बराबर

हो । या फिर वो जिसमें से सुगंध नीकल रही है ऐसे काफी विमल-निर्मल गंधोदक से पवित्र क्षीरसागर में स्नान करके अशुचि से भरे खड्डे में गिरे उसकी तरह बार-बार गलती करनेवाला समझना । सारे कर्म का क्षय करनेवाले इस तरह की शायद देवयोग से सामग्री मिल भी जाए लेकिन अशुभ कर्म को ऊखेड़ना काफी मुश्किल मानना ।

सूत्र – १४३६-१४३८

उस अनुसार प्रायश्चित्त करने के बाद कोई छ जीवनिकाय के व्रत, नियम, दर्शन, ज्ञान और चारित्र या शील के अंग का भंग करे, क्रोध से, मान से, माया से, लालच आदि कषाय के दोष से भय, कंदर्प या अभिमान से यह और दूसरी वजह से गारव से या फिझूल आलम्बन लेकर जो व्रतादिक का खंड़न करे । दोष का सेवन करे वो सर्वार्थ सिद्ध के विमान तक पहुँचकर अपनी आत्मा को नरक में पतन दिलाते हैं ।

सूत्र – १४३९

हे भगवंत ! क्या आत्मा को रक्षित रखे कि छ जीवनिकाय के संयम की रक्षा करे ? हे गौतम ! जो कोई छ जीवनिकाय के संयम का रक्षण करनेवाला होता है वो अनन्त दुःख देनेवाला दुर्गति गमन अटकने से आत्मा की रक्षा करनेवाला होता है । इसलिए छ जीवनिकाय की रक्षा करना ही आत्मा की रक्षा माना जाता है । हे भगवंत ! वो जीव असंयम स्थान कितने बताए हैं ?

सूत्र – १४४०

हे गौतम ! असंयम स्थान काफी बताए हैं । जैसे कि पृथ्वीकाय आदि स्थावर जीव सम्बन्धी असंयम स्थान, हे भगवंत ! वो काय असंख्य स्थान कितने बताए हैं ? हे गौतम काय असंयम स्थानक कईं तरह के प्ररूपे हुए हैं । वो इस प्रकार –

सूत्र – १४४१-१४४३

पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति और अलग-अलग तरह के त्रस जीव को हाथ से छूना यावज्जीवन पर्यन्त वर्जन करना, पृथ्वीकाय के जीव को ठंड़े, गर्म, खट्टे चीजों के साथ मिलाना, पृथ्वी खुदना, अग्नि, लोह, झाकल, खट्टे, चीकने तेलवाली चीजें पृथ्वीकाय आदि जीव का आपस में क्षय करनेवाले, वध करनेवाले शस्त्र समझना । स्नान करने में शरीर पर मिट्टी आदि पुरुषन करके स्नान करने में, मुँह धोकर शोभा बढ़ाने में हाथ, ऊंगली, नेत्र आदि का शौच करने में, पीने में कईं अप्काय के जीव क्षय होते हैं ।

सूत्र – १४४४-१४४५

अग्नि संघ्रुकने में, जलाने में, उद्योत करने में, पवन खाने में, फूँकने में, संकोरने में, अग्निकाय के जीव का समुदाय क्षय होता है । यदि अग्नि अच्छी तरह से जल ऊठे तो दश दिशा में रही चीजों को खा जाती है ।

सूत्र – १४४६

वींजन, ताड़पत्र के पंखे, चामर ढ़ोलना, हाथ के ताल ठोकना, दौड़ना, कूदना, उल्लंघन करना, साँस लेना, रखना, इत्यादिक वजह से वायुकाय के जीव की विराधना-विनाश होता है ।

सूत्र – १४४७-१४४८

अंकुरण, बीज, कूंपण, प्रवाल पुष्प, फूल, कंदल, पत्र आदि के वनस्पतिकाय के जीव हाथ के स्पर्श से नष्ट होते हैं । दो, तीन, चार, पाँच इन्द्रियवाले त्रसजीव अनुपयोग से और प्रमत्तरूप से चलते-चलते, आते-जाते, बैठते-उठते, सोते-जगते यकीनन क्षय हो तो मर जाते हैं ।

सूत्र – १४४९

प्राणातिपात की विरति मोक्षफल देनेवाली है । बुद्धिशाली ऐसी विरति को ग्रहण करके मरण समान आपत्ति आ जाए तो भी उसका खंड़न नहीं करता ।

सूत्र – १४५०-१४५२

झूठ वचन न बोलने की प्रतिज्ञा ग्रहण करके सत्य वचन न बोलना, पराई चीज बिना दिए हुए न लेने की प्रतिज्ञा ग्रहण करके कोई वैसी चीज दे तो भी लालच मत करना । दुर्धर ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करके परिग्रह का त्याग करके, रात्रि भोजन की विरति अपनाकर विधिवत् पाँच इन्द्रिय का निग्रह करके दूसरे-लेकिन क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष के विषय में आलोयणा देकर, ममत्वभाव अहंकार आदि का त्याग करना ।

सूत्र – १४५३-१४५५

हे गौतम ! इस बिजली लत्ता की चंचलता समान जीवतर में शुद्ध भाव से तप, संयम, स्वाध्याय-ध्यान आदि अनुष्ठान में उद्यम करना युक्त है । हे गौतम ! ज्यादा क्या कहे ? आलोचना देकर फिर पृथ्वीकाय की विराधना की जाए फिर कहाँ जाकर उसकी शुद्धि करूँ ? हे गौतम ! ज्यादा क्या कहे कि यहाँ आलोचना-प्रायश्चित्त करके उस जन्म में सचित्त या रात को पानी का पान करे और अप्काय के जीव की विराधना करे तो वो कहाँ जाकर विशुद्धि पाएंगे ?

सूत्र – १४५६-१४५९

हे गौतम ! ज्यादा कथन क्या करूँ कि आलोयण लेकर फिर तापणा की ज्वाला के पास तपने के लिए जाए और उसका स्पर्श करे या हो जाए तो फिर उसकी शुद्धि कहाँ होगी ? उस अनुसार वायुकाय के विषय में उस जीव की विराधना करनेवाले कहाँ जाकर शुद्ध होंगे ? जो हरी वनस्पति पुष्प-फूल आदि का स्पर्श करेगा वो कहाँ शुद्ध होगा ? उसी तरह बीजकाय को जो चांपेगा वो कहाँ शुद्ध होगा ?

सूत्र – १४६०-१४६२

दो, तीन, चार इन्द्रियवाले, विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जीव को परिताप देकर वो जीव कहाँ शुद्धि पाएगा ? अच्छी तरह से जो छ काय के जीव की रक्षा नहीं करेगा वो कहाँ जाकर शुद्धि पा सकेगा ? हे गौतम ! अब ज्यादा क्या कहे ? यहाँ आलोयणा देकर जो भिक्षु त्रस और स्थावर जीव की रक्षा नहीं करेगा तो कहाँ जाकर शुद्धि करेगा?

सूत्र – १४६३-१४७०

आलोचना, निन्दना, गर्हणा करके प्रायश्चित्त करने के लायक निःशल्य बने उत्तम स्थान में रहे पृथ्वीकाय के आरम्भ का परिहार करे, अग्नि का स्पर्श न करे, आलोचनादि प्रायश्चित्त करके निःशल्य होकर संवेगवाला होकर उत्तम स्थान में रहा भिक्षु शरण रहित जीव को दर्द न दिलाए, आलोचनादिक करके संवेग पाए हुए भिक्षु छेदित तिनके को या वनस्पति को बार-बार या सहज भी स्पर्श न करे ।

लगे हुए दोष की आलोचना निन्दना गर्हणा प्रायश्चित्त करके शल्यरहित होकर संवेग पाकर भिक्षु उत्तम संयम स्थान में रहा हो वो जीवन के अन्त तक दो, तीन, चार या पाँच इन्द्रियवाले जीव को संघट्टन परिताप की किलामणा उपद्रव आदि अशाता न पेदा करे । आलोचनादि करने के पूर्वक संवेगित गृहस्थ ने लोच के लिए ऊपर फेंककर दी हुई भस्म भी ग्रहण नहीं करता ।

सूत्र – १४७१-१४७४

संवेगित शल्यरहित जो आत्मा स्त्री के साथ बातचीत करे तो हे गौतम ! वो कहाँ शुद्धि पाएगा ? आलोचनादिक करके संवेगित भिक्षु चौदह के अलावा उपकरण का परिग्रह न करे । वो संयम के साधनभूत उपकरण पर दृढ़ता से, निर्ममत्व, अमूर्च्छा, अगृद्धि रखे । हे गौतम ! यदि वो पदार्थ पर ममत्व करेगा तो उसकी शुद्धि नहीं होगी । ओर क्या कहे ? इस विषय में आलोचना करके जो रात में पानी का पान किया जाए तो वो कहाँ जाकर शुद्ध करेगा ?

सूत्र – १४७५-१४८२

आलोचना, निन्दा, गर्हणा करके प्रायश्चित्त करके निःशल्य भिक्षु पहली छ प्रतिज्ञा की रक्षा न करे तो फिर उसमें भयानक परीणामवाले जो अप्रशस्त भाव सहित अतिक्रम किया हो, मृषावाद, विरमण नाम के दूसरे महाव्रत में तीव्र राग या द्वेष से निष्ठुर, कठिन, कड़े, कर्कश वचन बोलकर महाव्रत का उल्लंघन किया हो, तीसरे अदत्तादान विरमण महाव्रत में रहने की जगह माँगे बिना मालिक की अनुमति लिए बिना उपभोग किया हो या अनचाहा स्थान मिला हो, उसमें राग-द्वेष रूप अप्रशस्त भाव हो उसमें तीसरे महाव्रत का अतिक्रमण, चोथा मैथुन विरमण नाम के महाव्रत में शब्द, रस, गन्ध, स्पर्श और प्रविचार के विषय में जो अतिक्रमण हुआ हो, पाँचवें परिग्रह विरमण नाम के महाव्रत के विषय में पाने की अभिलाषा, प्रार्थना, मूर्च्छा, शुद्धि-कांक्षा, गँवाई हुई चीज का शोक उसके रूप जो लोभ वो रौद्र ध्यान की वजह समान है । इन सब में पाँचवें व्रत में दोष गिने हैं । रात को भूख लगेगी ऐसा सोचकर दिन में ज्यादा आहार लिया, सूर्योदय या सूर्यास्त का शक होने के बावजूद आहार ग्रहण किया हो उस रात्रि भोजन विरमण व्रत में अतिक्रम दोष बताया हो । आलोचना, निन्दना, गर्हणा प्रायश्चित्त करके शल्य रहित बना हो लेकिन जयणा को न समझता हो तो सुसढ़ की तरह भवसंसार में भ्रमण करनेवाला होता है ।

सूत्र – १४८३

हे भगवंत ! वो सुसढ़ कौन था ? वो जयणा किस तरह की थी या अज्ञानता की वजह से आलोचना, निन्दना, गर्हणा प्रायश्चित्त सेवन करने के बावजूद उसका संसार नष्ट नहीं हुआ ? हे गौतम ! जयणा उसे कहते हैं कि जो अठ्ठारह हजार शील के अंग, सत्तरह तरह का संयम, चौदह तरह के जीव का भेद, तेरह क्रिया स्थानक, बाह्य अभ्यंतर-भेदवाले बारह तरह के तप, अनुष्ठान, बारह तरह की भिक्षुप्रतिमा, दश तरह का श्रमणधर्म, नौ तरह की ब्रह्मचर्य की गुप्ति, आँठ तरह की प्रवचनमाता, सात तरह की पानी और पिंड़ की एषणा, छ जीवनिकाय, पाँच महाव्रत, तीन गुप्ति सम्यग्-दर्शन, ज्ञान, चारित्र समान रत्नत्रयी आदि संयम अनुष्ठान को भिक्षु निर्जन-निर्जल अटवी दुष्काल व्याधि आदि महा आपत्ति उत्पन्न हुई हो, अन्तर्मुहूर्त्त केवल आयु बाकी हो, प्राण गले में अटक गए हों तो भी मन से वो अपने संयम का खंड़न नहीं करते । विराधना नहीं करते, नहीं करवाते, अनुमोदना नहीं करते । यावत् जावज्जीवपर्यन्त आरम्भ नहीं करते या करवाते इस तरह की पूरी जयणा जाननेवाले, पालन करनेवाले जयणा के भक्त हैं, जयणा ध्रुवरूप से पालनेवाले हैं, जयणा में निपुण है, वो जयणा से परिचित है । इस सुसढ़ की काफी विस्मय करवानेवाली बड़ी कथा है ।

अध्ययन-७-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

अध्ययन-८- (चूलिका-२) सुसढ़ कथा

सूत्र – १४८४

हे भगवंत ! किस कारण से ऐसा कहा ? उस समय में उस समय यहाँ सुसढ़ नाम का एक अनगार था । उसने एक-एक पक्ष के भीतर कईं असंयम स्थानक की आलोचना दी और काफी महान घोर दुष्कर प्रायश्चित्त का सेवन किया । तो भी उस बेचारे को विशुद्धि प्राप्त नहीं हुई । इस कारण से ऐसा कहा ।

हे भगवंत ! उस सुसढ़ की वक्तव्यता किस तरह की है ?

हे गौतम ! इस भारत वर्ष में अवन्ति नामका देश है । वहाँ संबुक्क नाम का एक छोटा गाँव था । उस गाँव में जन्म दरिद्र मर्यादा-लज्जा रहित, कृपा रहित, कृपण अनुकंपा रहित, अतिक्रूर, निर्दय, रौद्र परीणामवाला, कठिन, शिक्षा करनेवाला, अभिग्रहिक मिथ्यादृष्टि जिसका नाम भी लेना पाप है, ऐसा सुज्ञशिव नामका ब्राह्मण था, सुज्ञश्री उसकी बेटी थी । समग्र तीन भुवन में नर और नारी समुदाय के लावण्य कान्ति तेज समान सौभायातिशय करने से उस लड़की के लावण्य रूप कान्ति आदि अनुपम और बढ़ियाँ थे वो सुज्ञश्री ने किसी अगले दूसरे भव में ऐसा दुष्ट सोचा था कि यदि इस बच्चे की माँ मर जाए तो अच्छा तो में शोक रहित बनूँ । फिर यह बच्चा दुःखी होकर जी सकेगा । और राजलक्ष्मी मेरे पुत्र को प्राप्त होगी । उस दुष्ट चिन्तवन के फलरूप वो कर्म के दोष से उत्पन्न होने के साथ ही उसकी माँ मर गइ उसके बाद हे गौतम ! उस सुज्ञशिव पिताने काफी क्लेश से बिनती करके नए बच्चों को जन्म देनेवाली माता ने घर-घर घूमकर आराधना की । उस पुत्री का बचपन पूर्ण हुआ । उतने में माँ-पुत्र का सम्बन्ध टालनेवाले महा भयानक बारह वर्ष के लम्बे अरसे का अकाल समय आ पहुँचा । जितने में रिश्तेदारी का त्याग करके समग्र जनसमूह चला गया तब कसी दिन कईं दिन का भूखा, विषाद पाया हुआ वो सुज्ञशिव सोचने लगा कि क्या अब इस बच्ची को मार डाल के भूख पूरी करूँ या उसका माँस बेचकर किसी वणिक के पास से राशन खरीदकर अपने प्राण को धरूँ । अब जीने के लिए दूसरा कोई भी उपाय मेरे पास नहीं बचा, या तो वाकई मुझे धिक्कार है । ऐसा करना उचित नहीं है । लेकिन उसे जिन्दा ही बेच दूँ । ऐसा सोचकर महाऋद्धि वाले चौदह विद्यास्थान के पारगामी ऐसे गोविंद, ब्राह्मण के घर सुज्ञश्री को बेच दी इसलिए कईं लोगों को नफरत के शब्द से घायल वो अपने देश का त्याग करके सुज्ञशिव दूसरे देशान्तर में चला गया । वहाँ जाकर भी उसी के अनुसार दूसरी कन्या का अपहरण करके दूसरी जगह बेच-बेचकर सुज्ञशिव ने काफी द्रव्य उपार्जन किया ।

उस अवसर पर अकाल के समय के कुछ ज्यादा आँठ वर्ष पसार हुए तब वो गोविंद शेठ का समग्र वैभव का क्षय हुआ । हे गौतम ! वैभाव विनाश पाने की वजह से विषाद पाए हुए गोविंद ब्राह्मण ने चिन्तवन किया कि अब मेरे परिवार का विनाशकाल नजदीक है । विषाद पानेवाले मेरे बँधु को आधा पल भी देखने के लिए समर्थ नहीं है । तो अब मैं क्या करूँ ? ऐसा सोचते हुए एक गौकुल के स्वामी की भार्या आई खाने की चीजे बेचनेवाली उस गोवालण के पास से उस ब्राह्मण की भार्या ने डाँगर के नाप से भी घी और शक्कर के बनाए हुए चार लड्डू खरीद किए । खरीद करते ही बच्चे लड्डू खा गए । महीयारी ने कहा कि अरे शेठानी ! हमें बदले में देने की डाँगर की पाली दे दो । हमें जल्द गोकुल में पहुँचना है । हे गौतम ! उसके बाद ब्राह्मणी ने सुज्ञश्री को आज्ञा दी कि अरे ! राजाने जो कुछ भेजा है, उसमें जो डाँगर की मटकी है उसे जल्द ढूँढ़कर लाओ जिससे यह गोवालण को दूँ । सुज्ञश्री जितने में वो ढूँढ़ने के लिए घर में गई लेकिन उस तंदुल का भाजन न देखा । ब्राह्मणी ने कहा कि नहीं है । फिर ब्राह्मणी न कहा, अरे ! कुछ भाजन ऊपर करके उसमें देखो और ढूँढ़कर लाओ । फिर से देखने के लिए आँगन में गई और न देखा तब ब्राह्मणी ने खुद वहाँ आकर देखा तो उसको भी भाजन न मिला । काफी विस्मय पानेवाली उसने फिर से हरएक जगह पर देखने लगी । दोहरान एकान्त जगह में वेश्या के साथ ओदन का भोजन करनेवाले बड़े पुत्र को देखा । उस पुत्रने भी उनकी ओर नजर की । सामने आनेवाली माता को देखकर अधन्य

पुत्रने चिन्तवन किया कि आम तोर पर माता हमारे चावल छिन लेने के लिए आती हुई दिखती है, यदि वो पास आएगी तो मैं उसे मार डालूँगा – ऐसा चिन्तवन करते पुत्रने दूर रहे और पास आनेवाली ब्राह्मणी माँ को कड़े शब्द में कहा कि – हे भट्टीदारिका ! यदि तू यहाँ आएगी तो फिर तुम ऐसा मत कहना कि मुझे पहले न कहा । यकीनन मैं तुम्हें मार डालूँगा । ऐसा अनिष्ट वचन सुनकर उल्कापात से वध की हुई हो वैसे धस करते हुए भूमि पर गिर पड़ी। मूर्च्छावश ब्राह्मणी बाहर से वापस न आई इसलिए महीयारी ने कुछ देर राह देखने के बाद सुज्ञश्री को कहा कि अरे बालिका ! हमें देर हो रही है, इसलिए तुम्हारी माँ को कहो कि तुम हमे डाँगर का पाला दो । यदि डाँगर का पाला न दिखे या न मिले तो उसके बजाय मुग का पाला दो । तब सुज्ञश्री धान्य रखने के कोठार में पहुँची और देखती है तो दूसरी अवस्था पाई हुई ब्राह्मणी को देखकर सुज्ञश्री हाहारव करके शोर मचाने लगी । वो सुनकर परिवार सहित वो गोविंद ब्राह्मण और महियारी आ पहुँचे । पवन और जल से आश्वासन पाकर उन्होंने पूछा कि – हे भट्टीदारिका ! यह तुम्हें अचानक क्या हो गया ?

तब सावध हुई ब्राह्मणी ने प्रत्युत्तर में बताया कि अरे ! तुम रक्षा रहित ऐसी मुझे झहरीले साँप के डंख मत दिलाओ । निर्जल नदी में मुझे मत खड़ा करो । अरे रस्सी रहित स्नेहपाश में जकड़ी हुई ऐसी मुझे मोह में स्थापित मत करो । जैसे कि यह मेरे पुत्र, पुत्री, भतीजे हैं । यह पुत्रवधू, यह जमाई, यह माता, यह पिता है, यह मेरे भर्तार है, यह मुझे इष्ट प्रिय मनचाहे परिवारवर्ग, स्वजन, मित्र, बन्धुवर्ग है । वो यहाँ प्रत्यक्ष झूठी मायावाले हैं । उनकी ओर से बन्धुपन की आशा मृगतृष्णा है,अपनेपन का झूठा भ्रम होता है; परमार्थ से सोचा जाए तो कोई सच्चे स्वजन नहीं है जब तक स्वार्थ पूरा होता है तब तक माता, पिता, पुत्री, पुत्र, जमाई, भतीजा, पुत्रवधू आदि सम्बन्ध बनाए रखते हैं। तब तक ही हर एक को अच्छा लगता है । इष्ट मिष्ट प्रिय स्नेही परिवार के स्वजन वर्ग मित्र बन्धु परिवार आदि तब तक ही सम्बन्ध रखते हैं कि जब तक हरएक का अपना मतलब पूरा होता है ।

अपने कार्य की सिद्धि में, विरह में कोई किसी की माता नहीं, न कोई किसी के पिता, न कोई किसी की पुत्री, न कोई किसी का जमाई, न कोई कसी का पुत्र, न कोई किसी की पत्नी, न कोई किसी का भर्तार, न कोई किसी का स्वामी, न कोई किसी के इष्ट मिष्ट प्रियकान्त परिवार स्वजन वर्ग मित्र बन्धु परिवार वर्ग हैं । क्योंकि देखो तब प्राप्त हुए कुछ ज्यादा नौ वर्ष तक कुक्षि में धारण करके कईं मिष्ट मधुर उष्ण तीखे सूखे स्निग्ध आहार करवाए, स्नान पुरुषन किया, उसका शरीर कपड़े धोए, शरीर दबाया, धन-धान्यादिक दिए । उसे उछेरने की महाकोशीश की। उस समय ऐसी आशा रखी थी कि पुत्र के राज में मेरे मनोरथ पूर्ण होंगे । और स्नेहीजन की आशा पूरी करके मैं काफी सुख में मेरा समय पसार करूँगी । मैंने सोचा था उससे बिलकुल विपरीत हकीकत बनी है । अब इतना जानने और समझने के बाद पति आदि पर आधा पल भी स्नेह रखना उचित नहीं है । जिस अनुसार मेरे पुत्र का वृत्तान्त बना है उसके अनुसार घर-घर भूतकाल में वृत्तान्त बने हैं । वर्तमान में बनते हैं और भावि में भी बनते रहेंगे। वो बन्धुवर्ग भी केवल अपने कार्य सिद्ध करने के लिए घटिका मुहूर्त्त उतना समय और स्नेह परीणाम टिकाकर सेवा करता है । इसलिए हे लोग ! अनन्त संसार के घोर दुःख देनेवाले ऐसे यह कृत्रिम बन्धु और संतान का मुझे कोई प्रयोजन नहीं है । इसलिए अब रात-दिन हंमेशा उत्तम विशुद्ध आशय से धर्म का सेवन करो ।

धर्म ही धन, इष्ट, प्रिय, कान्त, परमार्थ से हितकारी, स्वजन वर्ग, मित्र, बन्धुवर्ग है । धर्म ही सुन्दर दर्शनीय रूप करनेवाला, पुष्टि करनेवाला, बल देनेवाला है । धर्म ही उत्साह करवानेवाला, धर्म ही निर्मल, यश, कीर्ति की साधना करनेवाला है । धर्म ही प्रभावना करवानेवाला, श्रेष्ठतम सुख की परम्परा देनेवाला हो तो वो धर्म है । धर्म ही सर्व तरह के निधान स्वरूप है । आराधनीय है । पोषने के लायक है, पालनीय है । करणीय है, आचरणीय है, सेवनीय है, उपदेशनीय है, कथनीय है, पढ़ने के लायक है, प्ररूपणीय है, करवाने के लायक है, धर्म ध्रुव है, शाश्वत है, अक्षय है, स्थिर रहनेवाला है । समग्र सुख का भंड़ार है, धर्म अलज्जनीय है, धर्म अतुल बल, वीर्य, सम्पूर्ण सत्त्व, पराक्रम सहितपन दिलानेवाला होता है । प्रवर, श्रेष्ठ, इष्ट, प्रिय, कान्त दृष्टिजन का संयोग करवानेवाला हो

तो वो धर्म है । समग्र असुख, दारिद्र्य, संताप, उद्वेग, अपयश, झूठे आरोप, बुढ़ापा, मरण आदि समग्र भय को सर्वथा नष्ट करनेवाला, जिसकी तुलना में कोई न आ सके वैसा सहायक, तीन लोक में बेजोड़ नाथ हो तो केवल एक धर्म है ।

इसलिए अब परिवार, स्वजनवर्ग, मित्र, बन्धु वर्ग, भंड़ार आदि आलोक की चीजों से प्रयोजन नहीं है । और फिर यह ऋद्धि-समृद्धि इन्द्र धनुष, बीजली, लत्ता के आटोप से ज्यादा चंचल, स्वप्न और इन्द्र जल समान देखने के साथ ही पल में गुम होनेवाली, नाशवंत, अध्रुव, अशाश्वत, संसार की परम्परा बढ़ानेवाला, नारक में उत्पन्न होने के कारण रूप, सद्गति के मार्ग में विघ्न करनेवाला, अनन्त दुःख देनेवाला है । अरे लोगो ! धर्म के लिए यह समय काफी दुर्लभ है । सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूप धर्म को साधनेवाला, आराधना करवानेवाला, अनुपम सामग्रीयुक्त ऐसा समय फिर नहीं मिलेगा । और फिर मिला हुआ यह शरीर हंमेशा रात-दिन हरएक पल में और हरएक समय में टुकड़े टुकड़े होकर सड़ गया है । दिन-प्रतिदिन शिथिल होता जाता है । घोर, निष्ठुर, असभ्य, चंड़, जरा समान, वज्र शिला के प्रतिघात से टुकड़े-टुकड़े होकर सैंकड़ो पड़वाले जीर्ण मिट्टी के हांड़ी समान, किसी काम में न आए ऐसा, पूरी तरह बिनजरुरी बन गया है । नए अंकुर पर लगे जलबिन्दु की तरह अचानक अर्धपल के भीतर एकदम यह जीवित पेड़ पर से उड़ते हुए पंछी की तरह उड़ जाते हैं । परलोक के लिए भाथा उपार्जन न करनेवाले को यह मानव जन्म निष्फल है तो अब छोटे-से छोटा प्रमाद भी करने के लिए मैं समर्थ नहीं हूँ ।

यह मनुष्य रूप में सर्वकाल मित्र और शत्रु के प्रति समान भाववाले बनना चाहिए । वो इस प्रकार समग्र जीव के प्राण के अतिपात की त्रिविध-त्रिविध से विरति, सत्य वचन बोलना, दाँत खुतरने की शलाका समान या लोच करने की भस्म समान निर्मुल्य चीज भी बिना दिए ग्रहण न करना । मन, वचन, काया के योग सहित अखंडित अविराधित नवगुप्ति सहित परम पवित्र, सर्वकाल दुर्धर ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करना । वस्त्र, पात्र, संयम के उपकरण पर भी निर्ममत्व, अशन-पानादिक चार आहार का रात को त्याग करना, उद्गम-उत्पादना एषणादिक में पाँच दोष से मुक्त होना, परिमित समय भोजन करना, पाँच समिति का शोधन करना, तीन गुप्ति से गुप्त होना, इर्यासमिति आदि भावना, अशनादिक तप के उपधान का अनुष्ठान करना । मासादिक भिक्षु की बारह प्रतिमा, विचित्र तरह के द्रव्यादिक अभिग्रह, अस्नान, भूमिशयन, केशलोच, शरीर की टापटीप न करना, हंमेशा सर्वकाल गुरु की आज्ञा के अनुसार व्यवहार करना । क्षुधा प्यास आदि परिषह सहना । दिव्यादिक उपसर्ग पर विजय पाना । मिले या न मिले दोनों में समभाव रखना । या मिले तो धर्मवृद्धि, न मिले तो तपोवृद्धि वैसी भावना रखना ।

ज्यादा कितना बयाँ करे ? अरे लोगों ! यह अठ्ठारह हजार शीलांग के बोझ बिना विश्रान्ति से श्री महापुरुष से वहन कर सके वैसा काफी दुर्धर मार्ग वहन करने के लायक है । विशाद पाए बिना तो बाहा से यह महासागर तैरने के समान यह मार्ग है । यह साधुधर्म स्वाद रहित मिट्टी के नीवाले का भक्षण करने के समान है । काफी तीक्ष्ण पानीदार भयानक तलवार की धार पर चलने के समान संयम धर्म है । घी आदि से अच्छी तरह से सींचन किए गए अग्नि की ज्वाला श्रेणी का पान करने के समान चारित्र धर्म है । सूक्ष्म पवन से बँटवा भरने के जैसा कठिन संयम धर्म है । गंगा के प्रवाह के सामने गमन करना, साहस के तराजू से मेरु पर्वत नापना, एकाकी मानव धीरता से दुर्जय चातुरंग सेना को जीतना, आपसी उल्टी दिशा में भ्रमण करते आँठ चन्द्र के ऊपर रही पूतली की दाँई आँख बाँधना, समग्र तीन भुवन में विजय प्राप्त करके निर्मल, यश, कीर्ति की जयपताका ग्रहण करना, इन सबसे भी धर्मानुष्ठान से किसी भी अन्य चीज दुष्कर नहीं है यानि उससे सभी चीजों को सिद्धि होती है ।

सूत्र – १४८५-१४८७

मस्तक पर बोझ विसामा लेते-लेते वहन किया जाता है । महान शील का बोझ विश्रान्ति रहित जीवनपर्यन्त वहन किया जाता है । इसलिए सारभूत पुत्र द्रव्य आदि का स्नेह छोड़कर निःसंग होकर बिना खेद सर्वोत्तम चारित्र धर्म सेवो । आडम्बर, झूठी प्रशंसा, वंचना, धर्म के वैसे व्यवहार नहीं होते । मायादिक शल्य, छलभाव रहित धर्म है।

सूत्र – १४८८-१४९६

जीव में त्रसपन, त्रसपन में भी पंचेन्द्रियपन उत्कृष्ट है । पंचेन्द्रियपन में भी मानवपन उत्तम है । उसमें आर्यदेश, आर्यदेश में उत्तमकुल, उत्तमकुल में उत्कृष्ट जाति-ज्ञाति और फिर उसमें रूप की समृद्धि उसमें भी प्रधानतावाली शक्ति, प्रधानबल मिलने के साथ-साथ लम्बी आयु, उसमें भी विज्ञान-विवेक, विज्ञान में भी सम्यक्त्व प्रधान है । और फिर सम्यक्त्व में शील की प्राप्ति बढ़िया मानी है । शील में क्षायिक भाव, क्षायिक भाव में केवल ज्ञान, प्रतिपूर्व केवलज्ञान प्राप्त होना यानि जरा मरण रहित मोक्ष प्राप्त हो ।

जन्म, जरा, मरण आदि के दुःख से बँधे जीव को इस संसार में कहीं भी सुख नहीं मिलता । इसलिए एकान्त मोक्ष ही उपदेश पाने के लायक है । ८४ लाख योनि में अनन्त बार दीर्घकाल तक भ्रमण करके अभी तुमने उस मोक्ष को साधने के लायक काफी चीजें पाई हैं तो आज तक पहले किसी दिन न पाई हुई ऐसी उत्तम चीजें पाई हैं तो हे लोगों ! तुम उसमें जल्द उद्यम करो । विबुध पंड़ित ने निन्दित संसार की परम्परा बढ़ानेवाले ऐसे इस स्नेह को छोड़ो, धर्मश्रवण करके अनेक क्रोड़ो वर्षो में दुर्लभ ऐसे सुंदर धर्म को यदि तुम यहाँ सम्यक् तरीके से नहीं करोगे तो फिर उस धर्म की प्राप्ति दुर्लभ होगी । प्राप्त बोधि सम्यक्त्व के अनुसार यहाँ जो धर्म प्रवृत्ति नहीं करता और आनेवाले भव में धर्म करेंगे ऐसी प्रार्थना करे वो भावी भव में किस मूल्य से बोधि प्राप्त करेंगे ?

सूत्र – १४९७

पूर्वभव के जातिस्मरण होने से ब्राह्मणी से जब यह सुना तब हे गौतम ! समग्र बन्धुवर्ग और दूसरे कईं नगरजन को प्रतिबोध हुआ ।

हे गौतम ! उस अवसर पर सद्गति का मार्ग अच्छी तरह से मिला है । वैसे गोविंद ब्राह्मण ने कहा कि धिक्कार है मुझे, इतने अरसे तक हम बनते रहे, मूढ़ बने रहे, वाकई अज्ञान महाकष्ट है । निर्भागी-तुच्छ आत्मा को घोर उग्र परलोक विषयक निमित्त जिन्हें पता नहीं है, अन्य में आग्रहवाली बुद्धि करनेवाले, पक्षपात के मोहाग्नि को उत्तेजित करने के मानसवाले, राग-द्वेष से वध की गई बुद्धिवाले, यह आदि दोषवाले को इस उत्तम धर्म समझना काफी मुश्किल होता है । वाकई इतने अरसे तक मेरी आत्मा बनती रही । यह महान् आत्मा भार्या होने के बहाने से मेरे घर में उत्पन्न हुई । लेकिन निश्चय से उसके बारे में सोचा जाए तो सर्वज्ञ आचार्य की तरह इस संशय समान अँधेरे को दूर करनेवाले, लोक को प्रकाशित करनेवाले, बड़े मार्ग को सम्यक् तरीके से बताने के लिए ही खुद प्रकट हुए हैं । अरे, महा अतिशयवाले अर्थ की साधना करनेवाली मेरी प्रिया के वचन हैं । अरे यज्ञदत्त ! विष्णुदत्त ! यज्ञदेव ! विश्वामित्र ! सोम ! आदित्य आदि मेरे पुत्र, देव और असुर सहित पूरे जगत को यह तुम्हारी माता आदर और वंदन करने के लायक हैं ।

अरे ! पुरन्दर आदि छात्र ! इस उपाध्याय की भार्याने तीन जगत को आनन्द देनेवाले, सारे पापकर्म को जलाकर भस्म करने के स्वभाववाली वाणी बताई उसे सोचो । गुरु की आराधना करने में अपूर्व स्वभाववाले तुम पर आज गुरु प्रसन्न हुए हैं । श्रेष्ठ आत्मबलवाले, यज्ञ करने-करवाने के लिए अध्ययन करना, करवाना, षट्कर्म करने के अनुराग से तुम पर गुरु प्रसन्न हुए हैं । तो अब तुम पाँच इन्द्रिय को जल्द से जीत लो । पापी ऐसे क्रोधानिक कषाय का त्याग करो । विष्ठा, अशुचि, मलमूत्र और आदि के कीचड़ युक्त गर्भावास से लेकर प्रसूति जन्म मरण आदि अवस्था कैसे प्राप्त होती है । वो तुम सब समझो । ऐसे काफी वैराग उत्पन्न करवानेवाले सुभाषित बताए ऐसे चौदह विद्या के पारगामी गोविंद ब्राह्मण को सुनकर काफी जन्म-जरा, मरण से भयभीत कईं सत्पुरुष धर्म की सोचने लगे । तब कुछ लोग ऐसा कहने लगे कि यह धर्म श्रेष्ठ है, प्रवर धर्म है । ऐसा दूसरे लोग भी कहने लगे । हे गौतम ! यावत् हर एक लोगों ने यह ब्राह्मणी जाति स्मरणवाली है ऐसे प्रमाणभूत माना ।

उसके बाद ब्राह्मणीने अहिंसा लक्षणवाले निःसन्देह क्षमा आदि दश तरह के श्रमणधर्म को आशय-दृष्टान्त कहने के पूर्वक उन्हें परम श्रद्धा पैदा हो उस तरह से समझाया । उसके बाद उस ब्राह्मणी को यह सर्वज्ञ है ऐसा मानकर हस्तकमल की सुन्दर अंजली रचकर सम्मान से अच्छी तरह से प्रणाम करके हे गौतम ! उस ब्राह्मणी के

साथ दीनतारहित मानसवाले कईं नर-नारी वर्गने अल्पकाल सुख देनेवाले ऐसे परिवार, स्वजन, मित्र, बन्धु, परिवार, घर, वैभव आदि का त्याग करके शाश्वत मोक्षसुख के अभिलाषी काफी निश्चित दृढ़ मनवाले, श्रमणपन के सभी गुण को धारण करनेवाले, चौदह-पूर्वधर, चरम शरीरवाले, तद्भवमुक्तिगामी ऐसे गणधर स्थविर के पास प्रव्रज्या अंगीकार की । हे गौतम ! इस प्रकार वो काफी घोर, वीर, तप, संयम के अनुष्ठान के सेवन स्वाध्याय ध्यानादिक में प्रवृत्ति करते-करते सारे कर्म का क्षय करके उस ब्राह्मणी के साथ कर्मरज फेंककर गोविंद ब्राह्मण आदि कईं नर और नारीगण ने सिद्धि पाई । वो सब महायशस्वी बने इस प्रकार कहता हूँ ।

सूत्र – १४९८

हे भगवंत ! उस ब्राह्मणीने ऐसा तो क्या किया कि जिससे इस प्रकार सुलभ बोधि पाकर सुबह में नाम ग्रहण करने के लायक बनी और फिर उसके उपदेश से कईं भव्य जीव नर-नारी कि जो अनन्त संसार के घोर दुःख में सड़ रहे थे उन्हें सुन्दर धर्मदेश आदि के द्वारा शाश्वत सुख देकर उद्धार किया । हे गौतम ! उसने पूर्वभव में कईं सुन्दर भावना सहित शल्य रहित होकर जन्म से लेकर अनन्त तक लगे हुए दोष की शुद्ध भाव सहित आलोयणा देकर यथोपदिष्ट प्रायश्चित्त किया । फिर समाधि काल पाकर उसके प्रभाव से सौधर्म देवलोक में इन्द्र महाराज की अग्रमहिषी महादेवी के रूप में उत्पन्न हुई ।

हे भगवंत ! क्या उस ब्राह्मणी का जीव उस के पीछले भव में निर्ग्रंथी श्रमणी थी कि जिसने निःशल्य आलोचना करके यथोपदिष्ट प्रायश्चित्त किया ? हे गौतम ! उस ब्राह्मणी के जीवने उसके पीछले भव में काफी लब्धि और सिद्धि प्राप्त की थी । ज्ञान, दर्शन, चारित्र रत्न की महाऋद्धि पाई थी । समग्र गुण के आधारभूत उत्तम शीला-भूषण धारण करनेवाले शरीरवाले, महा तपस्वी युगप्रधान श्रमण अणगार गच्छ के स्वामी थे, लेकिन श्रमणी न थे ।

हे भगवंत ! किस कर्म के विपाक से गच्छाधिपति होकर उसने स्त्रीपन के कर्म का उपार्जन किया ? हे गौतम ! माया करने के कारण से हे भगवंत ! ऐसा उसे माया के कारण क्या हुआ कि – जिसका संसार दुबला हो गया है । ऐसे आत्मा को भी समग्र पाप के उदय से मिलनेवाला, काफी लोगों से निन्दित, खुशबुदार द्रव्य, घी, शक्कर, अच्छे वसाणे का चूर्ण, प्रमाण इकट्ठे करके बनाए गए पाक के लड्डू के पात्र की तरह सबको भोग्य, समग्र दुःख और क्लेश के स्थानक, समग्र सुख को नीगलनेवाले परम पवित्र उत्तम ऐसे अहिंसा लक्षण स्वरूप श्रमण धर्म के विघ्न समान, स्वर्ग की अर्गला और नरक के द्वार समान, समग्र अपयश, अपकीर्ति, कलंक, क्लेश आदि वैरादि पाप के निधान समान निर्मलकुल को अक्षम्य, अकार्य रूप श्याम काजल समान काले कूचड़े से कलंकित करनेवाला ऐसे स्त्री के स्वभाव को गच्छाधिपतिने उपार्जित किया ?

हे गौतम ! गच्छाधिपतिपन में रहे ऐसे उसने छोटे-से छोटी भी माया नहीं की थी । पहले वो चक्रवर्ती राजा होकर परलोक भीरू कामभोग से ऊबनेवाले ऐसे उसने तीनके की तरह चक्रवर्ती की समृद्धि, चौदह रत्न, नव निधान, ६४००० श्रेष्ठ स्त्रियाँ, ३२००० आज्ञांकित श्रेष्ठ राजा, ९६ करोड़ पदाति यावत् छह खंड का भारत वर्ष का राज्य, देवेन्द्र की उपमा समान महाराज्य की समृद्धि का त्याग कर के, काफी पुण्य से प्रेरित वो चक्रवर्ती निःसंग होकर प्रव्रज्या अंगीकार की । अल्प समय में गुणधारी महातपस्वी श्रुतधर बने । योग्य जानकर उत्तम गुरु महाराजाने उसे गच्छाधिपति की अनुज्ञा की । हे गौतम ! वहाँ भी जिसने सद्गति का मार्ग अच्छी तरह से पहचाना है । यथोपदिष्ट श्रमण धर्म को अच्छी तरह से पालन करते, उग्र अभिग्रह धारण करते, घोर परिषह उपसर्ग सहते, रागद्वेष कषाय का त्याग करते, आगम के अनुसार विधि से गच्छपालन कर के, जीवनपर्यन्त साध्वी का लाया हुआ आहार के परिभोग छोड़ देते, छ काय जीव समारम्भ वर्जन करते, सहज भी दीव्य औदारिक मैथुन परीणाम न करते, आलोक या परलोक के सांसारिक सुख की आशंसा न करते नियाण, माया शल्य से मुक्त, निःशल्यता से आलोचना, निन्दना गर्हणापूर्वक यथोपदिष्ट प्रायश्चित्त सेवन करते प्रमाद के आलम्बन से सर्वथा मुक्त कईं भव में उपार्जित किए ऐसे न खपाए हुए कर्मराशि को जिसने खपाकर काफी अल्प प्रमाणवाले स्त्रीरूप के कारण समान

बताए हैं, कर्म ऐसे उन्होंने बाकी अन्य भव में माया की थी उस निमित्त से बाँधे हुए इस कर्म का उदय हुआ है ।

हे भगवंत ! अन्य भव में उस महानुभाव ने किस तरह माया की, जिससे ऐसा भयानक कर्मोदय हुआ ? हे गौतम ! उस गच्छाधिपति का जीव लाख भव के पहले सामान्य राजा की पुत्री के रूप में उत्पन्न हुई । किसी समय शादी के बाद तुरन्त उसका भर्तार मर गया । तब उसके पिताने राजकुमारी को कहा कि, हे भद्रे ! मैं तुम्हें अपने गाँव में से पचास राज्य देता हूँ । उस की आमदनी में से तुम्हारी इच्छा के अनुसार अंधो को, आधे अंगवाले को, जो चल नहीं सकते ऐसे अपंग को, काफी व्याधि वेदना से व्याप्त शरीरवाले को, सभी लोगों से पराभवित, दारिद्र, दुःख, शरीरसीबी से कलंकित लोगों को, जन्म से ही दरिद्र हो उनको, श्रमण को, श्रावक को, बेचैन को, रिश्तेदारों को, जिस किसी को जो इष्ट हो ऐसे भोजन, पानी, वस्त्र यावत् धन, धान्य, सुवर्ण, हिरण्य या समग्र सुख देनेवाले, सम्पूर्ण दया करके अभयदान दो । जिससे भवान्तर में भी सभी लोगों को अप्रियकारिणी सबको पराभव करने के स्थानभूत तुं न बने । और सुवास, पुष्पमाला, तंबोल, विलेपन, अंगराग आदि इच्छा के अनुसार भोग और उपभोग के साधन रहित बने, अपूर्ण मनोरथवाली, दुःख जन्म देनेवाली बीबी वंध्या रंड़ा आदि दुःखवाली न बने ।

तब हे गौतम ! उसने तहत्ति करके उस बात को अपनाइ । लेकिन नेत्र से हड़ हड़ करते अश्रुजल से जिसका कपोल का हिस्सा धुल रहा है । खोखरी आवाज में कहने लगी कि ज्यादा बोलने मैं नहीं जानती । यहाँ से आप जाकर जल्द काष्ठ की बड़ी चित्ता बनवाओ कि जिससे मेरे शरीर को उसमें डूबो दूँ । पापिणी ऐसी मुझे अब जीने का कोई प्रयोजन नहीं है । शायद कर्म परिणति को आधीन होकर महापापी स्त्री के चंचल स्वभाव के कारण से आपके इस असामान्य प्रसिद्ध नामवाले पूरे संसार में जिसकी कीर्ति और पवित्र यश भरा हुआ है ऐसे आप के कुल को शायद दाग लगानेवाली बनूँ । यह मेरे निमित्त से अपना सर्व कुल मलीन हो जाए उसके बाद उस राजाने चिन्तवन की कि – वाकइ मैं अधन्य हूँ कि अपुत्रवाले ऐसे मुजे ऐसी रत्न समान बेटी मिले । अहो ! इस बालिका का विवेक । अहो उसकी बुद्धि ! अहो उसकी प्रज्ञा ! अहो उसका वैराग ! अहो उसके कुल को दाग लगानेवाला भीरूपन ! अहो समचुम हर पल यह बालिका वंदनीय है, जिसके ऐसे महान गुण है तो जब तक वो मेरे घर में रहेगी तब तक मेरा महा कल्याण होगा । उसको देखने से, स्मरण करने से, उसके साथ बोलने से आत्मा निर्मल होगा, तो पुत्र रहित मुजको यह पुत्री पुत्रतुल्य है – ऐसा सोचकर राजाने कहा कि –

हे पुत्री ! हमारे कुल की रसम के अनुसार काष्ट की चित्ता में रंड़ापा नहीं होता । तो तू शील और श्रावकधर्म रूप चारित्र का पालन कर, दान दे, तुम्हारी ईच्छा के अनुसार पौषध उपवास आदि कर और खास करके जीवदया के काम कर । यह राज्य भी तुम्हारा ही है । उसके बाद हे गौतम ! पिताके इस प्रकार कहने के बाद चित्ता में गिरना बन्द रखके मौन रही । फिर पिताने अंतःपुर के रक्षपाल सेवक को सौंप दिया । उस अनुसार समय बीतने से किसी समय वो राजा मर गया । एक महाबुद्धिशाली महामंत्रीओने इकट्ठे होकर तय किया कि इस राजकुमारी का ही यहाँ राज्याभिषेक कर दे । फिर राज्याभिषेक किया । हे गौतम ! उसके बाद हररोज सभा मंड़प में बैठती थी ।

अब किसी दिन वहाँ राजसभा में कईं बुद्धिजन, विद्यार्थी, भट्ट, तड़िंग, मुसद्दी, चतुर, विचक्षण, मंत्रीजन, महंत आदि सैंकड़ो पुरुष से भरी पड़ी इस सभा मंड़प के बीच राजसिंहासन पर बैठे कर्मपरिणति के आधीन राजकुमारीने राग सहित अभिलाषावाले नेत्र से उत्तम रूप लावण्य शोभा की संपत्तिवाली जीवादिक चीज के सुन्दर ज्ञानवाले एक उत्तम कुमार को देखा ।

कुमार उसके मनोगत भाव को समझ गया । सोचने लगा कि – मुझे देखकर बेचारी यह राजकुमारी घोर अंधकारपूर्ण और अनन्त दुःखदायक पाताल में पहुँच गई । वाकई मैं अधन्य हूँ कि इस तरह का राग उत्पन्न होने के यंत्र समान, पुद्गल समूहवाले मेरे देह को देखकर तीतली की तरह कामदीपक में छलांग लगाता है । अब मैं जी क क्या करूँ ? अब मैं जल्द इस पापी शरीर को वोसीराऊं । इसके लिए काफी दुष्कर प्रायश्चित्त करूँगा ।

समग्र संग का त्याग करने के समान समग्र पाप का विनाश करनेवाले अणगार धर्म को अंगीकार करूँगा ।

कईं पूर्वभव में इकट्ठे हुए दुःख से करके छोड़ सके ऐसे पाप बन्धन के समूह को शिथिल करूँगा, ऐसे अव्यवस्थित जीवलोक को धिक्कार है कि जिसमें इन्द्रिय का वर्ग इस तरह पराधीन होता है । अहो कैसी कमनसिबी है कि लोक परलोक के नुकसान की ओर नजर नहीं उठाता । एक जन्म के लिए चित्त का दुराग्रह कैसा हुआ है ? कार्याकार्य की अज्ञानता, मर्यादा रहितपन, तेजरहितपन, लज्जा का भी जिसने त्याग किया है । मुझे इस हालात में पलभर भी देर लगाना उचित नहीं है । दुःख से करके रोका जाए ऐसे तत्काल पाप का आगमन होता हो ऐसे स्थान में रहना जोखिम है । हा हा हा हे निर्लज्ज शत्रु ! अधन्य ऐसी आँठ कर्मराशि इस राज बालिका को आज उदय में आए हैं । यह मेरे कोठार समान पाप शरीर को रूप देखने से उसके नेत्र में राग की अभिलाषा हुई । अब इस देश का त्याग करके प्रव्रज्या अंगीकार करूँ । ऐसा सोचकर कुमारवरने कहा कि – मैं शल्य रहित होकर आप सबकी क्षमा चाहता हूँ । और मेरा किसी अनजाने में भी अपराध हुआ हो तो हरकोई क्षमा दे, त्रिविध-त्रिविध से त्रिकरण शुद्ध से मैं सभामंड़प में रहे राजकुल और नगरजन आदि सब की क्षमा माँगता हूँ । ऐसा कहकर बाहर नीकल गया ।

अपने निवासस्थान पर पहुँच गया । वहाँ से रास्ते में खाने का पाथेय ग्रहण किया । झाँक के ढ़ग के तरंग समान सुकुमाल श्वेत वस्त्र के दो खंड़ करके पहना । सज्जन के हृदय समान सरल नेतर लता की सोटी और अर्धढ़ाल बाँये हाथ में ग्रहण की उसके बाद तीनों भुवन के अद्वितीय गुरु ऐसे अरिहंत भगवंत संसार में सबसे श्रेष्ठ धर्म तीर्थंकर की यथोक्त विधि से संस्तवना, स्तुति, नमस्कार करके चलते रहे । ऐसे चलते कुमार काफी दूर देशान्तर में पहुँचे कि जहाँ हिरण्णक्करूड़ी राजधानी थी । वहाँ विशिष्ट गुणवाले धर्माचार्य के आने के समाचार पाने के लिए कुमार खोज करता था और सोचता था कि जब तक विशिष्ट गुणवाले धर्माचार्य का योग न बने तब तक मैं यहीं रूकुं । ऐसे कुछ दिन बीते । कईं देश में फैलनेवाली कीर्तिवाले वहाँ के राजा की सेवा करूँ ऐसा मन में मंत्रणा करके राजा को मिला । योग्य निवेदन किया । राजाने सन्मान किया । सेवा पाई ।

किसी समय प्राप्त हुए अवसर से उस कुमार को राजाने पूछा कि – हे महानुभाव ! महासत्त्वशालिन् ! यह तुम्हारे हाथ में किसके नाम से अलंकृत मुद्रारत्न सुशोभित है ? इतने अरसे तक तूने कौन-से राजा की सेवा की थी? या तो तुम्हारे स्वामीने तुम्हारा अनादर किस तरह किया ? कुमारने राजा को प्रत्युत्तर दिया कि जिसके नाम से अलंकृत यह मुद्रारत्न है उसकी मैंने इस अरसे तक सेवा की । उसके बाद राजने पूछा कि – उसे किस शब्द से बुलाया जाता है ? कुमारने कहा कि – भोजन किए बिना मैं वो चक्षुकुशील अधम का नाम नहीं लूँगा । तब राजाने पूछा कि, अरे महासत्त्वशालिन् ! वो चक्षुकुशील ऐसे शब्द से क्यों बुलाए जाते हैं ? और खाए बिना उसका नाम न लेने की क्या वजह है ? कुमारने कहा कि चक्षुकुशील ऐसा नाम शब्दपूर्वक बोलूँगा नहीं किसी दूसरे स्थान में कभी तुम्हें प्रत्यक्ष पता चलेगा । और फिर किसी शान्ति के पल में वो हकीकत बताऊंगा । खाए बिना उनके नाम का शब्द न बोलना, उस कारण से मैंने उसका नाम नहीं लिया । शायद बिना खाए उस चक्षुकुशील अधम का नाम लूँ तो उस कारण से दिन में पान-भोजन की प्राप्ति न हो सके । तब हे गौतम ! विस्मय पानेवाले राजाने कुतूहल वश जल्द रसवंती मँगवाई । राजकुमार और सर्व परिवार के साथ भोजन मंड़प में बैठा । अठ्ठारह तरह के मिष्टान्न भोजन सुखड़ी, खाजा और अलग अलग तरह की आहार मँगवाया। इस समय राजाने कुमार को कहा कि – भोजन कर के बाद बताऊंगा । राजाने फिर से कहा– हे महासत्त्ववान् ! दाइने हाथ में नीवाला है, अब नाम बताओ

शायद यदि इस हालात में हमें कोई विघ्न हो तो हमें भी वो पता चले इसलिए नगर सहित सब तुम्हारी आज्ञा से आत्महीत की साधना करे । उसके बाद हे गौतम ! उस कुमारने कहा कि वो चक्षुकुशीलधाम दुरन्त प्रान्त लक्षणवाले न देखने के लायक दुर्जात जन्मवाले उसका ऐसा कुछ शब्द में बोलने के लायक नाम हैं । हे गौतम ! जितने में यह कुमारवरने नाम लिया कि उतने में किसी को पता न चले ऐसे अचानक अकस्मात से उस राजधानी को शत्रु के सैन्य ने घैर लिया । बख्तर पहनकर सज्ज ऊपर झंड़ा लहराते हुए तीक्ष्ण धारवाली तलवार, भाला, चमकीले चक्र आदि शस्त्र जिसके अग्र हस्त में हैं, वध करो ऐसे हण के शब्द से भयानक, कईं युद्ध के संसर्ग में

किसी दिन पीछेहठ न करनेवाले, जीवन का अन्त करनेवाले, अतुलबल, पराक्रमी, महाबलवाले योद्धा आ गए ।

इस समय कुमार के चरण में गिरकर – प्रत्यक्ष देखे प्रमाण से मरण के भय से बेचैन होने के कारण से अपने कुल क्रमगत पुरुषकार की परवाह किए बिना राजा पलायन हो गया । एक दिशा प्राप्त करके परिवार सहित वो राजा भागने लगा । हे गौतम ! उस समय कुमारने चिन्तवन किया कि मेरे कुलक्रम में पीठ बताना ऐसा किसी से नहीं हुआ । दूसरी ओर अहिंसा लक्षण धर्म को जाननेवाले और फिर प्राणातिपात के लिए प्रत्याख्यानवाले मुझ पर प्रहार करना उचित नहीं है । तो अब मुझे क्या करना चाहिए ? या आगारवाले भोजन पानी के त्याग के पच्चक्खाण करूँ ? एक केवल नगर से कुशील का नाम ग्रहण करने में – भी इतना बड़ा नुकसान कार्य खड़ा हुआ । तो अब मुझे अपने शील की कसौटी भी यहाँ करना । ऐसा सोचकर कुमार कहने लगा कि – यदि मैं केवल वाचा से भी कुशील बनूँ तो इस राजधानी में से क्षेम कुशल अक्षत शरीरवाला नहीं नीकल सकूँगा । यदि मैं मन, वचन, काया ऐसे तीन तरह के सर्व तरीके से शीलयुक्त बनूँ तो मेरे पर यह काफी तीक्ष्ण भयानक जीव का अन्त करनेवाले हथियार से वार मत करना । 'नमो अरिहंताणं, नमो अरिहंताणं' ऐसे बोल को जितने में श्रेष्ठ तोरणवाले दरवज्जे के द्वार की ओर चलने लगे । जितने में थोड़ी भूमि के हिस्से में ड़ग भरता था उतने में शोर करते हुए किसीने कहा कि–

भिक्षुक के वेश में यह राजा जाते है । ऐसा कहकर आनन्द में आकर कहने लगा कि–हर लो, हर लो, मारो मारो, इत्यादिक शब्द बोलते-बोलते तलवार आदि शस्त्र उठाकर प्रवर बलवाले योद्धा जैसे वहाँ दौड़कर आए, काफी भयानक जीव का अन्त करनेवाले, शत्रु सैन्य के योद्धा आ गए । तब खेद रहित धीरे धीरे निर्भयता से त्रस हुए बिना अदीन मनवाले कुमारने कहा कि अरे दुष्ट पुरुष ! ऐसे तामस भाव से तुम हमारे पास आओ । कईं बार शुभ अध्यवसाय से इकट्ठे किए पुण्य की प्रकर्षतावाला मैं ही हूँ । कुछ राजा तुम्हारे सच्चे शत्रु है । तुम ऐसा मत बोलना कि हमारे भय से राजा अदृश्य हुआ है । यदि तुममें शक्ति, पराक्रम हो तो प्रहार करो । जैसे इतना बोला वैसे उसी पल वो सब रूक गए ।

हे गौतम ! शीलालंकृत् पुरुष की बोली देवता को भी अलंघनीय है । वो निश्चल देहवाला बना । उसके बाद घस करते मूर्च्छा पाकर चेष्टा रहित होकर भूमि पर कुमार गिर पड़ा । हे गौतम ! उस अवसर पर कपटी और मायावी उस अधम राजाने सर्व भ्रमण करते लोगों को और सर्वत्र रहे धीर, समर्थ, भीरु, विचक्षण, मूरख, शूरवीर, कायर, चतुर, चाणक्य समान बुद्धिशाली, काफी प्रपंच से भरे संधि करवानेवाले, विग्रह करवानेवाले, चतुर राजसेवक आदि पुरुषों को कहा कि अरे ! इस राजधानी में से तुम जल्द हीरे, नीलरत्न, सूर्यकान्त, चन्द्रकान्तमणि, श्रेष्ठमणि और रत्न के ढेर, हेम अर्जुन तपनीय जांबुनद सुवर्ण आदि लाख भार प्रमाण ग्रहण करो । ज्यादा क्या कहे? विशुद्ध बहु जातिवंत ऐसे मोती विद्रुम – परवाला आदि लाखो खारि से भरे (उस तरह का उस समय चलता पाली समान नाप विशेष) भंड़ार चतुरंग सेना को दे दे, खास करके वो सुगृहित सुबह में ग्रहण करने के लायक नामवाले ऐसे उस पुरुषसिंह विशुद्ध शीलवाले उत्तमकुमार के समाचार दो जिससे मैं शान्ति पा सकूँ ।

हे गौतम ! उस के बाद राजा को प्रणाम करके वो राजसेवक पुरुष उतावले वेग से चपलता से पवन समान गति से चले वैसे उत्तम तरह के अश्व पर आरूढ़ होकर वन में, झाड़ी में, पर्वत की गुफा में, दूसरे एकान्त प्रदेश में चले गए । पलभर में राजधानी में पहुँचे । तब दाँई और बाँई भूजा के कर पल्लव से मस्तक के केश का लोच करते हुए राजकुमार दिखाई दिए । उसके सामने सुवर्ण के आभूषण और वस्त्र सजावट युक्त दश दिशाओं को प्रकाशित करते जयजय कार के मंगल शब्द उच्चारते, रजोहरण पकड़े हुए और हस्तकमल की रची अंजलि युक्त देवता उसे देखकर विस्मयित मनवाले लेपकर्म की बनी प्रतिमा की तरह स्थिर खड़े रहे ।

इस समय हे गौतम ! हर्षपूर्ण हृदय और रोमांच कंचुक से आनन्दित बने शरीरवाले आकाश में रहे प्रवचन देवता ने 'नमो अरिहंताणं' ऐसा उच्चारण कर के उस राजकुमार को इस प्रकार कहा कि –

सूत्र – १४९९-१५०३

जो केवल मुष्ठि के प्रहार से मेरु के टुकड़े कर देते हैं, पृथ्वी को पी जाते हैं, इन्द्र को स्वर्ग से बेदखल कर सकते हैं, पलभर में तीनों भुवन का भी शिव कल्याण करनेवाले होते हैं लेकिन ऐसा भी अक्षत शीलवाले की तुलना में नहीं आ सकता । वाकई वो ही उत्पन्न हुआ है ऐसा माना जाता है, वो तीनों भुवन को वंदन करने के लायक है, वो पुरुष हो या स्त्री, कोई भी हो जिस कुल में जन्म लेकर शील का खंड़न नहीं करता । परम पवित्र सत्पुरुष से सेवित, समग्र पाप को नष्ट करनेवाला, सर्वोत्तम सुख का भंड़ार ऐसे सतरह तरह के शील का जय हो । ऐसा बोलकर हे गौतम ! प्रवचन देवताओं ने कुमार पर पुष्प की वृष्टि की, फिर देवता कहने लगे कि –

सूत्र – १५०४-१५०६

जगत के अज्ञानी आत्मा आपने कर्म से कषाय या दुःखी हुए हो तो देव भाग्य या देवता को दोष देते हैं । अपनी आत्मा को गुण में स्थापित नहीं करता । दुःख के समय समता में रमण नहीं करता । सुख फिझूल या मुक्त में मिल जाए ऐसी तरकीब बनाते हैं । यह देव-भाग्य मध्यस्थ भाव में रहनेवाले, हरएक को एक नजर से देखनेवाले और उसमें सर्व लोक भरोसा रखनेवाले होते हैं । जो कुछ भी कर्मानुसार प्राप्त होता है और उसका निक्षेप या त्याग देव नहीं करवाते । तो अब तुम सर्वजन बोध पाओ । और सर्वोत्तम शील गुण से महर्द्धिक ऐसे कुमार के चरण कमल में तामस भाव रहित होकर प्रणाम करो । ऐसा कहकर देवता अदृश्य हो गए ।

सूत्र – १५०७

यह अवसर देखकर उस चतुर राजपुरुषने जल्द राजा के पास पहुँचकर देखा हुआ वृत्तान्त निवेदन किया । उसे सुनकर कईं विकल्प रूप तरंगमाला से पूरे होनेवाले हृदयसागरवाला हर्ष और विषाद पाने से भय सहित खड़ा हो गया । त्रास और विस्मययुक्त हृदयवाला राजा धीरे-धीरे गुप्त सुरंग के छोटे द्वार से कंपते सर्वगात्रवाले महाकौतुक से कुमार दर्शन की काफी उत्कंठावाले प्रदेश में आया सुगृहीत नामवाले महायशस्वी महासत्त्ववाले महानुभाव कुमार के राजा ने दर्शन किए । अप्रतिपाति महाअवधिज्ञान के प्रत्यय से अनगिनत भव के महसूस किए हुए सुख दुःख सम्यक्त्वादि की प्राप्ति, संसार, स्वभाव, कर्मबंध, उसकी दशा, उससे मुक्ति कैसे मिले ? वैर बन्धवाले राजादि को अहिंसा लक्षण धर्म उपदेश दिया ।

सुखपूर्वक बैठे सौधर्मापति इन्द्र महाराजाने मस्तक पर रखे श्वेत छत्रवाले कुमार को देखकर पहले कभी भी न देखा हुआ ऐसा ताज्जुब देखकर परिवार सहित वो राजाने प्रतिबोध पाया और दीक्षा अंगीकार की । शत्रु चक्राधिपति राजा को भी प्रतिबोध हुआ और दीक्षा अंगीकार की । इस समय चार निकाय के देवने सुन्दर स्वरवाली गम्भीर दुंदुभि का बड़ा शब्द किया और फिर उद्घोषणा की ।

सूत्र – १५०८-१५०९

हे कर्म की आँठ गठान के टुकड़े करनेवाले ! परमेष्ठिन् ! महायशवाले ! चारित्र दर्शन ज्ञान सहित तुम्हारी जय हो । इस जगतमें एक वो माता हर पल वंदनीय है जिसके उदर में मेरु पर्वत समान महामुनि उत्पन्न होकर बसे।

सूत्र – १५१०

ऐसा कहकर सुगंधीदार पुष्प की वृष्टि छोड़ते भक्तिपूर्ण हृदयवाले हस्तकमल की अंजलि रचाकर इन्द्र सहित देव समुदाय आकाश में से नीचे ऊतर आए । उस के बाद कुमार के चरणकमल के पास देवसुंदरीओने नृत्य किया । फिर स्तवना की । नमस्कार करके लम्बे अरसे तक पर्युपासना करके देवसमुदाय अपने स्थानक पर गए ।

सूत्र – १५११

हे भगवंत ! वो महायशवाले सुग्रहीत नाम धारण करनेवाले कुमार महर्षि इस तरह के सुलभबोधि किस तरह बने ? हे गौतम ! अन्य जन्म में श्रमणभाव में रहे थे तब उसने वचन दंड़ का प्रयोग किया था । उस निमित्त से

जीवनभर गुरु के उपदेश से मौनव्रत धारण किया था । दूसरा संयतोने तीन महापाप स्थानक बताए हैं, वो इस प्रकार – अप्काय, अग्निकाय और मैथुन यह तीनों को सर्व उपाय से साधु को खास वर्जन करना चाहिए । उसने भी उस तरह से सर्वथा वर्जन किया था । उस कारण से वो सुलभ बोधि बने ।

अब किसी दिन हे गौतम ! कईं शिष्य से परिवरीत उस कुमार महर्षिने अंतिम समय में देह छोड़ने के लिए सम्मेत शिखर पर्वत के शिखर की ओर प्रयाण किया । विहार करते करते कालक्रम उसी मार्ग पर गए कि जहाँ वो राजकुल बालिकावरेन्द्र चक्षुकुशील थी । राजमंदिर में समाचार दिए वो उत्तम उद्यान में वंदन के लिए स्त्रीनरेन्द्र आए। कुमार महर्षि को प्रणाम करने के पूर्वक परिवार सह यथोचित भूमि स्थान में नरेन्द्र बैठा । मुनेश्वर ने विस्तार से धर्मदेशना की । धर्मदेशना सुनने के बाद परिवार सह स्त्री नरेन्द्र निःसंगता ग्रहण करने के लिए तैयार हुआ ।

हे गौतम ! वो यहाँ नरेन्द्रने दीक्षा अंगीकार की । दीक्षा लेने के बाद काफी घोर, वीर, उग्र, कष्टकारी, दुष्कर तप संयम अनुष्ठान क्रिया में रमणता करनेवाले ऐसे वो सभी किसी भी द्रव्य, क्षेत्र, काल या भाव में ममत्व रखे बिना विहार करते थे । चक्रवर्ती इन्द्र आदि की ऋद्धि समुदाय के देह सुख में या सांसारिक सुख के काफी निस्पृहभाव रखनेवाले ऐसे उनका कुछ समय बीत गया । विहार करते करते सम्मेत पर्वत के शिखर के पास आया ।

उस के बाद उस कुमार महर्षिने राजकुमार बालिका नरेन्द्र श्रमणी को कहा कि – हे दुष्करकारिके ! तुम शान्त चित्त से सर्वभाव से अंतःकरणपूर्वक पूरे विशुद्ध शल्य रहित आलोचना जल्द से दो क्योंकि आज हम सर्व देह का त्याग करने के लिए कटिबद्ध लक्षवाले बने हैं । निःशल्य आलोचना, निन्दा, गर्हा, यथोक्त शुद्धाशयपूर्वक जिस प्रकार भगवंत ने उपदेश दिया है उस अनुसार प्रायश्चित्त करके शल्य का उद्धार करके कल्याण देखा है जिसमें ऐसी संलेखना की है । उस के बाद राजकुल बालिका नरेन्द्र श्रमणीने यथोक्त विधि से आलोचना की । उसके बाद बाकी रही आलोचना उस महामुनिने याद करवाई–उस समय राजसभा में तुम बैठी थी तब गृहस्थ भाव में राग सहित और स्नेहाभिलाष से मुझे देखा था उस बात की आलोचना हे दुष्करकारिके! कर । जिस से तुम्हारी सर्वोत्तम शुद्धि हो ।

उसके बाद उसने मन में खेद पाकर चपल आशय एवं छल का घर ऐसी पाप स्त्री स्वभाव के कारण से इस साध्वी के समुदाय में हंमेशा वास करनेवाली किसी राजा की पुत्री चक्षुकुशील या बूरी नजर करनेवाली है ऐसी मेरी ख्याति शायद हो जाए तो ? ऐसा सोचकर हे गौतम ! उस निर्भागिणी श्रमणीने कहा कि–हे भगवंत ! इस कारण से मैंने तुमको रागवाली नजर से देखे न थे कि न तो मैं तुम्हारी अभिलाषा करती थी, लेकिन जिस तरह से तुम सर्वोत्तम रूप तारूण्य यौवन लावण्य कान्ति-सौभाग्यकला का समुदाय, विज्ञान ज्ञानातिशय आदि गुण की समृद्धि से अलंकृत हो, उस अनुसार विषय में निरभिलाषी और धैर्यवाले उस प्रकार हो कि नहीं, ऐसे तुम्हारा नाप तोल के लिए राग सहित अभिलाषावाली नजर जुड़ी थी, लेकिन रागाभिलाषा की ईच्छा से नजर नहीं की थी । या फिर आलोचना हो । उसमें दूसरा क्या दोष है ? मुझे भी यह गुण करनेवाला होगा । तीर्थ में जाकर माया, छल करने से क्या फायदा ? कुमारमुनि सोचने लगा कि – काफी महा संवेग पाई हुई ऐसी स्त्री को सो सोनैया कोई दे तो संसार में स्त्री का कितना चपल स्वभाव है वो समज सकते हैं या फिर उसके मनोगत भाव पहचानना काफी दुष्कर है ।

ऐसा चिन्तवन करके मुनिवरने कहा कि चपल समय में किस तरह का छल पाया ? अहो ! इस दुर्जन चपल स्त्रियों के चल-चपल अस्थिर-चंचल स्वभाव । एक के लिए मानस स्थापन न करनेवाली, एक भी पल स्थिर मन न रखनेवाली, अहो दुष्ट जन्मवाली, अहो समग्र अकार्य करनेवाली, भाँड़नेवाली, स्खलना पानेवाली, अहो समग्र अपयश, अपकीर्ति में वृद्धि करनेवाली, अहो पाप कर्म करने के अभिमानी आशयवाली, परलोक में अंधकार के भीतर घोर भयानक खुजली, ऊबलते कडाँइ में तेल में तलना, शामली वृक्ष, कुंभी में पकना आदि दुःख सहने पड़े ऐसी नारकी में जाना पड़ेगा । उसके भय बिना चंचल स्त्री होती है ।

इस तरह कुमार श्रमण ने मन में काफी खेद पाया । उसकी बात न अपनाते हुए धर्म में एक रसिक ऐसे

कुमार मुनि अति प्रशान्त वदन से प्रशान्त मधुर अक्षर से धर्मदेशना करने पूर्वक राजकुल बालिका नरेन्द्र श्रमणी को कहा कि – हे दुष्करकारिके ! ऐसी माया के वचन बोलकर काफी घोर, वीर, उग्र, कष्टदायक, दुष्कर तप, संयम, स्वाध्याय ध्यान आदि करके जो संसार न बढ़े ऐसा बड़ा पुण्यप्रकर्ष इकट्ठा किया है । उसको निष्फल मत करना । अनन्त संसार देनेवाले ऐसे माया-दंभ करने का कोई प्रयोजन नहीं है । बेजिजक आलोचना करके तुम्हारी आत्मा को शल्यरहित बना या जैसे अंधेरे में नदी का नृत्य निरर्थक होता है, धमेल सुवर्ण एक जोरवाली फूंक में उसकी मेहनत निरर्थक जाती है, उस अनुसार आज तक राजगादी स्वजनादिक का त्याग करके केश का लोच किया । भिक्षा, भ्रमण, भूमि पर शय्या करना, बाईस परिषह सहना, उपसर्ग सहना आदि जो क्लेश सहे वो सब किए गए चारित्र अनुष्ठान तुम्हारे निरर्थक होंगे ? तब निर्भागी ने उत्तर दिया कि –

हे भगवंत ! क्या आप ऐसा मानते हो कि आपके साथ छल से बात कर रहा हूँ । और फिर खास करके आलोचना देते समय आपके साथ छल कर ही नहीं सकते । यह मेरी कहानी बेजिजक सच मानो । किसी तरह उस समय मैंने सहज भी स्नेहराग की अभिलाषा से या राग करने की अभिलाषा से आपकी ओर नजर नहीं की थी, लेकिन आपका इम्तिहान लेने के लिए, तुम कितने पानी में हो – शील में कितने दृढ़ हो, उसका इम्तिहान करने के लिए नजर की थी । ऐसे बोलती कर्मपरिणति को आधीन होनेवाली बद्ध-स्पृष्ट निकाचित ऐसे उत्कृष्ट हालातवाला स्त्री नामकर्म उपार्जन करके नष्ट हुई, हे गौतम ! छल करने के स्वभाव से वो राजकुल बालिका नरेन्द्र श्रमणीने लम्बे अरसे का निकाचित स्त्रीवेद उपार्जन किया ।

उस के बाद शिष्यगण परिवार सहित महा ताज्जुब समान स्वयंबुद्धकुमार महर्षिने विधिवत् आत्मा की – संलेखना करके एक मास का पादपोपगमन अनशन करके सम्मेत पर्वत के शिखर पर केवलीपन से शिष्यगण के साथ निर्वाण पाकर मोक्ष पधारे ।

सूत्र – १५१२

हे गौतम ! वो राजकुलबालिका नरेन्द्र श्रमणी उस माया शल्य के भावदोष से विद्युत्कुमार देवलोक में सेवक देव में स्त्री नेवले के रूप में उत्पन्न हुई । वहाँ से च्यवकर फिर उत्पन्न होती और मर जाती मानव और तिर्यंच गति में समग्र दौर्भाग्य दुःख दारिद्र पानेवाली समग्र लोक से पराभव-अपमान, नफरत पाते हुए अपने कर्म के फल को महसूस करते हुए हे गौतम ! यावत् किसी तरह से कर्म का क्षयोपशम श्रमणपन से यथार्थ परिपालन करके सर्व स्थान में सारे प्रमाद के आलम्बन से मुक्त होकर संयम क्रिया में उद्यम करके उस भव में माया से किए काफी कर्म जलाकर भस्म करके अब केवल अंकुर समान भव बाकी रखा है, तो भी हे गौतम ! ज्यों-त्यों समय में रागवाली दृष्टि की आलोचना नहीं की उस कर्म के दोष से ब्राह्मण की स्त्री के रूप में उत्पन्न हुई । वो राजकुल बालिका नरेन्द्र श्रमणी (समान साध्वी) के जीव का निर्वाण हुआ ।

सूत्र – १५१३

हे भगवंत ! जो किसी श्रमणपन का उद्यम करे वो एक आदि सात-आँठ भव में यकीनन सिद्धि पाए तो फिर इस श्रमणी को क्यों कम या अधिक नहीं ऐसे लाख भव तक संसार में भ्रमण करना पड़ा ? हे गौतम ! जो किसी निरतिचार श्रमणपन निर्वाह करे वो यकीनन एक से लेकर आँठ भव तक सिद्धि पाता है । जो किसी सूक्ष्म या बादर जो किसी माया शल्यवाले हो, अप्काय का भोगवटा करे, तेऊकाय का अतिचार लगाए वो लाख भव करके भटककर फिर सिद्धि पाने की उचितता प्राप्त करेगा । क्योंकि श्रमणपन पाकर फिर यदि उसमें अतिचार लगाए तो बोधिपन दुःख से पाए । हे गौतम ! यह उस ब्राह्मणी के जीवने इतनी अल्प माया की थी उससे ऐसे दारुण विपाक भुगतने पड़े ।

सूत्र – १५१४

हे भगवंत ! वो महियारी – गोकुलपति बीबी को उन्होंने डांग से भरा भाजन दिया कि न दिया ? या तो वो

महियारी उन के साथ समग्र कर्म का क्षय करके निर्वाण पाई थी ? हे गौतम ! उस महियारी को तांदुल भाजन देने के लिए ढूँढ़ने जा रही थी तब यह ब्राह्मण की बेटी है ऐसा समझकर जा रही थी, तब बीच में ही सुज्ञश्री का अपहरण किया । फिर मधु, दूध खाकर सुज्ञश्रीने पूछा कि कहाँ जाओगे ? गोकुल में दूसरी बात उसे यह बताई कि यदि तुम मेरे साथ विनय से व्यवहार करोगे तो तुम्हें तुम्हारी ईच्छा के अनुसार तीन बार गुड़ और घी से भरे हररोज दूध और भोजन दूँगी। जब ऐसा कहा तब सुज्ञश्री उस महियारी के साथ गई । परलोक अनुष्ठान करने में बेचैन और शुभ-स्थान में पिरोए मानसवाले उस गोविंद ब्राह्मण आदि ने इस सुज्ञश्री को याद भी न किया । उसके बाद जिस प्रकार उस महियारी ने कहा था ऐसी घी-शक्कर से भरी ऐसी खीर आदि का खाना देती थी ।

अब किसी तरह से कालक्रम बारह साल का भयानक अकाल का समय पूरा हुआ । सारा देश ऋद्धि-समृद्धि से स्थिर हुआ अब किसी समय अनमोल श्रेष्ठ सूर्यकान्त चन्द्रकान्त आदि उत्तम जाति के बीस मणिरत्न खरीदकर सुज्ञशिव अपने देश में वापस जाने के लिए नीकला है । लम्बा सफर करने से खेद पाए हुए देहवाला जिस रास्ते से जा रहा था उस रास्ते में ही भवितव्यता योग से उस महियारी का गोकुल आते ही जिसका नाम लेने में भी पाप है ऐसा वो पापमतिवाला सुज्ञशिव काकतालीय न्याय से आ पहुँचा । समग्र तीन भुवन में जो स्त्री है उसके रूप लावण्य और कान्ति से बढ़िया रूप कान्ति लावण्यवाली सुज्ञश्री को देखकर इन्द्रिय की चपलता से अनन्त दुःख-दायक किंपाक फल की उपमावाले विषय की रम्यता होने से, जिसने समग्र तीनों भुवन को जीता है ऐसे कामदेव के विषय में आए महापापकर्म करनेवाले सुज्ञशिवने उस सुज्ञश्री को कहा कि –

हे बालिका ! यदि तुम तुम्हारे माता-पिता अनुमति दे तो में तुमसे शादी करूँ । तुम्हारे बन्धुवर्ग को भी दारिद्र रहित करूँ । फिर तुम्हारे लिए पूरे सों पलप्रमाण सुवर्ण के अलंकार बनवाऊं। जल्द यह बात तुम्हारे माँ-बाप को बताओ, उसके बाद हर्ष और संताप पानेवाली सुज्ञश्रीने महियारी को यह हकीकत बताई । महियारी तुरन्त सुज्ञशिव के पास आकर कहने लगी कि–अरे ! तुम कहते थे ऐसे मेरी बेटी के लिए सो-पल प्रमाण सुवर्ण बताओ, उसने श्रेष्ठ मणि दिखाए । महियारी ने कहा कि सो सोनैया दो, बच्चे को खेलने के लिए पाँचिका का प्रयोजन नहीं है सुज्ञशिव ने कहा –चलो, नगरमें जाकर इस पाँचिका का प्रभाव कैसा है उसकी वहाँ के व्यापारी के पास जाँच करे ।

उस के बाद प्रभात के समय नगर में जाकर चन्द्रकान्त और सूर्यकान्त मणि के श्रेष्ठ जोड़ला राजा को दिखाया । राजाने मणिरत्न परीक्षक को बुलाकर कहा कि–इस श्रेष्ठ मणि का मूल्य दिखाओ । यदि मूल्य की तुलना – परीक्षा की जाए तो उसका मूल्य बताने के लिए समर्थ नहीं है । तब राजाने कहा अरे माणिक्य के शिष्य ! यहाँ कोई ऐसा पुरुष नहीं कि जो इस मणि का मूल्य जाँच कर सके ? तो अब किंमत करवाए बिना उपर के दश करोड़ द्रव्य ले जा । तब सुज्ञशिव ने कहा कि महाराज की जैसी कृपा हो वो सही है । दूसरी एक विनती यह है कि यह नजदीकी पर्वत के समीप में हमारा एक गोकुल है, उसमें एक योजन तक गोचरभूमि है, उसका राज्य की ओर से लेनेवाला कर मुक्त करवाना । राजाने कहा कि भले, वैसा होगा । इस प्रकार सबको अदरिद्र और करमुक्त गोकुल करके वो उच्चार न करने के लायक नामवाले सुज्ञशिवने अपनी लड़की सुज्ञश्री के साथ शादी की ।

उन दोनों के बीच आपस में प्रीति पैदा हुई । स्नेहानुराग से रंगे हुए मानस वाले अपना समय बीता रहे हैं । उतने में घर आए हुए साधु को उनको वहोराए बिना वापस जाते देखकर हा हा पूर्वक आक्रंदन करती सुज्ञश्री को सुज्ञशिव ने पूछा कि हे प्रिये ! पहले किसी दिन न देखे हुए भिक्षाचर युगल देखकर क्यों इस तरह उदासीन अवस्था पाई ? तब उसने कहा मेरी मालकीन थी तब इस साधुओं को बहुत भक्ष्य अन्न-पानी देकर उनके पात्र भर देते थे । उस के बाद हर्ष पाई हुई खुश मालकीन मस्तक नीचा कर के उसके चरणाग्रमें प्रणाम करती थी । उन्हें देखते ही मुझे मालकीन याद आ गई । तब फिर उस पापिणी को पूछा कि – तुम्हारी स्वामिनी कौन थी ? तब हे गौतम ! गला बैठ जाए ऐसा रुदन करनेवाली दुःख न समझे ऐसे शब्द बोलते हुए व्याकुल अश्रु गिरानेवाली सुज्ञश्रीने आज दिन तक की सारी बाते बताई । तब महापापकर्मी ऐसे सुज्ञशिव को मालूम हुआ कि – यह तो सुज्ञश्री मेरी ही बेटी

है । ऐसी स्त्री को ऐसे रूप कान्ति शोभा लावण्य सौभाग्य शोभा न हो, ऐसा चिन्तवन करके विलाप करने लगा

सूत्र – १५१५

इस प्रकार के पापकर्म करने में रक्त ऐसे मुझ पर धड़गड़ आवाज करते वज्र तूट न पड़े तो फिर यहाँ से कहाँ जाकर मैं शुद्ध बन सकूँगा ?

सूत्र – १५१६

ऐसा बोलकर महापाप कर्म करनेवाला वो सोचने लगा कि–क्या अब मैं शस्त्र के द्वारा मेरे गात्र को तिल-तिल जितने टुकड़े करके छेद कर डालूँ ? या तो ऊंचे पर्वत के शिखर से गिरकर अनन्त पाप समूह के ढ़ेर समान इस दुष्ट शरीर के टुकड़े कर दूँ ? या तो लोहार की शाला में जाकर अच्छी तरह से तपाकर लाल किए लोहे की तरह मोटे घण से कोई टीपे उस तरह लम्बे अरसे तक मेरे शरीर को टीपवाऊं ? या तो क्या मैं अच्छी तरह से मेरे शरीर के बीच में करवत के तीक्ष्ण दाँत से कटवाऊं और उसमें अच्छी तरह से ऊबाले हुए सीसे, ताम्र, काँस, लोह, लुण और उसनासाजी खार के रस डालूँ ? या फिर मेरे अपने हाथ से ही मेरा मस्तक छेद डालूँ ? या तो मैं – मगरमच्छ के घर में प्रवेश करूँ या फिर दो पेड़ के बीच मुझे रस्सी से बाँधकर लटकाकर नीचे मुँह और पाँव ऊपर हो उस तरह रखकर नीचे अग्नि जलाऊं ? ज्यादा क्या कहे ? मसाण भूमि में पहुँचकर काष्ठ की चिता में मेरे शरीर को जला डालूँ ? ऐसा सोचकर हे गौतम ! वहाँ बड़ी चित्ता बनवाई, उसके बाद समग्र लोक की मोजूदगी में लम्बे अरसे तक अपनी आत्मा की निन्दा करके सब लोगों को जाहिर किया कि मैंने न करने के लायक इस प्रकार का अप् कार्य किया है । ऐसा कहकर चिता पर आरूढ़ हुआ तब भवितव्यता योग से उस प्रकार के द्रव्य और चूर्णि के योग के संसर्ग से वो सब काष्ट हैं – ऐसा मानकर फूँकने के बावजूद कईं तरह के उपाय करने के बावजूद भी अग्नि न जला। तब फिर लोगोंने नफरत की कि यह अग्नि भी तुम्हें सहारा नहीं दे रहा । तुम्हारी पाप परिणति कितनी कठिन है, कि यह अग्नि भी नहीं जला रहा । ऐसा कहकर उन लोगों ने दोनों को गोकुल में से नीकाल बाहर किया ।

उस अवसर पर दूसरे नजदीकी गाँव में से भोजन पानी ग्रहण करके उसी मार्ग उद्यान के सन्मुख आनेवाले मुनि युगल को देखा । उन्हें देखकर उनके पीछे वो दोनों पापी गए । उद्यान में पहुँचे तो वहाँ सारे गुण समूह को धारण करनेवाले चार ज्ञानवाले काफी शिष्यगण से परिवरेल, देवेन्द्र और नरेन्द्र से चरणारविंद में नमन कराते, सुगृहीत नामवाले जगाणंद नाम के अणगार को देखा । उन्हें देखकर उन दोनों ने सोचा कि यह महायशवाले मुनिवर के पास मेरी विशुद्धि कैसे हो उसकी माँग करूँ । ऐसा सोचकर प्रणाम करने के पूर्वक उस गण को धारण करने वाले गच्छाधिपति के सामने यथायोग्य भूमि पर बैठा । उस गणस्वामीने सुज्ञशिव को कहा कि – अरे देवानुप्रिया शल्य रहित पाप की आलोचना जल्द करके समग्र पाप का अंत करनेवाले प्रायश्चित्त कर । यह बालिका तो गर्भवती होने से उसका प्रायश्चित्त नहीं है, कि जब तक उस बच्चे को जन्म नहीं देगी ।

हे गौतम ! उसके बाद अति महा संवेग की पराकाष्ठा पाया हुआ वो सुज्ञशिव जन्म से लेकर तमाम पापकर्म की निःशल्य आलोचना देकर (बताकर) गुरु महाराजाने बताए घोर अति दुष्कर बड़े प्रायश्चित्त का सेवन कर के उसके बाद अति विशुद्ध परिणाम युक्त श्रमनपन में पराक्रम करके छब्बीस साल और तेरह रात-दिन तक काफी घोर वीर उग्र कष्टकारी दुष्कर तपःसंयम यथार्थ पालन करके और एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह मास तक लगातार एकसाथ उपवास करके शरीर की टापटीप या ममता किए बिना उसने सर्व स्थानक में अप्रमाद रहित हंमेशा रात-दिन हर समय स्वाध्याय ध्यानादिक में पराक्रम करके बाकी कर्ममल को भस्म करके अपूर्वकरण करके क्षपकश्रेणी लेकर अंतगड़ केवली होकर सिद्ध हुए ।

सूत्र – १५१७

हे भगवंत ! उस प्रकार का घोर महापाप कर्म आचरण करके यह सुज्ञशिव जल्द थोड़े काल में क्यों निर्वाण

पाया ? हे गौतम ! जिस प्रकार के भाव में रहकर आलोयणा दी, जिस तरह का संवेग पाकर ऐसा घोर दुष्कर बड़ा प्रायश्चित्त आचरण किया । जिस प्रकार काफी विशुद्ध अध्यवसाय से उस तरह का अति घोर वीर उग्र कष्ट करनेवाला अति दुष्कर तप-संयम की क्रिया में व्यवहार करते अखंड़ित-अपिराधित मूल उत्तरगुण का पालन करते निरतिचार श्रामण्य का निर्वाह करके जिस तरह के रौद्र ध्यान आर्तध्यान से मुक्त होकर राग-द्वेष, मोह, मिथ्यात्व, मद, भय, गारव आदि दोष का अन्त करनेवाले, मध्यस्थ भाव में रहे, दीनता रहित मानसवाले सुज्ञशिव श्रमण ने बारह साल की संलेखना करके पादपोपगमन अनशन अंगीकार करके उस तरह के एकान्त शुभ अध्यवसाय से केवल एक ही सिद्धि न पाए, लेकिन यदि शायद दूसरों के किए कर्म का संक्रम कर सकता हो तो सर्वे भव्य सत्त्व के समग्र कर्म का क्षय और सिद्धि पाए ।

लेकिन दूसरों के किए कर्म के संक्रम कभी किसी का नहीं होता । जो कर्म जिसने उपार्जन किया हो वो उसको ही भुगतना चाहिए । हे गौतम ! जब योग का निरोध करनेवाले बने तब समग्र लेकिन आँठ कर्मराशि के छोटे काल के विभाग से ही नष्ट करनेवाले बने । समग्र कर्म आने के और अच्छी तरह से बँध करनेवाले और योग का निरोध करनेवाले का कर्मक्षय देखा है, लेकिन कालगिनती से कर्मक्षय नहीं देखा । कहा है कि –

सूत्र – १५१८-१५२३

काल से तो कर्म खपाता है, काल के द्वारा कर्म बाँधता है, एक बाँधे, एक कर्म का क्षय करे, हे गौतम ! समय तो अनन्त है, योग का निरोध करनेवाला कर्म वेदता है लेकिन कर्म नहीं बाँधते । पुराने कर्म को नष्ट करते हैं, नए कर्म की तो उसे कमी ही है, इस प्रकार कर्म का क्षय जानना । इस विषय में समय की गिनती न करना । अनादि समय से यह जीव है तो भी कर्म पूरे नहीं होते । कर्म का क्षयोपशम होने के कारण से जब विरति धर्म का विकास हुआ, तब–कालक्षेत्र भव और भाव द्रव्य प्राप्त करके यावत् अप्रमादी होकर जीव कर्म खपाए तब जीव के कोटि मार्ग में आगे बढ़े, जो प्रमादी हो तो वो अनन्तकाल का कर्म बाँधे, चार गति में सर्वकाल अति दुःखी जीव वास करनेवाले होते हैं, इसलिए काल, क्षेत्र, भव, भाव पाकर बुद्धिवाली आत्मा शीघ्र कर्म का क्षय करता है ।

सूत्र – १५२४

हे भगवंत ! वो सुज्ञश्री कहाँ उत्पन्न हुई ? हे गौतम ! छठ्ठी नरक पृथ्वी में, हे भगवंत ! किस कारण से ? उसके गर्भ का नौ मास से ज्यादा समय पूर्ण हुआ तब सोचा कि कल सुबह गर्भ गिरा दूँगी । इस प्रकार का अध्यवसाय करते हुए उसने बच्चे को जन्म दिया । जन्म देने के बाद तुरन्त उसी पल में मर गई । इस कारण से सुज्ञश्री छठ्ठी नरक में गई ।

हे भगवंत ! जिस बच्चे को उसने जन्म दिया फिर मर गई वो बच्चा जिन्दा रहा कि नहीं ? हे गौतम ! जीवित रहा है । हे भगवंत ! किस तरह ? हे गौतम ! जन्म देने के साथ ही वो बच्चा उस प्रकार की ओर चरबी लहूँ गर्भ को लिपटकर रहे, बदबूवाले पदार्थ, परू, खारी बदबूवाली अशुचि चीजों से लीपटा अनाथ विलाप करनेवाले उस बच्चे को एक श्वानने कुम्हार के चक्र पर स्थापना करके भक्षण करने लगा । इसलिए कुम्हार ने उस बच्चे को देखा, तब उसकी पत्नी सहित कुम्हार बच्चे की और दोड़ा । बच्चे के शरीर को नष्ट किए बिना श्वान भाग गया । तब करुणापूर्वक हृदयवाले कुम्हार को लड़का न होने से यह मेरा पुत्र होगा – ऐसा सोचकर कुम्हार ने उस बच्चे को अपनी बीबी को समर्पण किया । उसने भी सच्चे स्नेह से उसकी देख-भाल करके उस बच्चे को मानव के रूप में तैयार किया । उस कुम्हारने लोकानुवृत्ति से अपने पिता होने के अभिमान से उसका सुसढ़ नाम रखा ।

हे गौतम ! कालक्रम से सुसाधु का समागम हुआ । देशना सुनकर प्रतिबोध पाया । और उस सुसढ़ने दीक्षा अंगीकार की । यावत् परमश्रद्धा संवेग और वैराग पाया । काफी घोर वीर उग्र कष्ट करके दुष्कर महाकाय क्लेश करते हैं । लेकिन संयम में यतना किस प्रकार करना वो नहीं जानता । अजयणा के दोष से सर्वत्र असंयम के स्थान में अपराध करनेवाला होता है । तब उसे गुरु ने कहा कि – अरे ! महासत्त्वशाली ! तुम अज्ञान दोष के कारण से

संयम में जयणा कैसे करनी वो मालूम न होने से महान कायक्लेश करनेवाला होता है । हंमेशा आलोयणा देकर प्रायश्चित्त नहीं करता । तो तुम्हारा यह किया हुआ सर्व तप-संयम निष्फल होता है । जब इस प्रकार गुरु ने उसको प्रेरणा दी तब हंमेशा आलोचना देते हैं, वो गुरु भी उसे उस तरह का प्रायश्चित्त देते हैं कि जिस प्रकार से संयम में जयणा करनेवाला बने । उसी के अनुसार रात-दिन हरएक समय आर्तध्यान, रौद्रध्यान से मुक्त शुभ अध्यवसाय में हंमेशा विचरण करता था । हे गौतम ! किसी समय वो पापमतिवाला जो किसी छठ्ठ, अठ्ठम, चार, पाँच, अर्धमास मास यावत् छ मास के उपवास या दूसरे बड़े कायक्लेश हो वैसे प्रायश्चित्त उसके अनुसार अच्छी तरह से सेवन करे लेकिन जो कुछ भी संयम क्रिया में जयणावाले मन, वचन, काया के योग, समग्र आश्रव का रोध, स्वाध्याय, ध्यान आवश्यक आदि से समग्र पापकर्म की राशि को जलाकर भस्म करने के लिए समर्थ प्रायश्चित्त है, उसमें प्रमाद करे, उसकी अवहेलना करे, अश्रद्धा करे, शिथिलता करे, यावत् अरे इसमें क्या दुष्कर है ? ऐसा करके उस प्रकार से यथार्थ प्रायश्चित्त सेवन न करे । हे गोतम ! वो सुसढ़ अपना यथायोग्य आयु भुगतकर मरकर सौधर्मकल्प में इन्द्र महाराजा के महर्द्धिक सामानिक देव के रूप में उत्पन्न हुए । वहाँ से च्यवकर यहाँ वासुदेव बनकर सातवीं नरक पृथ्वी में उत्पन्न हुआ । वहाँ से नीकलकर महाकायवाला हाथी होकर मैथुनासक्त मानसवाला मरकर अनन्तकाय वनस्पति में गया । हे गौतम ! यह वो सुसढ़ कि जिसने –

सूत्र – १५२५-१५२६

आलोचना, निन्दा, गर्हा, प्रायश्चित्त करने के बावजूद भी जयणा का अनजान होने से दीर्घकाल तक संसार में भ्रमण करेगा । हे भगवंत ! कौन-सी जयणा उसने न पहचानी कि जिससे उस प्रकार के दुष्कर काय-क्लेश करके भी उस प्रकार के लम्बे अरसे तक संसार में भ्रमण करेगा ? हे गौतम ! जयणा उसे कहते हैं कि अठ्ठारह हजार शील के सम्पूर्ण अंग अखंड़ित और अविराधित यावज्जीव रात-दिन हरएक समय धारण करे और समग्र संयम क्रिया का अच्छी तरह से सेवन करे । वो सात उस सुसढ़ने न समझी । उस कारण से वो निर्भागी दीर्घकाल तक संसार में परिभ्रमण करेगा ।

हे भगवंत ! किस कारण से जयणा उस के ध्यान में न आई ? हे गौतम ! जितना उसने कायक्लेश सहा उस के आँठवे हिस्से का यदि सचित्त जल का त्याग किया होता तो वो सिद्धि में ही पहुँच गया होता । लेकिन वो सचित्त जल का उपयोग परिभोग करता था । सचित्त जल का परिभोग करनेवाले कैसा भी कायक्लेश करे तो भी निरर्थक हो जाता है ।

हे भगवंत ! अप्काय, अग्निकाय और मैथुन यह तीनों को महापाप के स्थानक बताए हैं । अबोधि देनेवाले हैं । उत्तम संयत साधु को उन तीनों का एकान्त में त्याग करना चाहिए । उसका सेवन न करना चाहिए । इस कारण से उसने उस जयणा को न समझा । हे भगवंत ! किस कारण से अप्काय, अग्निकाय, मैथुन अबोधि देनेवाले बताए हैं ? हे गौतम ! जो कि सर्व छह काय का समारम्भ महापाप स्थानक बताए हैं, लेकिन अप्काय अग्निकाय का समारम्भ अनन्त सत्त्व का उपघात करनेवाला है । मैथुन सेवन से संख्यात, असंख्यात जीव का विनाश होता है। सज्जड राग-द्वेष और मोह युक्त होने से एकान्त अप्रशस्त अध्यवसाय के आधीन होते हैं । जिस कारण से ऐसा होता है उस कारण से हे गौतम ! उन जीव का समारम्भ सेवन परिभोग करनेवाले ऐसे पाप में से व्यवहार करनेवाले जीव प्रथम महाव्रत को धारण करनेवाले न बने । उसकी कमी में बाकी के महाव्रत संयमानुष्ठान की कमी ही है, जिससे ऐसा है । इसलिए सर्वथा विराधित श्रमणपन माना जाता है । जिस कारण से इस प्रकार है इसलिए सम्यग् मार्ग प्रवर्तता है । उसका विनाश करनेवाला होता है । उस कारण से जो कुछ भी कर्मबंधन करे उससे नरक तिर्यंच कुमानवपन में अनन्त बार उत्पन्न हो कि जहाँ बार-बार धर्म ऐसे अक्षर भी सपने में न सुने और धर्म प्राप्त न करते हुए संसार में भ्रमण करे । इस कारण से जल, अग्नि और मैथुन अबोधिदायक बताए हैं ।

हे भगवंत ! क्या छठ्ठ, अठ्ठम, चार, पाँच उपवास, अर्धमास, एक मास यावत् छ मास तक हंमेशा के उपवास काफी घोर वीर उग्र कष्टकारी दुष्कर संयम जयणा रहित ऐसा अति महान कायक्लेश किया हो तो क्या

निरर्थक हो ? हे गौतम ! हा, निरर्थक है । हे भगवंत ! किस कारण से ? हे गौतम ! गधे, ऊंट, बैल आदि प्राणी भी संयम जयणा रहितपन से ईच्छा बिना आए हुए ताप-गर्मी भार मार आदि पराधीनता से ईच्छा बिना दुःख सहकर अकाम निर्जरा करके सौधर्मकल्प आदि में जाते हैं । वहाँ भी भोगावली कर्म का क्षय होने से च्यवकर तिर्यंचादिक गति में जाकर संसार का अनुसरण करनेवाला या संसार में भ्रमण करनेवाला होता है । और अशुचि बदबूँ पीगले प्रवाही क्षार, पित्त, उल्टी श्लेष्म से पूर्ण चरबी शरीर पर लिपटे ओर परु, अंधेरा व्याप्त, लहूँ के कीचड़वाले, देख न सके ऐसी बिभत्स, अंधकार समूहयुक्त, गर्भवास में दर्द, गर्भप्रवेश, जन्म, जरा, मरणादिक और शारीरिक, मानसिक पैदा हुए घोर दारुण दुःख का भोगवटा करना भाजन होता है । संयम की जयणा रहित जन्म, जरा, मरणादिक के घोर, प्रचंड, महारौद्र, दारुण दुःख का नाश एकान्ते नहीं होता । इसीलिए जयणारहित संयम या अति महान कायक्लेश करे तो भी निरर्थक है ।

हे भगवंत ! क्या संयम की जयणा को अच्छी तरह से देखनेवाला पालन करनेवाला अच्छी तरह से उसका अनुष्ठान करनेवाला, जन्म-जरा, मरणादिक के दुःख से जल्द छूट जाता है । हे गौतम ! ऐसे भी कोई होते हैं कि जल्द ऐसे दुःख छूट न जाए और कुछ ऐसे होते हैं कि जल्द छूट जाए । हे भगवंत ! किस कारण से आप ऐसा कहते हो ? हे गौतम ! कोई ऐसा भी होते हैं कि जो सहज थोड़ा सा भी सभास्थान देखे बिना अपेक्षा रखे बिना राग सहित और शल्य सहित संयम की यातना करे । जो इस प्रकार के हो तो लम्बे अरसे तक जन्म, जरा, मरण आदि कईं सांसारिक दुःख से मुक्त बने । कुछ ऐसे आत्मा भी होते हैं कि जो सर्व शल्य को निर्मूल्य उखेड़कर आरम्भ और परिग्रह रहित होकर ममता और अहंकार रहित होकर रागद्वेष मोह मिथ्यात्व कषाय के मल कलंक जिनके चले गए हैं, सर्व भाव-भावान्तर से अति विशुद्ध आशयवाले, दीनता रहित मानसवाले एकान्त निर्जरा करने की अपेक्षावाला परम श्रद्धा, संवेग, वैरागी, समग्र भय गारव विचित्र कईं तरह के प्रमाद के आलम्बन से मुक्त, घोर परिषह उपसर्ग को जिसने जीता है, रौद्रध्यान जिसने दूर किया है, समग्र कर्म का क्षय करने के लिए यथोक्त जयणा का खप रखता हो, अच्छी तरह प्रेक्षा-नजर करता हो, पालन करता हो, विशेष तरीके से जयणा का पालन करता हो, यावत् सम्यक् तरह से उसका अनुष्ठान करता हो । जो उस तरह के संयम और जयणा के अर्थी हो वो जल्द जरा, मरण आदि कईं सांसारिक ऐसे दुःख की जाल से मुक्त हो जाते हैं । हे गौतम ! इस कारण से ऐसा कहा जाता है कि एक जल्द संसार से छूट जाता है और एक जल्द नहीं छूट सकता ।

हे भगवंत ! जन्म, जरा, मरण आदि कईं सांसारिक जाल से मुक्त होने के बाद जीव कहाँ वास करे ? हे गौतम ! जहाँ जरा नहीं, मौत नहीं, व्याधि नहीं, अपयश नहीं, झूठे आरोप नहीं लगते, संताप-उद्वेग कंकास, टंटा, क्लेश, दारिद्र, उपताप जहाँ नहीं होते । इष्ट का वियोग नहीं होता । ओर क्या कहना ? एकान्त अक्षय, ध्रुव, शाश्वत, निरूपम, अनन्त सुख जिसमें हैं ऐसे मोक्ष में वास करनेवाला होता है । इस अनुसार कहा ।

अध्ययन-८-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

सूत्र – १५२७, १५२८

इस सूत्र में ''वर्धमान विद्या'' दी है । इसलिए उसकी हिन्दी-छाया नहीं दी । जिज्ञासु लोग हमारा आगम सुत्ताणि-भाग-३९ महानिसीह सूत्र पृष्ठ-१४२-१४३ देखे । 'महानिसीह' सूत्र ४५०४ श्लोक प्रमाण अभी मिलता हैं ।

३९ महानिसीह-छेदसूत्र-६ हिन्दी अनुवाद पूर्ण

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

પૂજ્યપાદ્ શ્રી આનંદ–ક્ષમા–લલિત–સુશીલ–સુધર્મસાગર ગુરૂભ્યો નમ:

३९

महानिशीथ

आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद

[अनुवादक एवं संपादक]

आगम दीवाकर मुनि दीपरत्नसागरजी

[M.Com. M.Ed. Ph.D. श्रुत महर्षि]

वेब साईट:– (1) www.jainelibrary.org (2) deepratnasagar.in

ईमेल એड्रेस:- jainmunideepratnasagar@gmail.com मोबाईल 09825967397